ISSN 0973-3914

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

Peer- Reviewed Research Journal
UGC Journal No. (Old) 40942
Impact Factor 5.125 (IIFS)
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©
ProQuest, U.S.A. Title Id: 715205

अंक 35 हिन्दी संस्करण वर्ष – 18 जुलाई – दिसम्बर 2021

2021

www.researchjournal.in

आई. एस. एस. एन. 0973-3914

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

Peer-Reviewed Research Journal
UGC Journal No. (Old) 40942
Impact Factor 5.125 (IIFS)
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest, U.S.A. Title Id : 715205

अंक-35	हिन्दी संस्करण	वर्ष-18	जुलाई-दिसम्बर 2021

प्रोफेसर ब्रजगोपाल
प्रधान सम्पादक
सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा
प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड से सम्मानित
profbrajgopal@gmail.com

डॉ. अखिलेश शुक्ल
ऑनरेरी सम्पादक
प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित
akhileshtrscollege@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल
अतिरिक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा
सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा, रीवा
rnsharmanehru@gmail.com

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
की मुख्य शोध पत्रिका
म.प्र. सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1973 के अंतर्गत पंजीकृत
पंजीयन क्रमांक 1802, सन् 1997

विषय विशेषज्ञ/परामर्श मण्डल

1. डॉ. अरविंद जोशी (आचार्य) बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी
arvindvns@outlook.com
2. डॉ. रामशंकर, आचार्य, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर
rs_dubey@yahoo.com
3. डॉ. डी. एस. राजपूत, आचार्य, डॉक्टर हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय सागर
drdiwakarrajeut@rediffmail.com
4. डॉ. बी. के. सिंह, आचार्य, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी
imdrbrajesh.kv@gmail.com
5. डॉ. अंजली श्रीवास्तव, आचार्य, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा
anjali_apsu@rediffmail.com
6. डॉ. बी. पी. बडोला, सेवानिवृत्त, आचार्य, कांगड़ा हिमाचंल प्रदेश
bpbadola@gmail.com
7. डॉ. आभा सक्सेना, सह प्राध्यापक, अग्रसेन कन्या स्वशासी महाविद्यालय वाराणसी
drabhasaxena7@gmail.com
8. डॉ. प्रज्ञा मिश्रा, आचार्य, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट
pragyamishramgcgv@gmail.com
9. डॉ. आशीष सक्सेना, आचार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद उत्तर प्रदेश।
ashish.ju@gmail.com
10. डॉ. ज्योति उपाध्याय, आचार्य, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन मध्य प्रदेश
drjyotiupadhyay11@gmail.com
11. डॉ. प्रमिला पुनिया, सह प्राध्यापक, इतिहास, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर राजस्थान
pramilapoonia@rediffmail.com
12. डॉ. रामलला शुक्ल, प्राध्यापक, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा
ramlalashukla666@gmail.com
13. डॉ. मृदुल जोशी, आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
dr_mriduljoshi@yahoo.com
14. डॉ. के. के. शर्मा, प्राध्यापक, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा
sharmakktrs@gmail.com
15. डॉ. शैलजा दुबे, प्राध्यापक, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय भोपाल
shailjadubey70@yahho.in
16. डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव, आचार्य, शासकीय कला महाविद्यालय कोटा राजस्थान
dr21pramila@gmail.com
17. डॉ. जयशंकर शाही, आचार्य, अलवर राजस्थान
jayshankarshahi@gmail.com
18. डॉ. एन. पी. त्रिपाठी, सेवानिवृत्त आचार्य, रीवा मध्य प्रदेश
19. डॉ. राजेश भट्ट, एच. एन. बी. केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड
rajeshbhatt11@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract,Keywords, Introduction, Methods, Analysis, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन-

- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेज (ISSN-0973-3914) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है, जो मानव संसाधन मंत्रालय तथा पंजीयक समाचार पत्र एवं पत्रिका, भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा पंजीकृत हैं।
- शोध पत्रिका उलरिच इन्टरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्स्ड और लिस्टेड हैं।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग-अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष जून एवं दिसंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस.एस.एन प्राप्त हैं। शोध पत्रिका Peer-Reviewed हैं।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है।
- शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक,मोबाइल नं., ई-मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50-100 शब्दों का सारांश दिया जाये।
- मुख्य शब्द सारांश के नीचे टाइप कराया जाये।

- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माईक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट- पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिस फांट 010 (फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए-4 साईज के कागज में चारो तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

researchjournal97@gmail.com,
researchjournal.journal@gmail.com

शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई-मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00

-सदस्यता शुल्क -		
अवधि	व्यक्तिगत सदस्यता	संस्थागत सदस्यता
वर्ष एक	2000-00	2500-00
वर्ष दो	2500-00	4000-00

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच-रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जा सकती है।

प्रकाशक: गायत्री पब्लिकेशन्स
रीवा- 486001 (म.प्र.)
मुद्रक: ग्लोरी ऑफसेट
नागपुर

संपादकीय कार्यालय

186/1, विन्ध्य विहार कालोनी
रीवा- 486001 (म.प्र.)
दूरभाष- 7974781746
E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com
www.researchjournal.in

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं है। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

सम्पादकीय

विगत कुछ दिनों से भारत सरकार और भारत के गणमान्य नागरिक इस विषय पर विचार कर रहे हैं कि एक देश एक चुनाव होना चाहिए। लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराए जाने के मुद्दे पर लंबे समय से बहस चल रही है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इस विचार का समर्थन कर इसे आगे बढ़ाया है। वैसे इस मुद्दे पर चुनाव आयोग, नीति आयोग, विधि आयोग और संविधान समीक्षा आयोग विचार कर चुके हैं। 'एक देश-एक चुनाव' लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं का चुनाव एक साथ करवाने का एक वैचारिक उपक्रम है। बेशक यह मुद्दा आज बहस के केंद्र में है, लेकिन विगत में 1952, 1957, 1962, 1967 में ऐसा हो चुका है, जब लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव साथ-साथ करवाए गए थे। यह क्रम तब टूटा जब वर्ष 1968-69 में कुछ राज्यों की विधानसभाएँ विभिन्न कारणों से समय से पहले भंग कर दी गईं। वर्ष 1971 में पहली बार लोकसभा चुनाव भी समय से पहले हो गए थे। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब इस प्रकार चुनाव पहले भी करवाए जा चुके हैं तो अब क्या समस्या है?

दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र हमारे देश में है और चुनावों को लोकतंत्र का सबसे बड़ा उत्सव माना जाता है। यदि हम देखें तो हर वर्ष किसी न किसी राज्य में चुनाव होते रहते हैं। चुनाव की इस निरंतरता के कारण प्रशासनिक और नीतिगत निर्णय भी प्रभावित होते हैं, बल्कि देश के राजस्व पर भी भारी बोझ पड़ता है। निश्चित ही ऐसी परिस्थितियों में 'एक देश-एक चुनाव' विचार पहली नजर में अच्छा प्रतीत होता है, पर यह व्यावहारिक है या नहीं, इस पर विशेषज्ञों की अलग-अलग राय है। बेशक बार-बार होने वाले चुनावों के बजाय एक स्थायित्व वाली सरकार बेहतर होती है, लेकिन इसके लिये सबसे जरूरी है, आम सहमति का होना और यह कार्य बेहद मुश्किल है। राजनीतिक सर्वसम्मति के अभाव में संविधान में आवश्यक संशोधन करना संभव नहीं होगा, क्योंकि इसके लिये दो-तिहाई बहुमत की जरूरत पड़ेगी, जो कि बिना आम सहमति के नहीं किया जा सकता।

पाँच साल में एक बार चुनाव कराने से सभी हितधारकों यानी राजनीतिक दलों, निर्वाचन आयोग, अर्धसैनिक बलों,पुलिस तथा नागरिकों को इसकी तैयारी के लिये अधिक समय मिल सकता है। यदि पहले की तरह लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव साथ-साथ होने लगें तो एक तो बार-बार होने वाले चुनावों के कारण देश की राजनीति का ध्यान राष्ट्रीय हितों से भटकने की समस्या का समाधान होगा और दूसरे, राष्ट्रीय संसाधनों की भी बचत होगी।

यह सही है कि एक साथ चुनाव कराने से सरकारी राजस्व और समय की बचत होगी तथा नीति निर्णय की प्रक्रिया प्रभावित नहीं होगी। चुनावों के समय लगभग यह देखा जाता है कि पूरा का पूरा प्रशासनिक अमला और राजनीतिक दल बेहद व्यस्त हो जाते है। चुनावी आचार संहिता लागू हो जाने के कारण भी विकास के कार्य रुक जाते हैं। प्राय: देखा जाता है कि जब चुनाव का समय नजदीक आता है तो मंत्रियों सहित पूरा सरकारी अमला बेहद व्यस्त हो जाता है, इसके साथ ही चुनाव आचार संहिता लागू होने से विकास कार्य भी ठप पड़ जाते हैं। निश्चित रूप से एक साथ चुनाव कराने के लिए संविधान में कुछ संशोधन करने होंगे, लेकिन यह कोई ऐसा काम नहीं जो बहुत कठिन हो। यदि राजनीतिक सहमति बने तो यह काम अधिक आसानी से किया भी जा सकता है।

जनवरी 2017 में 'राष्ट्रीय मतदाता दिवस' पर पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने का समर्थन करते हुए चुनाव आयोग से कहा था कि सभी राजनीतिक दलों को एक मंच पर लाने की कोशिश करे, ताकि आम सहमति बनाई जा सके। एक साथ चुनाव कराने से न केवल मतदाताओं का उत्साह बना रहेगा, बल्कि इससे धन की बचत होगी और प्रशासनिक प्रयासों की पुनरावृत्ति से भी बचा जा सकेगा। राजनीतिक दलों के खर्च पर भी नियंत्रण लगेगा, जिससे चुनावों में काला धन खपाने जैसी समस्या से भी बचाव होगा। बार-बार चुनावी आदर्श आचार संहिता भी लागू नहीं करनी पड़ेगी, जिससे जनहित के कार्य प्रभावित होते हैं। सरकारी अधिकारियों, शिक्षकों व कर्मचारियों की चुनावी डयूटी लगती है, जिससे बच्चों की पढ़ाई व प्रशासनिक कार्य प्रभावित होते हैं, उस पर अंकुश लगेगा। एक साथ लोकसभा व विधानसभा के चुनाव होने पर सरकारी मशीनरी की कार्य क्षमता बढ़ेगी तथा आम लोगों को इससे फायदा होगा।

एक देश एक चुनाव के विचार के समक्ष कुछ प्रमुख चुनौतियां भी हैं, जिनमें सबसे बड़ी चुनौती लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल को समन्वित करने की है। 'एक देश-एक चुनाव' के लिये सभी राजनीतिक दलों को राजी करना आसान काम नहीं है। कुछ राजनीतिक विशेषज्ञों का यह मानना है कि 'एक देश-एक चुनाव' की आवधारणा देश के संघात्मक ढाँचे के विपरीत सिद्ध हो सकती है। वर्तमान में मतदान करने के लिये प्रत्येक मतदान केंद्र पर एक म्टड का उपयोग एक टटच।ज मशीन के साथ किया जा रहा है। लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने पर इनकी संख्या दोगुनी हो जाएगी। एक साथ चुनाव कराए जाने पर हमें अधिक मतदान अधिकारियों और कर्मियों की आवश्यकता होगी और सुरक्षा व्यवस्था भी अत्यंत मजबूत करनी होगी और इसके लिए हमें पुलिस और केंद्रीय बलों की संख्या को बढ़ाना पड़ेगा। एक साथ चुनाव होने पर म्टड और टटच।जकी संख्या ज्यादा होगी और उनकी सुरक्षा एक महत्वपूर्ण मुद्दा होगा।

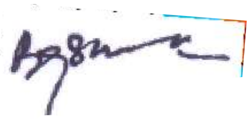

(प्रोफेसर ब्रजगोपाल)
प्रधान संपादक

डॉ. अखिलेश शुक्ल
सम्पादक

अनुक्रमणिका

01	पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में) **अखिलेश शुक्ल**	09
02	नगरीय समाज में वृद्धों की समस्याएँ एवं समाधान (सागर नगर के विशेष संदर्भ में) **आकृति कनोजिया, दिवाकर सिंह राजपूत**	18
03	सोनभद्र की सहरिया जनजाति में सामाजिक एवं तकनीकी रूपान्तरण **दीप्ति सिंह, आभा सक्सेना**	28
04	संभावनाए जगाती नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति **गीता सिंह**	35
05	महिला अपराधिता एक सम्प्रत्यात्मक विश्लेषण **गजानन मिश्र**	39
06	संचार क्रांति का मानव जीवन पर महत्वपूर्ण स्थान रीवा नगर के विशेष सन्दर्भ में **प्रियंका गौतम, संहिता मिश्रा**	46
07	किसानों के जीवन की गुणवत्ता सुधार में कृषि विज्ञान केन्द्र की भूमिका **संजय तिवारी, विनोद शंकर सिंह, आदित्य तिवारी**	52
08	रीवा जिले में कृषि उपज की विपणन व्यवस्था-एक अध्ययन **पुरूषोत्तम प्रसाद बाल्मीकि, भानु साहू**	58
09	भारत में विनिवेश : आजादी से अब तक **कुमुद श्रीवास्तव**	66
10	म.प्र. में रतलाम जिले मे कृषि विपणन समितियों का अध्ययन **राकेश कुमार चौहान**	73
11	कृषि विज्ञान केन्द्र के खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्यसंवर्धन संबंधी तकनीकी हस्तान्तरण का अध्ययन **विनोद शंकर सिंह, संजय तिवारी, आदित्य तिवारी**	80
12	पान उपज एवं विपणन व्यवस्था: छतरपुर जिले के विशेष संदर्भ में **नीना चौरसिया**	87
13	जनपद शाहजहाँपुर में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों का मानव विकास पर प्रभाव **इन्दू मिश्रा**	96
14	वर्तमान् परिप्रेक्ष्य में भारत की विदेश नीति का एक अध्ययन **संध्या शुक्ला, रश्मि पाण्डेय**	102
15	डॉ. भीमराव अम्बेडकर : आधुनिक भारत के निर्माता **सिद्धार्थ मिश्र**	106
16	शुक्रनीतिसार के सैन्य प्रशासन संबंधी राजनीतिक विचारों का अध्ययन **अमरजीत सिंह, महेन्द्र कुमार द्विवेदी**	111
17	सारण जिला में सब्जी उत्पादन एवं विकास की संभावनाएँ; एक भौगोलिक विश्लेषण **संजय कुमार**	117
18	वर्तमान कला में भारतीय कला की सार्थकता एवं महत्व **शोभित कुमार गंगवार**	123
19	उत्तर प्रदेश की लोक कला का संक्षिप्त विवरण **शिवांगी कनौजिया**	127

20	ओरछा के भित्ति चित्रों का तुलनात्मक मूल्याँकन **बृजेश स्वरूप कटियार**	131
21	मानव जीवन के विकास में कला की भूमिका **अजय कुमार**	136
22	सृजनात्मक प्रक्रिया में कलाकार की आंतरिक मनोवैज्ञानिक स्थिति **शालिनी श्रीवास्तव**	141
23	बसोहली शैली में चित्रित गीतगोविन्द **लोकेश्वर सिंह**	144
24	राजस्थानी चित्रकला में पशु-पक्षियों का महत्व **प्रहलाद सिंह**	147
25	भारतीय समकालीन कला का न्यू मीडिया (वर्तमान परिप्रेक्ष्य में) **सहदेव सिंह मरकाम**	151
26	संतुलित आहार : जीवन का आधार **आशुतोष भण्डारी**	155
27	भारतीय शिक्षा का समाज में प्रभाव **अपर्णा पाण्डेय**	162
28	जयपुर घराने में महिला कलाकारों का योगदान **संगीता**	173
29	हिन्दी उपन्यासों में व्यक्त नारी-विमर्श **दिव्या सिंह राजपुरोहित**	179
30	हिन्दी बाल साहित्य में हरिकृष्ण देवसरे का योगदान **पूनम वर्मा, श्रद्धा चन्द्राकर, बलजीत कौर**	183
31	स्वामी कृपाल्वानंदजी के ग्रंथ साहित्य "आसन और मुद्रा" में प्राणोपासान का स्वरूप **कुसूमबा सोढा, हिना वी. मोरी**	187
32	ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं सुराजी गांव योजना **रंजना नीलिमा कच्छप**	191
33	भारतीय संस्कृति व आधुनिक समाज **सुनीता द्विवेदी**	198

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)

•अखिलेश शुक्ल

सारांश- जिस समाज में नारी का स्थान सम्मानजनक होता है, वह उतना ही प्रगतिशील और विकसित होता है। परिवार और समाज के निर्माण में नारी का स्थान महत्वपूर्ण होता है। जब समाज सशक्त और विकसित होता है, तब राष्ट्र भी मजबूत होता है, इस प्रकार राष्ट्र निर्माण में भी नारी केन्द्रीय भूमिका निभाती है। माता के रूप में नारी प्रथम गुरू होती है। जार्ज हर्बर्ट के अनुसार-''एक अच्छी माता सौ शिक्षकों के बराबर होती है, इसलिए उसका हर हालत में सम्मान करना चाहिए।''भारतीय समाज में वैदिक काल में नारी का स्थान बहुत सम्मानजनक था और हमारा अखंड भारत विदुषी नारियों के लिए जाना जाता था। कालांतर में नारी की स्थिति में ह्रास हुआ और मध्यकाल आते-आते यह ह्रास अपने चरम पर जा पहुँचा। चूँकि अंग्रेजों का मकसद भारत पर शासन करना था, न कि समाज सुधार करना, इसलिए ब्रिटिशकाल में भी भारतीय नारी की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। हाँ, कुछ छोटी-मोटी पहल अवश्य शुरू हुई। आजादी के बाद ऐसा सोचा गया था कि भारतीय नारी एक नई हवा में सांस लेगी तथा शोषण और उत्पीड़न से मुक्त होगी, किंतु हुआ उल्टा ही। आजादी के बाद कानूनी स्तर पर नारी को सशक्त बनाने के प्रयास तो खूब हुए, किंतु सामाजिक स्तर पर जो बदलाव आना चाहिए था। वह परिलक्षित नहीं हुआ, जिसका मुख्य कारण रहा, हमारी पुरूष प्रधान मानसिकता, जिसे हम बदल नहीं पाए और नारी के प्रति हमारा रवैया दोयम दर्जे का रहा। यही कारण है कि वैदिककाल में जो नारी शीर्ष पर थी, आज उसके सशक्तिकरण की आवश्यकता महसूस की गई।

मुख्य शब्द - शिक्षा, जागरूकता, भूमिका, सशक्तिकरण

आजाद हिन्दुस्तान गांवों का देश था। सन् 1951 में देश की आबादी की लगभग 83 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती थी और आज भी लगभग तीन चौथाई लोग गांवों में रहते हैं। आशय यह कि देश के विकास के लिए गांवों का सर्वागींण विकास अति आवश्यक था और आज भी है।[1] ग्राम विकास राष्ट्र विकास का पर्याय बन गया है, ग्रामीण विकास के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम समाज में ऐसे वर्ग की पहचान करें जो सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हों या असुविधाओं से वंचित हों तथा जिनके विकास के लिए आवश्यक कदम उठाये जाने जरूरी हो। जब हम अपने समाज को देखते हैं तो पाते है कि हमारे समाज

• प्राध्यापक, समाजशास्त्र, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा,मध्य प्रदेश

का एक बहुत बड़ा वर्ग जो महिलाओं का है निश्चित रूप से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है।[2] इनकी स्थिति को देखते हुए हम निःसंकोच ऐसे वर्ग में रख सकते हैं, जिनके विकास के लिए विशेष कदम उठाये जाने की आवश्यकता है। भारत के संविधान निमार्ताओं ने इस बात को समझा था। संविधान के अनुच्छेद 15 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार से भेदभाव नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 15 (3) में भी स्पष्ट रूप से महिलाओं और बच्चों के लिए राज्य को विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति दी गयी है।[3]

भारत में स्थानीय स्वायत शासन का अस्तित्व प्राचीन काल से ही रहा है, उस समय भी महिलाओं की भागीदारी हुआ करती थी। स्वतंत्रता संघर्ष के क्रम में राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रिया में महिलाओं के महत्व को समझा गया और उन्हें उचित स्थान मिला। महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में भागीदारी देने के लिए संविधान में कुछ प्रावधान किये गये तथा पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण दिया गया, परिणामस्वरूप महिलायें भी पंचायतों के काम में पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है।[4]

भारत में पंचायतों का अस्तित्व बहुत पहले से है परन्तु 1992 में सरकार ने 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा इसे पुर्नजीवित करने का प्रयास किया तथा यह अधिनियम 1993 मई से कार्य रूप में आया। महिलाओं को आरक्षण देने का मुद्दा 1985-86 में उठा। उसी वर्ष केन्या नैरोबी में एक राष्ट्रीय दस्तावेज पेश किया गया, जिसमें महिलाओं के विकास का समुचित प्रबंध किया गया।[5] इस दस्तावेज को नेशनल परस्पेक्टिव प्लान के नाम से जाना जाता है। भारत के राजनीतिक इतिहास में यह पहला समय था, जब स्थानीय स्वशासित संस्थाओं में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए। यह संविधान संशोधन बलवंत मेहता समिति (1957) और अशोक मेहता समिति (1978) की सिफारिश थी कि निर्वाचित प्रतिनिधि तक ही शक्ति सीमित नहीं होना चाहिए। इस समिति की सिफारिश के आधार पर सरकार ने पंचायती राज व्यवस्था लागू की।

हमारे देश में लगभग तीन चौथाई लोग गांवों में रहते हैं जिसमें महिलाओं की स्थिति अति दयनीय है। इसके प्रमुख कारण हमारे समाज का पुरूष प्रधान होना, महिलाओं की कमजोर आर्थिक, शैक्षणिक आदि स्थितियां हैं। ग्रामीण समाज में व्याप्त गरीबी के कारण यह स्थिति और खराब हुई। यद्यपि आजादी के बाद से ग्राम विकास के लिए चलाये गये कार्यक्रमों में महिलाओं को विशेष स्थान दिया गया किन्तु पुरूष शासित, रूढ़िवादी ग्रामीण समाज में कोई विशेष प्रगति देखने को नहीं मिली।

पूर्ववर्ती शोध कार्यो का संक्षिप्त विवरण- सत्यशील अग्रवाल 2017 "भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति", प्रदीप कुमार "दीप" 2017 "राष्ट्र निर्माण और विकास में महिलाओं की भूमिका", अंजली पटेल 2017 "हिन्दी नवजागरण और स्त्री", रीतू मडाड 2016 "शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रति जागरूकता", निभा सिन्हा 2015 "महिला विकास और सशक्तिकरण एवं जन माध्यम", श्रीमती सुष्मिता दत्त 2013 "देश के विकास में महिलाओं का अमूल्य योगदान", मोहम्मद सादिया रफीक अहमद 2012 "आधुनिक युग में महिलाओं की स्थिति", धीरेन्द्र सिंह 2011

"पंचायतीराज में महिलाओं की सहभागिता", डी.के. बंसल 2011 "राष्ट्र निर्माण में महिलाओं का विशेष योगदान", नीना सिसौदिया 2002, "महिलाओं की राजनीतिक भूमिका ग्रामीण एवं नगरीय समुदायों के संदर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन" विषय पर अध्ययन किया है। इन इन पूर्ववर्ती अध्ययनों के निष्कर्षों का अध्ययन करने के उपरांत मुझे यह शोध पत्र तैयार करने की इच्छा हुई।

शोध क्षेत्र का परिचय- रीवा जिला भारत वर्ष के हृदय स्थल मध्यप्रदेश के उत्तर-पूर्वी किनारे में 240^{0} 18' से 250^{0} 12' उत्तरी अक्षांश एवं 810^{0} 2' पूर्वी देशांतर से 820^{0} 20' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। रीवा जिले का नाम नर्मदा नदी के प्राचीन नाम 'रेवा' पर आधारित है। रीवा जिले का कुल क्षेत्रफल 6287.5 वर्ग कि.मी. है। इस जिले की उत्तर से दक्षिण की अधिकतम लम्बाई 105 कि.मी. है। प्रशासकीय दृष्टि से इस जिले मे बारह तहसीलें- हुजूर, हुजूर नगर, रायपुर-कर्चुलियान, गुढ़, मऊगंज, हनुमना, सिरमौर, जवा, नईगढ़ी, त्योंथर, सेमरिया एवं मनगवाँ हैं तथा नौ विकासखण्ड- रीवा, रायपुर कर्चुलियान, मऊगंज, नईगढ़ी, हनुमना, सिरमौर, गंगेव, त्योंथर एवं जवा हैं। वर्तमान समय में रीवा जिले में 2,725 ग्राम हैं, जिनमें सर्वाधिक 402 ग्राम त्योंथर विकासखण्ड में हैं तथा सबसे कम 219 ग्राम नईगढ़ी विकासखण्ड में हैं, इसी प्रकार जिले में 3,843 बसाहटें हैं जिसमें जवा विकासखण्ड में सर्वाधिक 565 बसाहटें हैं, तथा सबसे कम बसाहटें नईगढ़ी विकासखण्ड में हैं जहां इनकी संख्या 327 है। जिले में 830 ग्राम पंचायतें हैं, जिनमें सर्वाधिक 104 ग्राम पंचायतें गंगेव विकासखण्ड में तथा सबसे कम 78 ग्राम पंचायतें नईगढ़ी विकासखण्ड में हैं।

शोध प्रविधि- शोध कार्य में प्रदत्तों का संग्रहण या तो प्रमाणिक परीक्षणों द्वारा या स्व-निर्मित अनुसंधान उपकरणों द्वारा किया जाता है, जिससे वस्तुनिष्ठ प्रदत्त प्राप्त हो जाते हैं तथा इन प्रदत्तों के सारणीयन, विश्लेषण एवं व्याख्या के माध्यम से शोध अध्ययन के सही परिणाम तक पहुंचा जा सकता है। इस शोध पत्र हेतु "महिला सशक्तिकरण में पंचायतीराज की भूमिकारू एक समाजशास्त्रीय अध्ययन" के लिए रीवा जिले का चयन किया, जिसके अंतर्गत जिले के सभी नवों विकासखण्डों-रीवा, रायपुर कर्चुलियान, गंगेव, सिरमौर, मऊगंज, नईगढ़ी, हनुमना, त्योंथर एवं जवा में से प्रत्येक विकासखण्ड से 25-25 महिला जनप्रतिनिधियों, कुल 225 महिला जनप्रतिनिधयों, 15-15 समाजसेवियों, कुल 135 समाजसेवियों, 10-10 समाजशास्त्रियों, कुल 90 समाजशास्त्रियों तथा 5-5 अधिकारियों, कुल 45 अधिकारियों को विस्तृत शोध सर्वेक्षण हेतु न्यादर्श में चयनित किया गया है। न्यादर्शों का चयन दैव-निदर्शन विधि से किया है।

तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण-इस प्रकार संपूर्ण शोध क्षेत्र से 495 उत्तरदाताओं से शोध अध्ययन की विषयवस्तु से संबंधित विभिन्न जानकारियां, साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से संकलित की गयी तथा प्रदत्तों के संग्रहण, सारणीयन, विश्लेषण एवं व्याख्या द्वारा वस्तुस्थिति की जानकारी प्राप्त की है।

तालिका क्रमांक 01
महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता संबंधी अध्ययन
(आधार महिला जनप्रतिनिधियों की साक्षात्कार अनुसूची)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित महिला जनप्रतिनिधियों की संख्या	पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता					
			बढ़ी है		नहीं बढ़ी है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	25	18	72.00	06	24.00	01	4.00
2.	रायपुर-कर्चुलियान	25	16	64.00	07	28.00	02	8.00
3.	गंगेव	25	15	60.00	08	32.00	02	8.00
4.	सिरमौर	25	14	56.00	08	32.00	03	12.00
5.	मऊगंज	25	14	56.00	09	36.00	02	8.00
6.	नईगढ़ी	25	13	52.00	08	32.00	04	16.00
7.	हनुमना	25	15	60.00	07	28.00	03	12.00
8.	त्योंथर	25	14	56.00	08	32.00	03	12.00
9.	जवा	25	15	60.00	07	28.00	03	12.00
	योग	225	134	59.56	68	30.22	23	10.22

उपरोक्त तालिका क्रमांक 01 में शोध क्षेत्र रीवा जिले के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित महिला जनप्रतिनिधियों से साक्षात्कार के माध्यम से शोध क्षेत्र में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता की जानकारी हेतु प्रदत्तों का संकलन किया गया है।उपरोक्त तालिका क्रमांक 01 के आंकड़े यह दर्शाते हैं कि शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 25-25 महिला जनप्रतिनिधियों कुल मिलाकर 225 महिला जनप्रतिनिधियों में से 134 महिला जनप्रतिनिधियों का मानना है कि शोध क्षेत्र की महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है, जबकि 68 महिला जनप्रतिनिधियों के अनुसार शोध क्षेत्र की महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं बढ़ी है तथा 23 महिला जनप्रतिनिधियों ने अपने जवाब में कहॉ कि पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने के संबंध में उन्हें नहीं पता है।

इससे स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र के 59.56 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधियों के अनुसार शोध क्षेत्र की महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी हैं, तथा 30.22 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि मानती हैं, कि शोध क्षेत्र में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं बढ़ी है, जबकि 10.22 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधियों ने अपने जवाब में कहा कि शोध क्षेत्र में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने के संबंध में उन्हें नहीं पता है।

तालिका क्रमांक 02
महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता संबंधी अध्ययन
(आधार समाजसेवी साक्षात्कार अनुसूची)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित समाजसेवियों की संख्या	पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता					
			बढ़ी है		नहीं बढ़ी है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	15	12	80.00	02	13.33	01	6.66
2.	रायपुर-कर्चुलियान	15	12	80.00	02	13.33	01	6.66
3.	गंगेव	15	11	73.33	03	20.00	01	6.66
4.	सिरमौर	15	12	80.00	02	13.33	01	6.66
5.	मऊगंज	15	11	73.33	02	13.33	02	13.33
6.	नईगढ़ी	15	11	73.33	02	13.33	02	13.33
7.	हनुमना	15	11	73.33	02	13.33	02	13.33
8.	त्योंथर	15	11	73.33	02	13.33	02	13.33
9.	जवा	15	11	73.33	03	20.00	01	6.66
	योग	135	102	75.56	20	14.81	13	9.62

उपरोक्त तालिका क्रमांक 02 में शोध क्षेत्र रीवा जिले के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित समाजसेवियों से साक्षात्कार के माध्यम से शोध क्षेत्र की महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता की जानकारी हेतु प्रदत्तों का संकलन किया गया है।

उपरोक्त तालिका क्रमांक 02 के आंकड़े यह दर्शाते हैं कि शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 15-15 समाजसेवियों कुल मिलाकर 135 समाजसेवियों में से 102 समाजसेवियों का मानना है कि शोध क्षेत्र में महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है। जबकि 20 समाजसेवियों ने अपने जवाब में कहा कि पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं बढ़ी है तथा 13 समाजसेवियों ने अपने जवाब में कहा कि पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने के संबंध में उन्हें नहीं पता है।

इससे स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र के 75.56 प्रतिशत समाजसेवियों के अनुसार शोध क्षेत्र की महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है तथा 14.81 प्रतिशत समाजसेवी मानते हैं कि पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं बढ़ी है, जबकि 9.62 प्रतिशत समाजसेवियों ने कहा कि पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने के संबंध में उन्हें नहीं पता है।

तालिका क्रमांक 03
महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता संबंधी अध्ययन
(आधार समाजशास्त्री साक्षात्कार अनुसूची)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित समाजशास्त्रियों की संख्या	पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता					
			बढ़ी है		नहीं बढ़ी है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	10	7	70.00	2	20.00	1	10.00
2.	रायपुर-कर्चुलियान	10	7	70.00	2	20.00	1	10.00
3.	गंगेव	10	7	70.00	2	20.00	1	10.00
4.	सिरमौर	10	8	80.00	1	10.00	1	10.00
5.	मऊगंज	10	7	70.00	2	20.00	1	10.00
6.	नईगढ़ी	10	5	50.00	3	30.00	2	20.00
7.	हनुमना	10	7	70.00	2	20.00	1	10.00
8.	त्योंथर	10	7	70.00	1	10.00	2	20.00
9.	जवा	10	7	70.00	2	20.00	1	10.00
	योग	90	62	68.89	17	18.88	11	12.22

उपरोक्त तालिका क्रमांक 03 में शोध क्षेत्र रीवा जिले के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित समाजशास्त्रियों से साक्षात्कार के माध्यम से शोध क्षेत्र में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता की जानकारी हेतु प्रदत्तों का संकलन किया गया है।

उपरोक्त तालिका क्रमांक 03 के आंकड़े यह दर्शाते हैं कि शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 10-10 समाजशास्त्रियों कुल मिलाकर 90 समाजशास्त्रियों में से 62 समाजशास्त्रियों का मानना है कि शोध क्षेत्र की महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है तथा 17 समाजशास्त्रियों ने अपने जवाब में कहा कि शोध क्षेत्र में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं बढ़ी है, जबकि 11 समाजशास्त्रियों ने अपने जवाब में कहा कि पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने के संबंध में उन्हें कोई जानकारी नहीं है।

इससे स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र के 68.89 प्रतिशत समाजशास्त्रियों के अनुसार शोध क्षेत्र की महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से शिक्षा के क्षेत्र में जागरूकता बढ़ी है, तथा 18.88 प्रतिशत समाजशास्त्रियों के अनुसार शोध क्षेत्र में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं बढ़ी है, जबकि 12.22 प्रतिशत समाजशास्त्रियों ने कहा कि पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से शोध क्षेत्र की महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने के संबंध में उन्हें कोई जानकारी नहीं है।

तालिका क्रमांक 04
महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता संबंधी अध्ययन
(आधार अधिकारी साक्षात्कार अनुसूची)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित अधिकारियों की संख्या	पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता					
			बढ़ी है		नहीं बढ़ी है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	रीवा	05	4	80.00	00	00.00	01	20.00
2.	रायपुर-कर्चुलियान	05	3	60.00	01	20.00	01	20.00
3.	गंगेव	05	3	60.00	01	20.00	01	20.00
4.	सिरमौर	05	3	60.00	01	20.00	01	20.00
5.	मऊगंज	05	3	60.00	01	20.00	01	20.00
6.	नईगढ़ी	05	3	60.00	01	20.00	01	20.00
7.	हनुमना	05	3	60.00	01	20.00	01	20.00
8.	त्योंथर	05	3	60.00	01	20.00	01	20.00
9.	जवा	05	4	80.00	00	00.00	01	20.00
	योग	45	29	64.44	7	15.55	09	20.00

उपरोक्त तालिका क्रमांक 04 में शोध क्षेत्र रीवा जिले के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित अधिकारियों से साक्षात्कार के माध्यम से शोध क्षेत्र में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता की जानकारी हेतु प्रदत्तों का संकलन किया गया है।

उपरोक्त तालिका क्रमांक 04 के आंकड़े यह दर्शाते हैं कि शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 05-05 अधिकारियों कुल मिलाकर 45 अधिकारियों में से 29 अधिकारियों का मानना है कि शोध क्षेत्र की महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है, जबकि 7 अधिकारियों के अनुसार शोध क्षेत्र में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं बढ़ी है तथा 9 अधिकारियों ने अपने जवाब में कहा कि शोध क्षेत्र में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने के संबंध में उन्हें कोई जानकारी नहीं है।

इससे स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र के 64.44 प्रतिशत अधिकारी मानते हैं कि शोध क्षेत्र की महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है तथा 15.55 प्रतिशत अधिकारियों के अनुसार पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से शोध क्षेत्र की महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं बढ़ी है, जबकि 20 प्रतिशत अधिकारियों का कहना था कि शोध क्षेत्र की महिलाओं में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से शिक्षा के क्षेत्र में जागरूकता बढ़ने के संबंध में उन्हें कोई जानकारी नहीं है।

ग्राफ क्रमांक 01
महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने संबंधी अध्ययन

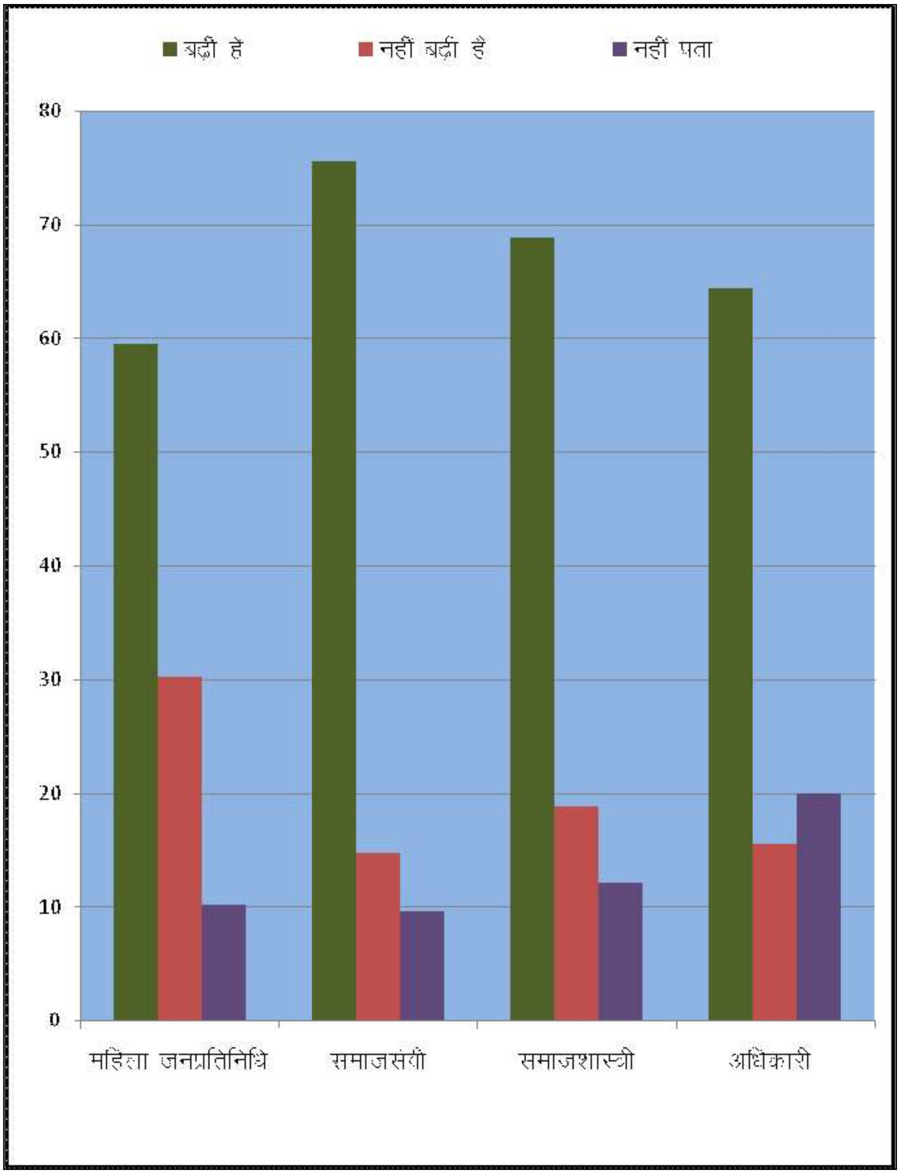

निष्कर्ष- तालिका क्रमांक 01,02,03 एवं 04 के विश्लेषण एवं व्याख्या से यह तथ्योद्घाटन होता है कि शोध क्षेत्र के 59.56 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधियों, 75.56 प्रतिशत समाजसेवियों, 68.89 प्रतिशत समाजशास्त्रियों एवं 64.44 प्रतिशत अधिकारियों के अनुसार शोध क्षेत्र में पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है। इस प्रकार शोध क्षेत्र के अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह माना है कि पंचायतीराज अधिनियम के प्रभाव से महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. सिंह धीरेन्द्र (2011)-पंचायतीराज में महिलाओं की सहभागिता http://www.sriprbhu.blogspot.in
2. दत्त, विजय रंजन (1997)-पंचायतीराज संकल्पना और वर्तमान स्वरूप, सर्व संघ प्रकाशन, वाराणसी
3. रीतू मडाड (2016), शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रति महिलाओं में जागरूकता, भारतीय शोध पत्रिका वर्ष 35, अंक-2, जुलाई-दिसंबर
4. निभा सिन्हा, (2016) - महिलाओं के संदर्भ में नई मीडिया एवं सामाजिक परिवर्तन, http://www.newswriters.in.
5. दत्त श्रीमती सुष्मिता (2013) - देश के विकास में महिलाओं का योगदान http://www.dpreg.gov.in

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

नगरीय समाज में वृद्धों की समस्याएँ एवं समाधान (सागर नगर के विशेष संदर्भ में)

• आकृति कनोजिया
•• दिवाकर सिंह राजपूत

सारांश- प्रस्तुत शोध पत्र में वृद्धों से संबंधित समस्याओं एवं समाधानों को जानने का प्रयास किया गया है। प्राचीन काल से ही हमारे देश में वृद्धों को सर्वोच्च पद व स्थान दिया गया है अतः सामाजिक संरचना की सबसे महत्वपूर्ण व्यवस्था संयुक्त परिवार में समस्त अधिकार वृद्धों के पास होते थे परिवार में उनकी भूमिका सर्वोपरि होती थी। परन्तु औद्योगीकरण नगरीकरण, आधुनिकीकरण के कारण परिवार की संरचना में भी परिवर्तन हुआ। संयुक्त परिवार अव तेजी से एकल परिवार में परिवर्तित हो रहे है जिससे वृद्धों की भी स्थिति, देख रेख तथा सत्ता में भी परिवर्तन हो रहा है। जिस कारण वृद्धों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। प्रस्तुत अध्ययन में उद्देश्य के रूप में वृद्धों की पारिवारिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ, तथा समाधानों को जानने का प्रयास किया गया है। अध्ययन क्षेत्र में मध्यप्रदेश के सागर नगर को लिया गया है। इस अध्ययन में निदर्श के रूप में 40 उत्तरदाताओं को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति के आधार पर चयनित किया गया है। आँकड़े एकत्रित करने हेतु साक्षात्कार तकनीक तथा साक्षात्कार अनुसूची उपकरण के रूप में प्रयोग की गई है। यह अध्ययन प्राथमिक तथ्यों पर आधारित है। सारणीयन द्वारा इन तथ्यों का वर्गीकरण किया गया है। अध्ययन करने के पश्चात निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में नगरीय समाज में वृद्धजन कई समस्याओं से ग्रसित है। अध्ययन के आधार पर एकल परिवार निरंतर बढ़ते जा रहे है अतः नगरों में लोगों के पास समय की कमी के चलते वरिष्ठ जनों पर ध्यान भी कम दिया जाता रहा है। परिवार में कम सदस्य होने के कारण वृद्धों को समय नहीं दे पाते जिससे वह अकेलापन महसूस करते है। आर्थिक समस्या होने से वृद्ध धन अर्जन का कार्य भी कर रहे है। अधिकांश वृद्ध ऐसा मानते है कि उनके कमजोर होने पर आर्थिक रूप से परेशान किया जाता है। वृद्धों से संबंधित योजनाओं का संचालन किया जा रहा है परन्तु अधिकांश वृद्धों को उसकी जानकारी नहीं होती। जागरूक नागरिक जो स्वयं योजनाओं का लाभ ले रहे है उन्हें योजनाओं से संबंधित जानकारी है।

मुख्य शब्द - नगरीय समाज, वृद्ध, नगरीकरण, औद्योगीकरण, जैविक वृद्धावस्था, मनोवैज्ञानिक वृद्धावस्था, सामाजिक वृद्धावस्था

• शोध छात्रा, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.)
•• प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.)

मानवीय इतिहास के प्रत्येक समाज की सामाजिक संरचना एवं संगठन में वृद्धों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी वैदिक काल से ही वृद्धों को समाज एवं परिवार में सर्वोच्च पद प्रदान किया गया था। भारत में सामाजिक संरचना की सबसे महत्वपूर्ण व्यवस्था संयुक्त परिवार व्यवस्था थी, जिसमें परिवार के समस्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अधिकार परिवार के सबसे अधिक उम्रदराज (वृद्ध) व्यक्ति के पास होते थे। परिवार में उनकी भूमिका सर्वोपरि होती थी। पितृसत्तात्मक राष्ट्र होने के कारण परिवार में पिता का मुख्य दर्जा होता था। पिता न होने की स्थिति में वृद्ध माता को वह स्थान दिया जाता था।किन्तु औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप औद्योगीकरण एवं नगरीकरण हुआ है जिससे कृषि व्यवस्था के स्थान पर उद्योगों को प्राथमिकता मिलने लगी और परिवार की संरचना में परिवर्तन हुआ। भारत में नगरीकरण औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण का प्रभाव पारिवारिक भूमिका प्रतिमानों में परिवर्तन के रूप में दिखाई पड़ता है। पारिवारिक संरचना में आये इन परिवर्तनों से वृद्धों की स्थिति देखरेख सत्ता में भी परिवर्तन हो रहा है।

जी.एच. मीड के प्रतीकात्मक अंत:क्रिया वादी (Symbiolic interaction) परिप्रेक्ष्य के अनुसार वृद्धावस्था एवं उम्र का बढ़ना सामाजिक रूप से उन प्रतीकों द्वारा निर्मित और निर्धारित किए जाते है जो सामाजिक अत: क्रियाओं के वृद्धावस्था से मिलते जुलते है। जबकि उम्र का बढ़ना एक जैविक प्रक्रिया है। प्रतीकात्मक अत: क्रिया वादी का मानना है कि ''युवा या वृद्ध'' होने का अर्थ जो समाज के द्वारा निर्मित किया गया हो। इसका अर्थ है कि उम्र बढ़ने की जैविक प्रक्रिया से जुड़ा कोई अंर्तनिर्हित सांस्कृतिक अर्थ नहीं है बल्कि संस्कृतियाँ विशेष अर्थों के साथ युवाओं और वृद्धों का अनुसरण करती है। उम्र के सामाजिक रूप से निर्मित प्रकृति को देखते हुये, कुछ ऐसे व्यवहार होते हैं जिन्हें लोग आमतौर पर कुछ आयु समूहों के साथ उपयुक्त या स्वीकार्य मानते हैं।

वृद्ध की अवधारणा- व्यक्ति की आयु का बढ़ना एक जैविक प्रक्रिया है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ कई शारीरिक परिवर्तन भी होने लगते हैं। अत: वृद्धावस्था एक शारीरिक प्रक्रिया है जिसमें आमतौर पर किसी व्यक्ति की कार्यात्मक क्षमता में निरंतर गिरावट आने लगती है। वृद्धावस्था कई बीमारियों के साथ-साथ कुछ असमानताओं को लाता है। भारत सरकार ने जनवरी 1999 में वृद्धों के लिये राष्ट्रीय नीति अपनाई जिसमें यह परिभाषित किया गया कि वरिष्ठ नागरिक या वयोवृद्ध ऐसे व्यक्ति हें जिनकी आयु साठ (60) वर्ष या उससे अधिक है।[1]

वृद्धावस्था के आयाम-

जैविक वृद्धावस्था- वृद्धों की जैविक अवस्था के अंतर्गत यह वृद्धों के शारीरिक परिवर्तनों को संदर्भित करता है। जैस-जैसे किसी व्यक्ति की आयु बढ़ती है उस व्यक्ति के शरीर में विभिन्न बदलाव होने प्रारंभ हो जाते हैं। तथा शारीरिक शक्तियां क्षीण होने लगती हैं। जैसे शरीर में कमजोरी आना, जोड़ों में दर्द, झुर्रियाँ पड़ना बालों का झड़ना तथा रंग में परिवर्तन होना इत्यादि, वृद्धावस्था की ओर संकेत करते हैं।

मनोवैज्ञानिक वृद्धावस्था- वृद्धावस्था में मनोवैज्ञानिक वृद्धावस्था के अंतर्गत व्यक्ति की मानसिक स्थिति में गिरावट आती है। जिसमें वृद्ध व्यक्ति की तर्क शक्ति, सीखने की क्षमता, याद रखने की क्षमता आयु बढ़ने के साथ-साथ क्षीण होती जाती है।

सामाजिक वृद्धावस्था- व्यक्ति के जीवन की इस अवस्था में उसकी सामाजिक स्थिति में गिरावट, उनके कर्तव्यों और भूमिका में अंतर, समाज के अन्य लोगों से पहले की अपेक्षा कम मेल-मिलाप होने लगता है।

साहित्यक सर्वेक्षण-

डॉं. शशि नाथ मंडल (2011)[2] ने अपने अध्ययन में बताया कि वृद्धों के मानवाधिकारों की चर्चा की जिससे उनसे संबंधित समस्याएँ, दुर्व्यवहार तथा उसके कारकों के बारे में बताया। वृद्धों से संबंधित सभी नियम कानून उन्हें दी गई छूट तथा योजनाओं व अधिकार बताये गये।

टी मोहापात्रा (2011)[3] ने वृद्धों पर अनुभावात्मक अध्ययन कर बताया कि वृद्धावस्था के समय वृद्ध अपने बच्चों पर निर्भर होते हैं भारतीय समाज में परंपरागत समर्थन जैसे संयुक्त परिवार नातेदारी इत्यादि को शहरीकरण, आधुनिकीकरण के चलते इनमें कमी आयी है तथा संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण पारिवारिक संबंध भी परिवर्तित हुये हैं। अतः यह परिवर्तन स्वस्थ वृद्ध तथा परिवार के स्तर के लिये खतरे के समान हैं। युवाओं में वैयक्तिता के चलते तथा सुखवादी संसाधनों को प्राप्त करने की तीव्रता में दूसरों को अनदेखा करते जा रहे हैं। युवाओं के इस तरह के व्यवहार से देखभाल की कमी, मानसिक प्रताड़ना, वृद्धों के प्रति बढ़ती जा रही है।

एच.अंसारी (2011)[4] ने वृद्धों के सामाजिक परिवर्तन की अनुभूति पर अध्ययन कर बताया कि पुत्रों के प्रवास कर जाने पर वृद्धों की भूमिका बच्चों और महिलाओं की देखभाल के लिये और बढ़ जाती है तथा पुत्रवधू में उनकी सास की सेवा में कमी आई है। वर्तमान में पुत्रों में समय की कमी के कारण वृद्धों की सेवा करने की इच्छा में भी कमी आई है। प्रवजन के कारण पिता पुत्र में भौगोलिक दूरी से पिता के लिये पुत्र का सेवा भाव, देखभाल तथा आदर भी कम हुआ है। इसमें बुजुर्गों की सत्ता में भी कमी आई है। इसके साथ ही साथ युवाओं तथा वृद्धों के निवास, समायोजन की प्रक्रिया भी समय के साथ परिवर्तित हुई है।

डॉं. टी. दोषी एवं योगेश जोशी (2013)[5] ने अपने शोध में बताया कि वृद्धों को शारीरिक बीमारी, मानसिक रोग, सामंजस्य समस्या का सामना, इस उम्र में सामान्य होना बताया गया है परिवार के सदस्यों का उन पर ध्यान न देना व्यस्त जीवन के चलते उन्हें अपेक्षित रखा जाता है जिसका परिणाम वृद्धों की शारीरिक व मानसिक स्थिति दयनीय हो जाती है।

एल. यादव (2014)[6] ने अपना अध्ययन दिल्ली के वृद्धाश्रम में करने के पश्चात् यह बताया कि महिलाओं ने अपना पूर्ण जीवन गृह कार्यों में लगाया जिससे उन्हें कोई आय प्राप्त नहीं हुई इस कारण उन्हें अपने परिवार पर निर्भर होने के लिये विवश होना पड़ा। वृद्धों की पारिवारिक देखभाल न होने के कारण अधिकांश वृद्ध संस्थाओं (वृद्धाश्रम) में चले जाते है। वृद्ध अपने अकेलेपन तथा बच्चों के साथ सामांजस्य स्थापित न होने के कारण आश्रम में चले जाते हैं। इनमें से कुछ स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने की आशा लेकर आश्रम में निवासरत होते हैं।

डॉं. फरहान तथा डॉं. रियाज (2015)[7] ने अध्ययन कर बताया कि वृद्ध अपने परिवार में अत्यंत दुख को महसूस करते हैं। संयुक्त परिवार से एकल परिवार में परिर्वतन ही वृद्धों की समस्याओं का कारण माना है। बच्चों के व्यस्त होने के कारण वह अपने

माता पिता को समय नहीं दे पाते जिससे वह अकेलापन महसूस करते है तथा उन्हें समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

डॉं. सिंह (2015)[8] ने अपने अध्ययन में बताया कि शहरीकरण, परिवार के एकल होने, औद्योगीकरण तथा आधुनिकीकरण के चलते भारतीय समाज के परंपरागत मूल्यों तथा वृद्धों के अधिकारों में कमी आई है इस कारण वृद्धों को सामाजिक आर्थिक, मानसिक परिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

डॉं. मूर्ति एवं डॉं. ललिथा कुमारी (2017)[9] ने परिवार तथा आश्रम में रहने वाले वृद्धों पर अध्ययन कर बताया कि वृद्धाश्रम में रहने वाले वृद्धों की अपेक्षा परिवार में रहने वाले वृद्धों की स्थिति बेहतर है। परिवार में रहने वाले वृद्धों में लगातार सदस्यों से आपसी संपर्क बने रहते हैं। जिसमें उनके सामाजिक संबंध अच्छे रहते है। वहीं दूसरी ओर वृद्धाश्रम में रहने वाले वृद्ध प्रायः अकेलापन महसूस करते हैं तथा आश्रम में रहने से वृद्धों के जीवन में संतोष का स्तर निम्न पाया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. वृद्धों की पारिवारिक समस्याओं को जानने का प्रयास करना।
2. वृद्धों की आर्थिक समस्याओं को ज्ञात करना।
3. वृद्धों से संबंधित समस्याओं के समाधानों को ज्ञात करने का प्रयास करना।

अध्ययन क्षेत्र- सागर जिला मध्यप्रदेश के उत्तर मध्य क्षेत्र में फैला हुआ है। यह 23^0 10” और $24^0$27” उत्तरी अक्षांश तथा $78^0$4” और 79^0 21” पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। सागर में 13 तहसील स्थित हैं। स्थापना वर्ष 1860 है। जिले की कुल जनसंख्या 2,378,458 है। यहां मुख्य रूप से हिन्दी भाषा तथा बुन्देलीखंडी बोली जाती है। सागर नगर निगम के अंतर्गत 48 वार्ड आते हैं तथा 07 वार्ड कैंट क्षेत्र के अधीन है।[10]

अध्ययन पद्धति- प्रस्तुत शोध पत्र में वृद्धों से संबंधित समस्याओं एवं समाधानों को जानने का प्रयास किया गया है। अध्ययन हेतु निदर्श के रूप में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति के अनुसार 40 उत्तरदाताओं को चयनित किया गया है। आँकड़े एकत्रित करने हेतु साक्षात्कार तकनीक का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु उपकरण के रूप में साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन हेतु प्राथमिक तथ्यों का संकलन कर समस्याओं को जानने का प्रयास किया गया है एवं सारणीयन द्वारा तथ्यों का वर्गीकरण किया गया है।

तालिका क्रमांक 01
लिंग

क्रमांक	लिंग	आवृत्ति	प्रतिशत
01	स्त्री	19	47.5
02	पुरूष	21	52.5
	कुल	40	100

तालिका क्रमांक 01 में उत्तरदाताओं के लिंग के आधार पर 47.5 प्रतिशत स्त्री 52.5 प्रतिशत पुरूषों का है।

तालिका क्रमांक 02
परिवार का स्वरूप

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	संयुक्त	16	40
02	एकल	24	60
	कुल	40	100

तालिका क्रमांक 02 में उत्तरदाताओं के परिवार के स्वरूप के आधार पर संयुक्त परिवार 40 प्रतिशत तथा एकल परिवार 60 प्रतिशत है।

तालिका क्रमांक 03
परिवार में आपकी देखभाल कौन करता है?

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	परिवार के सभी सदस्य	07	17.5
02	जिसके पास समय होता है।	19	47.5
03	कोई नहीं करता	10	25
04	अन्य	04	10
	कुल	40	100

तालिका क्रमांक 03 के अनुसार परिवार में वृद्धों की देखभाल में परिवार के सभी सदस्यों के द्वारा 17.5 प्रतिशत वृद्धों की देखभाल की जाती है। 47.5 प्रतिशत जिनके पास समय होता है तथा 25 प्रतिशत कोई देखभाल नहीं करता शेष 10 प्रतिशत देखभाल के अन्य कारण है।

तालिका क्रमांक 04
क्या परिवार में आपके स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए भोजन दिया जाता है।

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हमेशा	06	15
02	कभी-कभी	10	25
03	अस्वस्थ होने पर	19	47.5
04	नहीं दिया जाता	05	12.5
	कुल	40	100

तालिका क्रमांक 04 के अनुसार उत्तरदाताओं के स्वास्थ को ध्यान में रखते हुए 15 प्रतिशत लोगों को हमेशा भोजन दिया जाता है। 25 प्रतिशत लोगों को कभी-कभी 47.5 प्रतिशत लोगों को अस्वस्थ होने पर तथा 12.5 प्रतिशत लोगों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुये भोजन नहीं दिया जाता।

तालिका क्रमांक 05
परिवार के सदस्यों का आपके प्रति व्यवहार कैसा है?

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	अच्छा	12	30
02	सामान्य	22	55
03	बुरा	06	15
	कुल	40	100

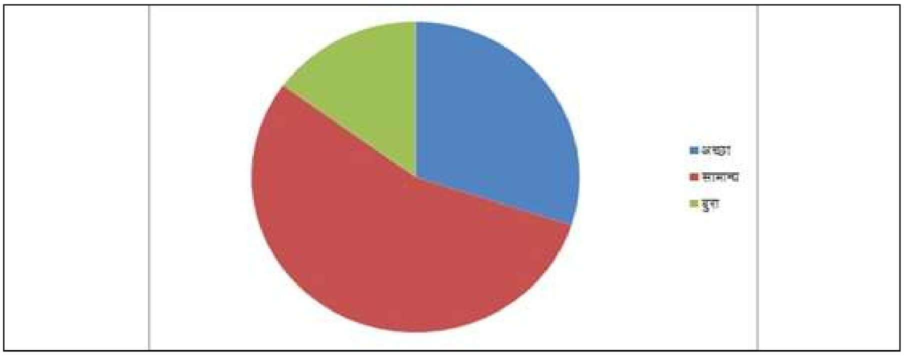

तालिका क्रमांक 05 के आधार पर परिवार के सदस्यों का उत्तरदाताओं के प्रति व्यवहार में 30 प्रतिशत वृद्धों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है, 55 प्रतिशत वृद्धों के साथ सामान्य व्यवहार तथा 15 प्रतिशत वृद्धों के साथ बुरा व्यवहार किया जाता है।

तालिका क्रमांक 06

क्या आप परिवार में रहते हुये अकेलापन महसूस करते हैं।

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	18	45
02	नहीं	06	15
03	व्यस्त रहते हैं	09	22.5
04	कभी-कभी	07	17.5
	कुल	40	100

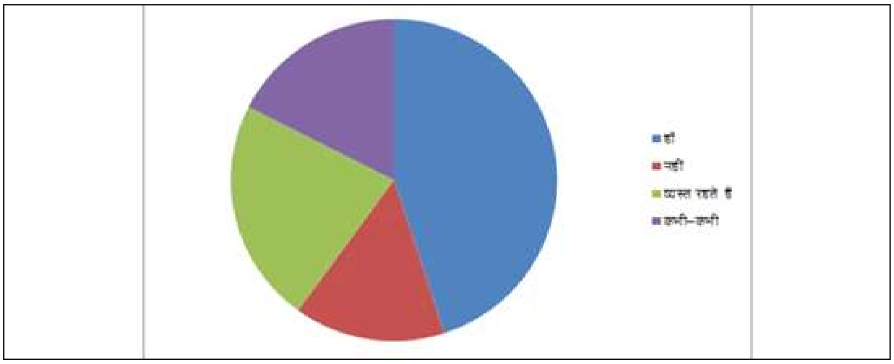

तालिका क्रमांक 06 के अनुसार उत्तरदाता अपने परिवार में रहते हुए 45 प्रतिशत अकेलापन महसूस करते हैं, 15 प्रतिशत अकेलापन महसूस नहीं करते 22.5 प्रतिशत वृद्ध व्यस्त रहते हैं तथा 17.5 वृद्ध कभी-कभी अकेलापन महसूस करते हैं।

तालिका क्रमांक 07

क्या आपको स्वयं के कार्यो के साथ-साथ क्षमता से अधिक कार्य कराया जाता है।

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	10	25
02	नहीं	08	20
03	आवश्यकता होने पर	16	40
04	अन्य	06	15
	कुल	40	100

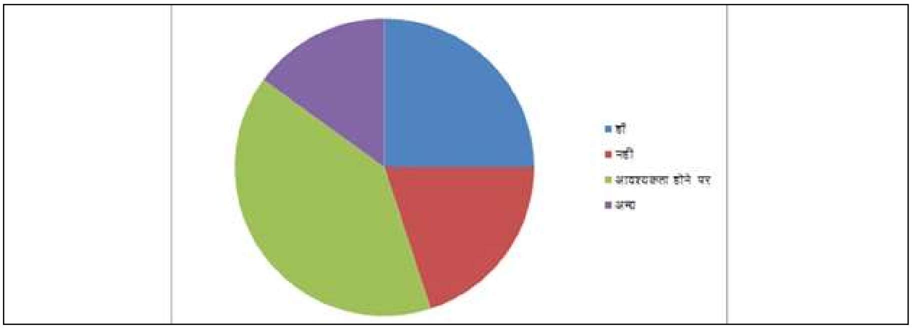

तालिका क्रमांक 07 के अनुसार उत्तरदाताओं को स्वयं के कार्यों के साथ-साथ क्षमता से अधिक कार्य 25 प्रतिशत लोगों को कराया जाता है, 20 प्रतिशत लोगों से नहीं कराया जाता, 40 प्रतिशत लोगों से आवश्यकता होने पर कार्य कराया जाता है तथा 15 प्रतिशत अन्य कारण बताए गये हैं।

तालिका क्रमांक 08

वर्तमान कम आय/पैसों की उपलब्धता

में अपनी आवश्यकताओं को कैसे समायोजित करते हैं?

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	अंशकालिक अर्जन कार्य करके	09	22.5
02	चिकित्सक के पास न जाकर	07	17.5
03	अनावश्यक खर्चों को कम करके (मनोरंजन, पोशाक समाचार पत्र आदि)	18	45
04	अन्य	06	15
	कुल	40	100

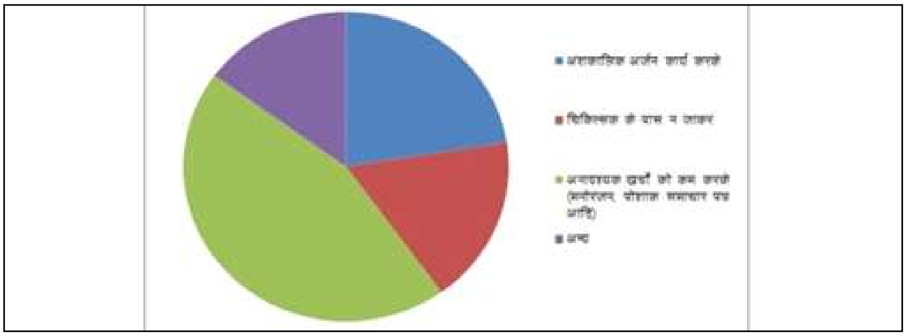

तालिका क्रमांक 08 के अनुसार उत्तरदाताओं को वर्तमान कम आय/पैसों की उपलब्धता में अपनी आवश्यकताओं को 22.5 प्रतिशत लोग अंशकालीन अर्जन कार्य करके समायोजित करते है।, 17.5 प्रतिशत लोग चिकित्सक के पास न जाकर, 45 प्रतिशत लोग अनावश्यक खर्चों को कम करके (मनोरंजन, पोशाक, समाचार पत्र आदि) तथा 15 प्रतिशत लोग अन्य तरीकों से आवश्यकताओं को समायोजित करते हैं।

तालिका क्रमांक 09

क्या आप अपनी इच्छा से धन खर्च करते हैं।

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	17	42.5
02	नहीं	23	57.5
	कुल	40	100

तालिका क्रमांक 09 के अनुसार 42.5 प्रतिशत वृद्ध अपनी इच्छा से धन खर्च करते हैं तथा 57.5 प्रतिशत वृद्ध अपनी इच्छा से धन खर्च कर सकते।

तालिका क्रमांक 10

क्या आप ऐसा मानते हैं कि वृद्धों के कमजोर होने पर आर्थिक रूप से परेशान किया जाता है

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	सहमत	26	65
02	असहमत	14	35
	कुल	40	100

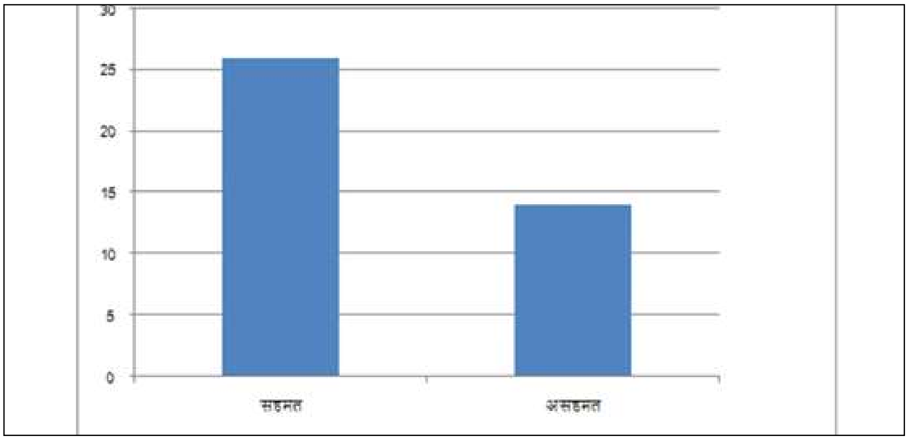

तालिका क्रमांक 10 के अनुसार 65 प्रतिशत वृद्ध इस बात से सहमत हैं कि उन्हें कमजोर होने पर आर्थिक रूप से परेशान किया जाता है तथा 35 प्रतिशत वृद्ध इस बात से असहमत है कि उन्हें परेशान किया जाता है।

तालिका क्रमांक 11

क्या आपको वृद्धों से संबंधित योजनाओं का ज्ञान है?

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	07	17.5
02	नहीं	23	57.5
03	कुछ-कुछ	10	25
	कुल	40	100

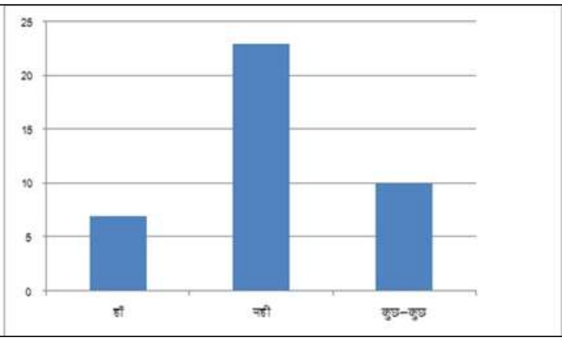

तालिका क्रमांक 11 के अनुसार 17.5 वृद्धों को उनसे संबंधित योजनाओं का ज्ञान है, 57.5 वृद्धों को उनसे संबंधित योजनाओं का ज्ञान है, 57.5 वृद्धों को योजनाओं से संबंधित जानकारी नहीं है तथा 25 प्रतिशत वृद्धों को कुछ कुछ ज्ञान है।

तालिका क्रमांक 12

क्या आपको वृद्धावस्था या अन्य पेंशन मिलती है?

क्रमांक	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	21	52.5
02	नहीं	07	17.5
03	ज्ञात नहीं	12	30
	कुल	40	100

निष्कर्ष- प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वर्तमान परिवेश में वृद्धजन कई समस्याओं से ग्रसित है। इसका मुख्य कारण औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, नगरीकरण इत्यादि है। परिर्वतन के इस दौर में परिवार का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। संयुक्त परिवार अब एकल परिवार में परिवर्तित हो रहे है। अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि वर्तमान में नगरीय क्षेत्रों में एकल परिवार की अधिकता है। नगरों में लोगों के पास समय की कमी के चलते वरिंठजनों पर ध्यान भी कम दिया जाता है। वृद्धों की यदि देखभाल की बात की जाये तो परिवार में जिस सदस्य के पास समय होता है तब वह वृद्धों की देखभाल करते है। वृद्धों के प्रति परिवार के सदस्यों का व्यवहार अधिकांश सामान्य ही रहा है। परिवार के सदस्यों की कमी के कारण वह वृद्धों को समय नहीं दे पाते। जिस कारण वृद्धजन परिवार में रहते हुये भी अकेलापन महसूस करते है। उम्र का बढ़ना एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है अत: उम्र के इस पड़ाव पर वृद्धों की निरंतर शारीरिक क्षमताओं में कमी देखी जाती है। जिससे उन्हें शारीरिक तौर पर भी कई समस्याएँ होती हैं।

वृद्ध व्यक्ति शारीरिक रूप से कमजोर होने लगते है जिससे उन्हें घरेलु कार्य करने में परेशानी होती है। इसके साथ ही साथ परिवार के सदस्य उनकी क्षमता से अधिक कार्य कभी कभी कराते हैं। जिससे उन्हें समस्या होती है। जब व्यक्ति वृद्ध हो जाता है तो उसके समक्ष आर्थिक स्थिति अहम् मुद्दा है इस उम्र के लोगों का "ारीरिक तौर पर अक्षम होने से कोई व्यवसाय या सेवा कार्य करना बेहद परेशानी भरा होता है। परन्तु कुछ वृद्ध धन अर्जन का कार्य भी करते है। अत: अपनी आर्थिक स्थिति को ठीक करने के लिये उम्रदराज व्यक्ति अपने अनावश्यक खर्चों (पोशाक, मनोरंजन, समाचार पत्र इत्यादि) को कम करके अपने आपको आर्थिक रूप से सशक्त करने का प्रयास करते है। जब

उनके पास पैसों की उपलब्धता होती है तब पारिवारिक दबाव के चलते वह व्यय नहीं कर सकते। अधिकांश वृद्ध ऐसा मानते हैं कि उनके कमजोर होने पर उन्हें आर्थिक रूप से परेशान किया जाता है। परन्तु कुछ अपनी इच्छा से भी धन खर्च कर रहे हैं। वृद्धों से संबंधित कुछ योजनाओं का भी संचालन किया जा रहा है परन्तु अधिकांश वृद्धों को इसकी जानकारी नही होती। जागरूक नागरिक जो स्वयं लाभ ले रहे है। उन्हें योजनाओं से संबंधित ज्ञान है तथा अन्य वृद्धों को कम जानकारी प्राप्त है। वृद्धावस्था में सरकार द्वारा संचालित वृद्धावस्था या अन्य पेंशन योजनाओं का लाभ ले रहे है। कुछ हद तक उनकी समस्याओं का समाधान हो रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. National Policy on Older Person 1999, SocialJustice.Nic.in
2. Mandal, Shashi Nath , (2011), " Protection of Rights of Old age Person in India : A Challenging facet of Human Rights", USA , Globel Journal Social Science, Volume 11
3. Mohapatra Tanya, (2011), " Living Arrangements of Elderly : An Empirical Study in Odisha " . Pg 51, Aging Society the India Journal of Gerontology
4. Ansari . Habibullah . (2011) . " Perception of Social Change among Elderly ". Pg . 25 , Aging & Society the Indian Journal of Gerontology
5. Doshi Dhara R and yogesh A Jagsan (2013). " Depression and Phychological well being in Oldage" , Journal of Phychology Psychotherepy, JPPT, Omics Publishing Group
6. Yadav, Lalan (2014). "A Sociological Study of Old Peson Residing in an Oldage Home of Delhi", International and Research Journal of Social Scieness Jalan japan
7. Sarfaraz, Sayeda Farhana and Sakina Riaz , (2015) , "Problem Faced by Senior Citizen in Contemporary Society : Findings from the Household Survey in Karachi Pakistan " International Journal of Research in Huminities and Social Science , Volume 2 , PP 27-36
8. Singh, Ranjita, (2015), "Social Cconditions of Elders and Problem".Journal of Research in Huminities and Social Science Volume 3 - PP - 52 54
9. Kumari Y Lalitha and A Shrinivasa Murthy, (2017), " Elderly Living in Oldage Home and within Family Setup ", Global Journal for Research Analysis
10. www.sagar.nic.in , 29 Sept. 2021

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

सोनभद्र की सहरिया जनजाति में सामाजिक एवं तकनीकी रूपान्तरण

• दीप्ति सिंह
•• आभा सक्सेना

सारांश- वर्तमान समय में भारत की सम्पूर्ण जनजातियाँ संक्रमण के कठिन दौर से गुजर रही हैं। सहरिया समुदाय के नययुवकों में शिक्षा एवं संचार माध्यमों के फलस्वरूप आधुनिकता का प्रभाव पड़ा है, वे रोजगार के बेहतर अवसरों की तलाश में अधिक धनोपार्जन की आकांक्षा के कारण बाहर जाने को प्रोत्साहित हुए हैं। इस अध्ययन में सहरिया जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा उनके विभिन्न कारकों में घटित हो रहे अभिनव परिवर्तन की व्याख्या की गई है। सहरिया जनजाति पर संस्कृतिकरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है, जिससे ये गैर जनजातियों के रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन पद्धति को अपने जीवन में उतारने का प्रयास कर रहे हैं। पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण का भी प्रभाव सहरिया जनजातियों पर पड़ना शुरु हो गया है। इस कारण इनमें उन्नत तकनीकी, तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उदय, परम्परात्मक मूल्य व्यवस्था में उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहे हैं। बाहरी संस्कृतियों का प्रभाव व सरकारी प्रयत्न के कारण इनमें आधुनिक परिवर्तन प्रारम्भ हो गये हैं। यद्यपि ये लोग अभी पूर्ण रूप से परिवर्तित हुए नहीं हैं किन्तु परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं।

मुख्य शब्द - संक्रमण, संचार, आधुनिकता, परिवर्तन, रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा

भारत एक विशाल देश है जिसमें अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधताएँ पाई जाती हैं। यहाँ अनेक धर्मों, मतों, सम्प्रदायों, प्रजातियों एवं जातियों के लोग निवास करते हैं। इस देश की जनसंख्या का करीब 8.20 प्रतिशत भाग आदिम जनजातियों द्वारा निर्मित है। आज भी अनेक जनजातियाँ ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करती हैं जहाँ सभ्यता का प्रकाश नहीं पहुँचा है।

मानव हजारों वर्षों में विकास की एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरते हुए वर्तमान अवस्था तक पहुँच सका है। एक लम्बे समय तक मानव पहाड़ों में भटकता हुआ जानवरों के शिकार और फल-फूल के द्वारा अपनी उदर पूर्ति करता रहा है। गुफाएँ और घने वृक्ष ही आवास थे इनके। ये लोग आज भी आधुनिक उपलब्धियों से अछूते संस्कृति के वर्तमान स्वरूप से अपरिचित, शिक्षा आदि से अनभिज्ञ घने जंगलों में निवास करते हैं। कुछ समूहों

● **शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, श्री अग्रसेन कन्या पी.जी. कॉलेज, वाराणसी**
●● **एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, श्री अग्रसेन कन्या पी.जी. कॉलेज, वाराणसी**

को अपने क्षेत्र में विशेष संसाधन मिल जाने से वे तेजी से आगे बढ़ गये जबकि अनेक मानव समूह जंगल पहाड़ों और दुर्गम क्षेत्रों में रहने के कारण एक सरल जीवन व्यतीत करते हैं, इन्हीं सरल समाजों को जनजातीय समाज कहते हैं। जहाँ 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में 5 करोड़ 16 लाख जनसंख्या जनजातियों की थी वह बढ़कर 1991 में 6.78 करोड़ तथा 2001 में लगभग 8.43 करोड़ तथा 2011 में 10 करोड़ से अधिक हो गई।[1]आज भी अनेक जनजातियाँ आदिम स्तर पर ही अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं, जबकि दुनिया के अधिकांश देश प्रगति के पथ पर काफी आगे बढ़ चुके हैं।भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जनजातियों का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में जनजातियों को देश के पिछड़े वर्ग में रखा जाता है। भारत में जनजातियों के वितरण की दृष्टि से जनजातीय संख्या किसी भी देश से कम नहीं है। भारतीय संविधान के अनुसार लगभग 214 समूहों को जनजातियों की सूची में संदर्भित किया गया है।इन्हें भारतीय सभ्यता, संस्कृति व सरल तकनीकी की बहुमूल्य धरोहर माना जा सकता है जो भारतीय संस्कृति की विविधता को एक निराली छवि प्रदान करते हैं। कुछ वैज्ञानिक जनजातियों के लिए आदिम (Primitive) पद का प्रयोग करते हैं, इसका अर्थ है प्राचीन। सर हरबर्ट रिजले, ग्रिगसन, सोबर्ट, ए.बी. ठक्कर ने इन्हें आदिवासी के नाम से पुकारा है। डॉ. आर.के. दास तथा एस. आर. ने इन्हें दलित नाम से पुकारा है।[2] मेधावी मानव की सम्पूर्ण जानकारी के अनुसार मेधावी मानव को तकनीकी भाषा में 'होमोसैपियन्स'[3] कहा जाता है। जे.एच. हट्टन ने इन्हें आदिम जनजातियों के नाम से सम्बोधित किया है।[4]

सामान्य रूप से यदि कहा जाये तो जनजाति व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है, जो किसी आदि पुरुष को अपना उद्गम मानता है जिसकी एक सामान्य संस्कृति होती है और जो आज भी आधुनिक सभ्यता से परे है।मानवशास्त्रियों द्वारा भारतीय सन्दर्भ में हिन्दी माध्यम में लिखी गई पुस्तकों में हमें ट्राइब के स्थान पर हिन्दी शब्द जनजाति, आदिवासी, गिरिजन, वनवासी, वन्यजाति, आदिवासी, पहाड़ी आदिम जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है। सन् 1901 की जनगणना रिपोर्ट में इन्हें प्रकृतिवादी नाम से पहचाना गया। सन् 1911 में जनजाति को प्रकृतिवादी बतलाया गया। सन् 1921 की जनगणना रिपोर्ट में इन्हें पहाड़ी एवं वन्य जनजाति के नाम से पहचान मिली। सन् 1931 की जनगणना रिपोर्ट में इन्हें आदिम जनजाति के नाम से पहचान मिली। सन् 1935 की जनगणना रिपोर्ट में इन्हें पिछड़ी जाति एवं वर्ग में रखा गया।[5] सन् 1947 की जनगणना रिपोर्ट में इन्हें ट्राइब (जनजाति) के रूप में पहचान प्राप्त हुई।

सहरिया जनजाति की जीवन पद्धति एवं कार्यशैली- प्रस्तुत शोधपत्र सोनभद्र की सहरिया जनजाति पर आधारित है। क्षेत्रफल के सन्दर्भ में सोनभद्र उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा जिला है। सोनभद्र जिला मूल रूप से मिर्जापुर जिले से 4 मार्च, 1984 को अलग किया गया था। इसका क्षेत्रफल 6788 वर्ग किमी है। राबर्ट्सगंज जिले का प्रमुख नगर तथा जिला मुख्यालय है। इनकी जीवन पद्धति एवं कार्यशैली को हम निम्न बिन्दुओं में समझ सकते हैं-

सोनभद्र की सहरिया जनजाति की वेशभूषा बहुत ही सरल और साधारण है। सहरिया जनजाति की परम्परागत वेशभूषा में पुरुष मूलतः अर्धनग्न अवस्था में रहते थे।

वे कमर के नीचे ऊँची धोती (पंचा) का उपयोग करते थे। औरतें सिर ढँकने के लिए दुपट्टे का उपयोग करती हैं व तन ढँकने के लिए (ब्लाउज) अंगिया व घाघरा का प्रयोग करती है, किन्तु अब सहरिया धोती, कुर्ता, पायजामा, पैंट, कमीज आदि का उपयोग करने लगे हैं। सहरिया समाज में स्त्रियाँ, लहँगा, लुगड़ा, धोती (साड़ी) पहनती हैं। सहरिया स्त्रियों को आभूषण का बहुत शौक होता है। वे श्रृंगारित रहना अधिक पसंद करती हैं। ये लोग पैरों में रबर व प्लास्टिक के जूते चप्पल ही पहनते हैं। गरीबी के कारण इनके गहने साधारण ही होते हैं।

सहरिया जनजाति शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन करती हैं। इनका भोजन मुख्यतः साधारण प्रकार का होता है। ये लोग भोजन में मुख्यतः ज्वार, बाजरा, मक्का, चना, चावल लेते हैं। इसके साथ ही प्रकृति जन्य कंदमूल फल सहरिया जनजाति का पसंदीदा भोजन है। इन्हें मछली का शिकार करना पसंद है। इसके साथ पक्षियों का भी शिकार सहरिया करते हैं। सहरिया जनजाति के पुरुषों एवं महिलाओं में शराब समान रूप से पी जाती है। अनेक विशेष सामाजिक अवसरों पर महिलाओं को घुंघरी शराब प्रदान की जाती है इसके साथ ही, सहरियाओं में धूम्रपान पुरुष और स्त्रियाँ समान रूप से करते हैं।[6] सहरियाओं के समाज में दो प्रकार से रिश्ते नातेदारी होती है-

1. **विवाह के द्वारा रिश्ते-नातेदारी-** इसमें विवाह होने पर लड़का-लड़की के परिवार वालों में आपस में रिश्तेदारी हो जाती है।

2. **खत सम्बन्धी रिश्तेदारी-** इसमें भाई-भाई माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-ताऊ, बुआ-भतीजा आदि सम्मिलित होते हैं।

सहरिया जनजाति में वर्तमान में विवाह 10-14 वर्ष की आयु में हो जाया करता है। एक सर्वेक्षण से विदित होता है कि सहरियाओं में 15-49 वर्ष की आयु वर्ग में 86.8 प्रतिशत पुरुषों एवं 97.3 प्रतिशत स्त्रियों के विवाह हुए हैं। सहरिया जनजाति में अपने पिता के भाई-बहनों के परिवारों अपने गोत्र तथा अपने गाँव में सहरिया जनजाति के लोग विवाह नहीं करते हैं।[7] सहरिया जनजाति के समाज में एकल परिवार अधिक है। एकल परिवारों में एक विवाह पति-पत्नी और उसके अविवहित बच्चे ही रहते हैं। सहरिया जनजाति के समाज में लगभग 90 प्रतिशत परिवार एकल (एकांगी) परिवारों की क्षेणी में आते हैं।सहरियाओं पर हिन्दू धर्म का प्रभाव पूर्ण रूप से है। देवियों में बलि प्रथा प्रचलित है। मनोकामना पूर्ण होने पर देवताओं को बलि दी जाती है। बलि ज्यादातर बकरे की ही दी जाती है। स्थानीय देवी-देवताओं के अतिरिक्त रामकृष्ण, हनुमान की पूजा होती है। ये जादू-टोने में भी विश्वास करते हैं। लगभग विश्व के सभी आदिवासी जनजाति समुदाय में टोटमवाद सामान्य रूप से विकसित हुआ जिसका वे कड़ाई से पालन करते हैं। सहरिया जनजाति अनेक प्रकार के संस्कारों का निर्वहन करती हे। सहरिया जनजाति में मुण्डन एवं नामकरण संस्कार भी प्रचलित है।

सहरिया जनजाति में आमोद-प्रमोद के अनेक साधन प्रचलित हैं। सहरिया जनजाति मनोरंजन के लिए दुलदुल घोड़ी, लहंगी एवं राई आदि लोक नृत्य एवं नौटंकी नामक लोक नाटच करती हैं। ये लोग मेलों एवं हाटों से भी मनोरंजन करते हैं। शिकार करना भी सहरिया जनजाति के मनोरंजन का साधन है। इसके साथ ही, सहरिया जनजाति

मनोरंजन के लिए कबड्डी, कुश्ती, दौड़ आदि से भी मनोरंजन करती हैं। वर्तमान में रेडियो, टी.वी., एफएम आदि भी मनोरंजन के साधन बनते जा रहे हैं।परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। जो सभ्य और असभ्य समाजों में समान रूप से पाया जाता है। परिवार व्यक्ति की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं जैसे, यौन सम्बन्ध, सन्तनोत्पत्ति एवं शारीरिक रक्षा की पूर्ति परिवार करता है। वस्तुतः परिवार संस्था का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ ही हुआ। परिवार संस्था उतनी ही प्राचीन है, जितना कि मानव प्रजाति का इतिहास है। परिवार संस्था हर युग और काल में किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है।[8]

सहरिया जनजाति की कार्यशैली में आ रहे तकनीकी रूपान्तरण- सहरिया जनजाति भारत की प्राचीनतम् जनजातियों में से एक है। मानवशास्त्रीय अध्ययन में यह स्पष्ट हो चुका है कि सहरिया जनजाति का सामाजिक विकास घने जंगलों में निवास करने से हुआ। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से जनजातियों का सामाजिक विकास क्रमिक एवं धीरे-धीरे हुआ सामाजिक विकास की यह अवधारणा संसार में सभी प्राणियों पर लागू होती है क्योंकि यह सार्वभौमिक सत्य है कि सभी प्राणियों का विकास शनैः-शनैः हुआ। विकास की अवस्था में सभी जातियाँ और जनजातियाँ जंगलों में पशुओं के साथ सहचर रूप में रहती थीं।मनुष्य के सामाजिक विकास के प्रारम्भिक चरण में मनुष्य पशुओं की तरह जंगलों में रहता था। यह बात जनजातियों पर भी लागू होती है, ग्रामीण जीवन में प्रवेश करने के साथ ही जनजातियों में अनेक सामाजिक परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों का विकास होना प्रारम्भ हो गया। कई सर्वेक्षणों से पता चलता है कि ग्वालियर और चम्बल की नदियों के घाटियों और विकास के प्रमाण मिलते हैं।

किसी भी क्षेत्र के निवासियों के रहन-सहन का स्तर संस्कृति, रीति-रिवाज, जीवनशैली, पेशा आदि का उस क्षेत्र की जलवायु एवं प्राकृतिक स्थितियों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मनुष्य जिस प्रकार के वातावरण में रहता है, धीरे-धीरे उसी परिवर्तित वातावरण से स्वयं को समायोजित करता है तथा वही उसकी प्रकृति बन जाती है। सहरिया जनजाति का जीवन भी इसका अपवाद नहीं है।सहरिया जनजाति के प्राकृतिक संसाधन में जंगलों की पर्याप्तता के कारण उनमें से जंगली फल, जड़ी-बूटियाँ एकत्र करना, शहद एकत्र करना, ईंधन, मकान और कृषि यंत्र बनाने के लिए लकड़ियाँ लाना है। इस क्षेत्र में बहने वाली नदियों तथा तालाबों में मछलियाँ पकड़ना तथा कृषि करना इस जनजाति का प्रमुख क्रियकलाप रहा है, लेकिन समय के साथ ही परिस्थितियों में परिवर्तन आया है। बाहरी लोगों के सम्पर्क में आने का एक बहुत बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि सहरिया समाज के भूमि का अपवर्तन बाहरी लोगों के हाथ हो गया जिससे उनको अपनी जीविकोपार्जन के लिए अन्यत्र जाना पड़ा है। जनजातीय समुदाय में जनजातीय मूल्यों, आदर्शों, प्रथाओं, परम्पराओं एवं रीति-रिवाज में कम रुचि बाहरी लोगों के सम्पर्क के कारण हुई है। यह परिवर्तन गैर जनजातीय समुदाय के घर परिवार से मिलने-जुलने तथा उनके धार्मिक तथा सामाजिक क्रियाकलाप जैसे शादी-ब्याह, हवन-पूजा, नामकरण आदि में शामिल होने से भी हुआ। इन्हीं अवसरों पर गैर जनजातीय समुदाय की महिलाओं एवं पुरुषों के पहनावे को देखकर सहरिया महिलाओं में भी गहने तथा कपड़े के प्रति रुचि

बढ़ी है। दूरदर्शन फिल्म आदि के माध्यम से इनके नवयुवकों में पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव पड़ा है जिससे इनमें अपनी जनजातीय मूल्यों, प्रथाओं, परम्पराओं, आदर्शों के प्रति इनकी रुचि कम हुई है। इसके लिए उत्तरदायी कारण अपने लोगों से दूर रहना और गैर लोगों के सम्पर्क के लिए संचार माध्यमों का प्रसार भी महत्वपूर्ण रहा है।

आधुनिक सभ्यता व संस्कृति के प्रभाव के कारण जैसे प्रत्येक धर्म में धार्मिक मूल्यों का ह्रास हुआ है उसी तरह जनजातियों में भी धार्मिक संरचना का ह्रास हुआ है। इसी प्रकार इनकी परम्परागत पंचायती न्याय व्यवस्था में दरारें पड़ने लगी हैं। अब पढ़े-लिखे लोग आदिवासी पंचायतों के फैसलों की उपेक्षा करने लगे हैं।

जनजातियों में स्त्रियों की स्थिति बहुत विषम होती जा रही है। भोली-भाली लड़कियों को आरामदेह जिन्दगी के लिए व्यापारी, तकनीशियनों द्वारा छला जाता है किन्तु सहरिया जनजाति के समाज में स्त्रियों का विशेष महत्व है। सहरिया जनजाति का समाज पुरुष प्रधान समाज होते हुए भी स्त्रियों पर कोई अत्याचार नहीं किये जाते हैं। सहरिया जनजाति के समाज में घुंघट की प्रथाहै। सहरिया समाज में स्त्रियाँ सहरिया जनजाति की सामाजिक मर्यादाओं का पालन करती हैं। इस समाज में स्त्रियों को स्वेच्छा से अपना जीवनसाथी चुनने की आजादी प्राप्त है। साथ ही 'विधवा विवाह' को भी सामाजिक मान्यता सहरिया जनजाति का समाज प्रदान करता है।

जनजातियों में भी बाल-विवाह होने लगे हैं, विवाह वयस्क होने पर होता है विवाह संस्कार अधिकतर तड़क-भड़क से किये जाने लगे हैं। जीवनसाथी प्रापत करने के अनेक तरीके यहाँ प्रचलित हैं। हिन्दू रीति-रिवाजों का जनजातीय विवाह पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।[9] यद्यपि सहरिया लोग अभी शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं तथापि इनमें शिक्षा का रुझान बढ़ता जा रहा है। बढ़ी हुई शिक्षा एवं आरक्षण नीति के कारण रोजगार में भी जनजातीय लोगों का अनुपात धीरे-धीरे बढ़ने लगा है। अनेक जनजातियाँ शिक्षा सुविधाओं का लाभ उठाकर सरकारी नौकरी में आगे आने लगी हैं। बहुत से जनजातीय लोग अपना छोटा-मोटा व्यवसाय करने लगे हैं। अनेक जनजातियों ने आधुनिक तकनीक और विचारों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया है।

सहरिया जनजातियों में पहले चिकित्सा सुविधाओं का पूर्णतया अभाव पाया जाता था। जनजातीय लोग जादू-टोने से अपनी बीमारी का इलाज करते थे। वे बीमारियों को ईश्वरीय देन मानते थे किन्तु बाहरी जगत से समपर्क के परिणामस्वरूप जनजातियों के इस क्षेत्र में भी काफी परिवर्तन हुए हैं। जनजातीय क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराने हेतु सरकार ने अनेक कदम उठाये हैं साथ ही इन्हें इन चिकित्सकीय सुविधाओं का लाभ उठाने हेतु जागरुक भी किया जा रहा है।जनजातियों के समाज में सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख स्रोत विकास एवं नियोजन है क्योंकि नियोजित सामाजिक परिवर्तन द्वारा ही भारतीय समाज अपने लक्ष्यों की ओर अग्रसर है। नियोजन के अतिरिक्त कुछ ऐसी वृहद् प्रक्रियाएँ भी हैं जो देश में घटित हो रही है और जिनका प्रभाव समाज पर पड़ रहा है।[10] अन्य जनजातियों के प्रभाव के कारण सहरिया जनजाति में भी प्रजातंत्रीकरण,आधुनिकीकरण,पश्चिमीकरण, नगरीकरण, औद्योगीकरण, लौकिकीकरण, संस्कृतिकरण, राजनीतिकरण का प्रभाव पड़ा है। हमारे देश में बहुत सी

जनजातियाँ ऐसे क्षेत्रों में रहती हैं जो वनों तथा खनिजों जैसे प्राकृतिक सम्पदाओं से भरे पड़े हैं। विभिन्न परियोजनाओं में स्वतंत्रता के बाद कच्चे माल तथा विद्युत सिंचाई का प्रयोग किया गया। जनजातियों का आर्थिक उत्थान इन योजनाओं का लक्ष्य होना चाहिए था परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इन सीधे-सादे लोगों की भूमि ले ली गई परन्तु इन्हें इस भूमि के बहुत कम दाम दिये गये जो धन इन्हें भूमि के बदले मिला उसे इन लोगों ने मदिरापान तथा जनजातीय उत्सवों में व्यय कर दिया। प्रारम्भ में इन्हें रोजगार अवश्य मिला किन्तु निर्माण कार्य समाप्त होने पर ये कंगाल हो गये जिस प्रकार के प्रशिक्षण लोगों को आवश्यकता थी वैसा प्रशिक्षण जनजातीय युवाओं को नहीं दिया गया किन्तु आज इन परिस्थितियों में भी परिवर्तन आने लगा है और ये लोग भी तकनीकी शिक्षा की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

सहरिया समुदाय में पश्चिमीकरण के प्रभाव के चलते अपने बाल-बच्चों को आधुनिक सुविधाएँ प्रदान करते हैं तथा उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, खानपान, मनोरंजन पर अत्यधिक व्यय करते हैं। अधिकांश घरों में मोबाइल फोन का प्रयोग होता है तथा इनके बच्चे भी इंजीनियरिंग कॉलेजों में, अन्य उच्च शिक्षा संस्थाओं में अध्ययनरत हैं।

सहरिया जनजाति के व्यक्ति तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत तथा आत्माओं की शक्ति पर बहुत अधिक विश्वास करते हैं। प्रत्येक शुभ कार्य करने से पूर्व अनुष्ठान कराया जाता है परन्तु सहरिया समुदाय का बाहरी व्यक्तियों के सम्पर्क के कारण झाड़-फूँक करने वाले का महत्व कम हुआ क्योंकि कोई भी व्यक्ति पूर्ण निष्ठा से झाड़-फूँक करने का काम सीखना नहीं चाहता है और न ही झाड़-फूँक करने वाला पूर्ण लगन से अपने किसी शिष्य को यह विद्या सिखाना ही चाहता है, परिणामस्वरूप इनकी संख्या में निरन्तर कमी दिखाई दे रही है लेकिन अभी भी झाड़-फूँक करने वालों की रहस्यमय शक्ति पूर्णतया समाप्त नहीं हुई है।

वर्तमान समय में भारत की सम्पूर्ण जनजातियाँ संक्रमण के कठिन दौर से गुजर रही हैं। सहरिया समुदाय के नययुवकों में शिक्षा एवं संचार माध्यमों के फलस्वरूप आधुनिकता का प्रभाव पड़ा है वे रोजगार के बेहतर अवसरों की तलाश में अधिक धनोपार्जन की आकांक्षा के कारण बाहर जाने को प्रोत्साहित हुए हैं। इस अध्ययन में सहरिया जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा उनके विभिन्न कारकों में घटित हो रहे अभिनव परिवर्तन की व्याख्या की गई है। सहरिया जनजाति पर संस्कृतिकरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है जिससे ये गैर जनजातियों के रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन पद्धति को अपने जीवन में उतारने का प्रयास कर रहे हैं। पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण का भी प्रभाव सहरिया जनजातियों पर पड़ना शुरु हो गया है। इस कारण इनमें उन्नत तकनीकी, तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उदय, परम्परात्मक मूल्य व्यवस्था में उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहे हैं। बाहरी संस्कृतियों का प्रभाव व सरकारी प्रयत्न के कारण इनमें आधुनिक परिवर्तन प्रारम्भ हो गये हैं। यद्यपि ये लोग अभी पूर्ण रूप से परिवर्तित हुए नहीं हैं किन्तु परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. Mamoria, C.B., 1957, Tribal Demography in India, Allahabad : Kitab Mahal.
2. Das, R.K. and Das S.R., 1955, Indias Submerjed Humanity Modern Reviews, October 1955.
3. Homo Sapiens, i.c. the modern man.
4. Hutton, J.H. 1951, Caste in India : Bombay : Oxford University Press.
5. Iyer, L.K. anantha, 1935, The mysore tribes and castes, maysore : The mysore university.
6. Ghurye, G.S. 1963, The Sheduled Tribes, Bombay : Popular Prakashan.
7. निरगुणे बसंत, (2004) : सहरिया, आदिवासी लोक कला, परिषद् भोपाल
8. जैन, श्रीचन्द (1980), आदिवासियों के बीच, दिल्ली, किताब घर
9. मेहता प्रकाशन, (1997), भारत के आदिवासी, उदयपुर, शिवा पब्लिशर्स
10. शर्मा, आनन्द कुमार, (2011), माधवराव सिंधिया, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

संभावनाए जगाती नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति

• गीता सिंह

सारांश- सर्वप्रथम 1986 मे शिक्षा नीति लागू की गयी। 1992 में शिक्षा नीति में संशोधन प्रस्तुत किया गया तथा 34 वर्ष बाद 29 जुलाई 2020 को नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू किया गया। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति स्कूली एवं उच्च शिक्षा मे परिवर्तन के साथ आया है, जिसमे मातृभाषा में 8 कक्षा तक पढ़ाया जायेगा। स्नातक स्तर पर विद्यार्थी शोध कार्य का संपादन करेगा। जिससे उच्च शिक्षा में शोध की संभावनायों में वृद्धि होगी। नये परिवर्तन की आशा में नई शिक्षा नीति का प्रारंभ कर दिया गया। इस नीति में स्कूल से दूर रहे 2 करोड़ बच्चो को दोबारा मुख्य धारा मे लाया जायेगा। किसी राष्ट्र को वैश्विक महाशक्ति के रूप मे स्थापित करने मे शिक्षा की अहम भूमिका है। इसरो के प्रमुख डॉक्टर कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता के दौरान नेशनल एजुकेशन पॉलिसी की शुरूआत की गई। जिसके माध्यम से अब भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाया जाएगा। नई शिक्षा नीति 2020 : UGC, AICTE और NCTE का युग खत्म अब उच्च शिक्षा के लिए होगी एक ही रेगुलेटरी बॉडी कक्षा छः से ही छात्रो में कौशल विकास को बढ़ावा दिया जाएगा। साथ ही क्षेत्रीय भाषाओं को इसमें स्थान दिया जाना और पाठ्यक्रम क्षेत्रीय भाषाओं मे पढ़ाया जाना एक महत्वपूर्ण कदम है। शिक्षा के संबंध मे गांधी जी का तात्पर्य बालक और मनुष्य की अंर्तनिहित पूर्णता: को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। 1986 की शिक्षा नीति मे ऐसी क्या कमियाँ रह गई थी जिन्हें दूर करने के लिए नई शिक्षा नीति लाने की आवश्यकता पड़ी। क्या नई शिक्षा नीति गांधी जी एवं विवेकानन्द जी के स्वप्न को पूरा कर पायेगा।

मुख्य शब्द - शिक्षा, कौशल, विकास, व्यवहार

'शिक्षा' क्या है शिक्षा का शाब्दिक अर्थ होता है सीखने एवं सिखाने की क्रिया परन्तु अगर इसके व्यापक अर्थ को देखे तो शिक्षा किसी भी समाज में निरंतर चलने वाली, सामाजिक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य होता है और जिससे मनुष्य की आंतरिक शक्तियो का विकास तथा व्यवहार को परिष्कृत किया जाता है। शिक्षा द्वारा ज्ञान एवं कौशल मे वृद्धि कर मनुष्य को योग्य नागरिक बनाया जाता है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति से न सिर्फ उच्च शिक्षा के लिए वरन् स्कूल शिक्षा में परिवर्तनकारी सुधारो की अपेक्षा की गई है। इसके उद्देश्यो के तहत् वर्ष 2023 तक स्कूली शिक्षा मे 100 प्रतिशत GER के साथ-साथ पूर्व विद्यालय से माध्यमिक स्तर तक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लाभ रखा गया है।

• **प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय कन्या महाविद्यालय, रीवा**

महत्वपूर्ण तथ्य-

1. अंतिम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 मे बनाई गई थी, जिसमे संशोधन 1992 में किया गया।
2. वर्तमान नीति अंतरिक्ष वैज्ञानिक के कस्तूरीरंजन की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित है।
3. नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत वर्ष 2030 तक सकल नामांकन अनुपात को 100प्रतिशत लाने का लक्ष्य रखा गया है।
4. नई शिक्षा नीति की घोषणा के साथ ही मानव संसाधान प्रबंधन मंत्रालय का नाम परिवर्तन कर शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रमुख बिंदु-

- स्कूली शिक्षा संबंधी प्रावधान
- नई शिक्षा नीति मे 5+3+3+4 डिजाइन वाले शैक्षणिक संरचना का प्रस्ताव किया गया है जो उसे 18 वर्ष की आयु वाले बच्चो को शामिल करता है।
- पॉच वर्ष की फाउंडेशनल स्टेज
- 3 साल का प्री-प्राइमरी स्कूल और ग्रेड 1, 2
- तीन वर्ष का प्रापिट्री स्टेज
- तीन वर्ष का मध्य (या उच्च प्राथमिक) चरण ग्रेड 6,7,8 और
- वर्ष की उच्च (या माध्यमिक) चरण ग्रेड 9,10,11,12

(NEP 2020 के तहत HHRO द्वारा बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मक ज्ञान पर एक राष्ट्रीय मिशन (National Mission on foundational literacy and Numerancy) की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है इसके लिए वर्ष 2025 तक कक्षा 3 स्तर तक के बच्चो के लिए आधारभूत कौशल सुनिश्चित किया जाएगा।

भाषाई विविधता का संरक्षण -

- NEP 2020 केमें कक्षा 5 तक की शिक्षा मे मातृभाषा/स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा को अध्ययन के माध्यम के रूप मे अपनाने पर बल दिया गया है। इस नीति मातृभाषा को कक्षा 8 और आगे की शिक्षा के लिये प्राथमिक देने का सुझाव दिया गया।
- स्कूली शिक्षा मे संस्कृत एवं अन्य प्राचीन भाषाओं का विकल्प होना।
- शारीरिक शिक्षा को महत्व दिया गया।

National Education Policy 2021 **की विशेषतायें-** नई शिक्षा नीति में शैक्षिक पाठ्यक्रम के साथ-साथ उनके कौशल पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाएगा वही मेन सिलेबस मे भी एक्स्ट्रा करिकुलर एक्टिविटीज को शामिल किया जायेगा।

- नई शिक्षा नीति स्वतंत्र भारत के तीसरी शिक्षा नीति है जिसमे बुनियादी तौर पर बदलाव किए गए है।
- नई शिक्षा नीति के तहत शैक्षिक क्षेत्र को ताकनीकी से भी जोड़ा जाएगा जिसमें सभी स्कूलों मे ज्यादा से ज्यादा डिजिटल एक्यूमेंट दिए जाएगें।
- नई शिक्षा नीति में सभी प्रकार की शैक्षणिक विषय वस्तु को प्रमुखता उस क्षेत्र

की क्षेत्रीय भाषा में भी ट्रांसलेट किया जाएगा जिससे शैक्षिक क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषा को बढ़ावा मिल सके।

- छठवीं कक्षा से बच्चो को व्यवसायिक परीक्षण इंटर्नशिप दे दी जाएगी।
- नई शिक्षा नीति के भीतर अब पढ़ाई मे कई प्रकार के अन्य विकल्प बच्चों को दिए जाएंगे। अब दसवी कक्षा में अन्य विकल्पों को भी रखा जाएगा जिसमे छात्र कोई स्ट्रीम न चुनकर अपनी इच्छा अनुसार विषयों को चुन सकेगा।
- नई शिक्षा नीति के अंतर्गत छात्रों को छठवी कक्षा से ही कोडिंग सिखाई जाएगी।
- शैक्षिक क्षेत्र मे वर्चुअल लैब को भी बनाया जाएगा जिससे शैक्षिक क्षेत्रो की गुणवत्ता को उच्च किया जा सके।
- नई शिक्षा नीति के तहत वर्षो से चली आ रही 10+2 के शैक्षिक पैर्टन को बदलकर 5+3+3+4 के नए शैक्षिक पैर्टन को चुना गया है।

नेशनल एजुकेशन पालिसी 2021 के माध्यम से लाभार्थी को कौन-कौन से लाभ प्रदान किये जाएंगे। उन सभी लाभों की सूची लेख में नीचे दी जा रही है। Education Policy लाभों की पूरी जानकारी नीचे दी गयी सूची से प्राप्त कर सकते है।

- नई शिक्षा नीति के माध्यम से शैक्षिक क्षेत्र में तकनीकी को बढ़ावा दिया जा रहा है।
- नई शिक्षा नीति के माध्यम से शैक्षिक पाठयक्रम में भाषाओं को लेकर कई विकल्प रखे गए हैं। यदि शैक्षिक पाठयक्रम में कोई छात्र अपनी क्षेत्रीय भाषा अथवा मातृभाषा को पढ़ना चाहता है तो वह आसानी से उन्हें पड़ सकता है। वही इस शैक्षिक पाठयक्रम में भारतीय प्राचीन भाषाओं को पढ़ने का भी विकल्प छात्रों के समक्ष रखा गया है।
- नई शिक्षा नीति में 2025 तक प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा तीन तक के सभी छात्रों के लिए संख्यात्मक ज्ञान तथा साक्षतरा को प्राप्त करने के लिए एक राष्ट्रीय मिशन की योजना तैयार की जाएगी।
- स्वास्थ्य नीति के तहत छात्रों के स्वास्थ्य पर भी ध्यान दिया जाएगा जिसके साथ छात्रों के लिए स्वास्थ्य कार्ड भी बनाये जाएंगें।
- नई शिक्षा नीति के माध्यम से शिक्षकों को समय-समय पर उनके कार्य प्रदर्शन के आधार पर पदोन्नति को भी रखा गया है।

प्रतिक्रिया- नई शिक्षा नीति की घोषणा के उपरांत बुद्धिजीवों, आम जनता एवं शिक्षा जगत मे मिली जुली प्रतिक्रिया रही। वही इसका स्वागत किया गया है। लेकिन इसके लक्ष्य पूरा होने मे लोगो को संदेह है शिक्षा पर GDP का 6 प्रतिशत खर्च पुराना है। जिसे ही दुहराया गया है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के कुलपति एम. जगदीश कुमार ने इस शिक्षा नीति को समावेशी कहा है। कांग्रेस नेता एवं सांसद शशि थरूर का कहना है कि इस नीति मे रखे कई लक्ष्य ऐसे है जिनकी पूर्ण होनी की संभावना कम है।

इस नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को सबसे पहले लागू करने का श्रेय मध्यप्रदेश को जाता है। नई शिक्षा नीति जिन तथ्यों को ध्यान मे रखकर बनाया गया है कि भारत को शिक्षा के क्षेत्र मे महाशक्ति बनाने का जो हमारा लक्ष्य है वह वाकई काबिले तारीफ है, लेकिन

उच्च शिक्षा संस्थान जो ग्रामीण अंचल मे कार्य कर रहे जहाॅ बेसिक सुविधाये मुहैया नही तथा पर्याप्त शिक्षक नही है, मूलभूत संसाधन नही है, वहाॅ इस नीति की सफलता संशयपूर्ण है। विद्यार्थी परम्पागत पाठ्यक्रम का चयन नही कर पाता है, उसे अपने लक्ष्य का पता नही है उनके अभिभावक उन्हे मार्गदर्शन नही दे सकते है। वे अपना लक्ष्य निर्धारित नही कर पाते, ऐसी स्थिति में इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सफलता संशयपूर्ण है। इस नीति को लागू करने से पूर्व ग्रामीण अंचलों मे संधारित महाविद्यालयों का निरीक्षण उनकी समस्याओंसे अवगत होने के बाद तथा उनकी समस्याओं के समाधान के बाद प्रारंभ किया जाना चाहिए था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. नई शिक्षा नीति : पढ़ाई, परीक्षा, रिपोर्ट कार्ड सब मे होगे बड़े बदलाव, आज तक अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020
2. नई शिक्षा नीति 2020
3. नई शिक्षा नीति 2020 प्रमुख पॉइटस एक नजर मे 30 जुलाई 2020 अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020
4. दैनिक जागरण अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020
5. हिन्दुस्तान टाइम्स 8/8/2020
6. अमर उजाला 31 जुलाई 2020
7. नवभारत टाइम्स 31 जुलाई 2020
8. सिंह सरोज (30 जुलाई 2020)
9. बी.बी.सी. हिन्दी अभिगमन तिथि 31 जुलाई 2020
10. आज तक 31 जुलाई 2020

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

महिला अपराधिता एक सम्प्रत्यात्मक विश्लेषण

• गजानन मिश्र

सारांश- अपराध एक सारभौमिक घटना है, प्राचीनकाल से ही अपराध किसी न किसी रूप में समाज में विद्यमान रहा है। सामाजिक दृष्टिकोण से यह एक सापेक्षित अवधारणा है एवं एक प्रकार का समरूप व्यवहार नहीं है, इसलिए देश, काल परिस्थिति के अनुसार यह परिभाषित होता रहा है, आज जो अपराध नहीं हैं वह कल अपराध का मानक बन सकता है। अपराध भावी नैतिकता का आभाष देता है, कि भविष्य में क्या होगा? इसी समाज में नवीन वैचारकी, नूतन विश्वासों, विचारों एवं प्रविष्ठकों को स्थापित करने के संदर्भ में अपराध की भूमिका प्रभावी है। सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक बदलाव, प्रजातांत्रिक मूल्यों व व्यक्ति के मानवाधिकारों की लगातार बढ़ती जनचेतना शिक्षा के प्रचार-प्रसार व औद्योगीकरण एवं नगरीयकरण ने महिलाओं को भी विलासी बना दिया तथा आवश्यकता पूर्ति न हो पाने पर यह अपराध की ओर अग्रसर हो गयी। प्रस्तुत शोध पत्र में महिला अपराधों के कारणों , परिणामों एवं निदानों पर चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द - अपराध, मानवाधिकार, जनचेतना, सामाजिक मूल्य

वर्तमान समय में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज के परम्परागत ढांचे को परिवर्तित किया है, बदलते परिवेश के कारण वर्तमान समय में नारी पुरूषों के समकक्ष कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है । इस बदलते परिवेश के कारण ही महिलाओं में अविवाहित मातृत्व, भ्रूण हत्या, चोरी, जेबकटी एवं अन्य ऐसे अपराधों को कर रही हैं।क्योंकि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया व्यक्तियों एवं समूहों के समक्ष नये परिवर्तनों के अभिग्रहण की आवश्यकताओं को उत्पन्न करती है और आवश्यकताएँ पूर्ण न होने पर अपराधिता को बढ़ावा मिलता है। आधुनिकीकरण के साथ-साथ मंहगाई व गरीबी एक बहुत बड़ा कारण है जो अपराध की दर को बढ़ती है, तत्संबंध में अपराधशास्त्रियों का यह मानना है कि जीवन के जो गुण हमारे चरित्र का निर्माण करते हैं, वे ही गुण हमारे अपराध करने की शक्ति का निर्धाण भी करते हैं। इस प्रकार अपराध एक घृणित प्रघटना मात्र नहीं हैं, यह मानव व्यवहार है और मानव ही अपराध करता है। इस संबंध में भारतीय धर्माचार्यों एवं उनके अनुयायियों का विश्वास था कि आदिकालीन मानव समाज में आपराधिक कृत्य घटित नहीं होते थे, उन दिनों में न तो कोई दण्ड देने वाला था और न ही कोई दण्ड लेने वाला। धर्म के आधार पर सब एक दूसरे का खयाल रखते थे। परन्तु यह व्यवस्था कब तक रहती, जनसंख्या बढ़ने लगी, लोग आपस में अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगे, तब राजा

• सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, एम.जी.पी.जी. कॉलेज, करेली

एवं राज्य बने तथा अपराध एवं दण्ड व्यवस्था का ये अंग बन गये। स्मृतिकारों का यह मानना है कि अति प्राचीनकाल में स्वर्णयुग था, लोग नीतियुक्त आचरण करते थे, आगे चलकर उनके जीवन में बेइमानी ने प्रवेश किया और यहीं से लोगों को नेतृत्व करने के लिए कानूनी व्यवहारों का प्रचलन हुआ।

अपराध समाज एवं कालसापेक्ष है, क्योंकि समाज ये निश्चित करता है कि उचित क्या है और अनुचित क्या है? एक कौनसा विशेष कार्य अपराध के अन्तर्गत आता है। समाज गतिशील है, इसी गतिशीलता के कारण मूल प्रथाओं और दृष्टिकोंणों में परिवर्तन होता रहता है। फलत: अपराध की अवधारणा भी परिवर्तित होती रहती है। इसलिए वर्तमान में अपराध की व्याख्या बुद्धि और विज्ञान के आधार पर की जाकर अपराध को सामाजिक, मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में देखा जाता है। सदरलैण्ड एवं क्रैसी का ये मत है कि आपराधिक व्यवहार वह है जिसमें कानून का उल्लंघन होता है। कोई भी कार्य कितना भी अनैतिकतापूर्ण एवं निंदनीय अथवा औचित्यपूर्ण तब तक नहीं माना जा सकता जब तक कि उसे आपराधिक कानून के द्वारा निषिद्ध घोषित न किया गया हो। (एडविन एच.सदरलैण्ड एण्ड डोनाल्ड आर. क्रैसी, प्रिंसपल्स ऑफ क्रिमनॉलॉजी, दॉ टाईम्स आफ इंडिया प्रेस बाम्बे 1968-पेज-4) "आपराधिक कानून के उल्लंघन का साभिप्राय कार्य अथवा आचरण है जो बिना औचित्य प्रतिपादन अथवा प्रतिरक्षा के लिए किया गया है जिसके करने पर राज्य महापराध का या साधारण मानकर दण्ड प्रदान करता है।" पॉल डब्ल्यु टप्पन (क्राइम जस्टिस एण्ड करएंन एम.सी.ग्रा. हिल बुक कम्पनी न्यूयार्क 1970, पेज-10)

"अपराध कानून् द्वारा वर्जित कार्य है।" (इलियट एवं मेरिल सोशल दिस आर्गेनाईजेशन, हार्पर एण्ड ब्रदर्स पब्लिशर्स, न्यूयार्क 1950 पेज-91)। अपराध की निम्न परिभाषाओं के आधार पर महिला अपराधी को दृष्टिगत किया जावे तो विदित होता है कि पुरूषों के अपराध करने के पीछे जो कारण घटित होते हैं वही कारण अधिकांशत: महिला अपराध में अपनी भूमिका निभाते हैं।

पूर्ववर्ती साहित्य का अध्ययन-भारतीय समाज जैसे-जैसे उन्नति की ओर अग्रसर होता जा रहा है, वैसे-वैसे अपराध क्षेत्र की ओर भी बढ़ रहा है। यही कारण है कि पुरूष अपराधियों की तरह महिला अपराधियों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। सामाजिक परिवर्तन की वजह से परिवार की प्रतिष्ठा के प्रश्न, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों के सामने गौड़ होते चले गये हैं। परिणामस्वरूप अधिकांश परिवारों में महिलाएँ विवशता वश अपराध की ओर अग्रेषित हो रही हैं। तत्संबंध में विभिन्न अपराधशास्त्रियों एवं विद्वानों के द्वारा इस संबंध में पूर्ववर्ती अध्ययन किये गये हैं।

रैकलेस वाल्टर 1971 के अनुसार पति के शिक्षा तथा वैवाहिक हिंसा के बीच विपरीत संबंध होता है, जब पति अशिक्षित होता है तो हिंसा अधिक होती है। पति विभिन्न कारणोंवश कुण्ठा का अनुभव करता है, जिसका परिणाम हिंसा के रूप में सामने आता है।

कैरोल स्मार्ट 1970 ने नारी व नारित्व के परम्परागत विचारों को ध्वस्त किया व बताया कि नवीन नारीवाद की चेतना के विकास के साथ-साथ स्त्रियों में अपराध की दर बढ़ती जा रही है। आपने स्त्रियों में बढ़ते अपराध की दर को सिद्ध कर स्त्रियों के विविध

असामाजिक कृत्यों को चित्रित किया व स्पष्ट किया कि एक अपराधी स्त्री लोगों को अपने सौन्दर्य पार्श्व में फांसकर विभिन्न प्रकार के आपराधिक कृत्य करती है।

सुलेन्जर 1936, स्पालडिंग 1950 ने स्पष्ट किया कि महिलाओं के प्रति माता–पिता की उदासीनता तथा पति या अन्य अभिभावकों द्वारा परित्याग किये जाने पर महिला अपराध की ओर अग्रेषित होती है। आपने पर्यावरण युद्ध व बीमारी जैसे आपात एवं असामान्य परिस्थितियों को महिला अपराध का प्रमुख कारण माना है। हार्टे 1997 ने यह तथ्य बतलाया कि भारतीय महिलाएँ तभी अपराध की ओर उन्मुख होती हैं, जब उनको मानसिक व शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। महिला अपराधीकरण विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व पर्यावरणीय कारणों से भी हो सकता है।

भारत में महिला अपराधों का अध्ययन करने वाले कुछ विद्वान इस प्रकार हैं जैसे कि एन.के. सोहनी (1975), प्रोफेसर के.एस.शुक्ला (1985) के अनुसार महिला अपराधियों पर हुए अधिकांश अध्ययन लिंग संबंधी अपराध के हैं तथा उन्होंने इस प्रकार के अपराधों की आवश्यकता पर बल दिया है। अतः यह आवश्यक है कि महिला अपराध पर अध्ययन के लिए हमें उन समस्त कारकों को ध्यान में रखना होगा जो कि किसी महिला को उनके प्रका'ामान जिंदगी से अंधेरे की ओर ढकेलकर कलंकित करते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य -

1. वह कौन सी परिस्थितियां है जो महिलाओं को अपराध की ओर अग्रेसित करती हैं।
2. महिला अपराध के विभिन्न कारण जानना।
3. महिला अपराध को रोकने हेतु समाधान के उपाय।

महिलाओं में बढ़ती अपराध प्रवृत्ति वर्तमान में समाज की प्रमुख ज्वलंत समस्या है, इस विकराल समस्या ने अतिविकराल स्वरूप धारण कर लिया है। चोरी, हत्या, डकैती, स्मगलिंग, वेश्यावृत्ति जैसे अपराधों में इनकी संलिप्तता बढ़ रही है। आटोपोल्लाक दा क्रमनालिटी आफ वोमेन, यूनिवार्सिटी पेनासिलेमेनिया, प्रेस फिलाडेलफिया 1950 पेज 1–7 ने स्पष्ट किया कि महिलाओं द्वारा किये जाने वाले अपराध प्रकाश में नहीं आते वह उनका रहस्योद्घाटन नहीं किया जाता, अतः महिला अपराध के संबंध में किसी को जानकारी नहीं पाती । गर्भपात, भ्रूण हत्या, मिथ्या शपथ, कूट साक्ष्य, बच्चों के विरूद्ध अपराध, कामांग प्रदर्शन, समलिंग कामुकता के अपराध इनके द्वारा किये जाते हैं। पोल्लाक ने अपने अनुसंधानों के परिणामों के आधार पर पारिवारिक सेवा में संलग्न कार्यकारी महिलाओं में अपराधिता की दर को उच्च पाया, जबकि कारखानों में संलग्न कार्यकारी महिलाओं में अपराध की दर अपेक्षाकृत कम पायी गई है।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और पारिवारिक स्तर पर संविधान, कानून, शिक्षा और जनचेतना के कारण व्यक्तिगत संबंधों और परम्परागत विवाह संस्था के स्वरूप स्वभाव और स्थितियों में निरंतर परिवर्तन हुआ है । औद्योगीकरण व नगरीकरण के आर्थिक दवाबों की वजह से संयुक्त परिवारों के टूटने और बिखरने की सामाजिक और ऐतिहासिक प्रक्रिया पहले से कहीं अधिक तेज हुई है।

इसने नैतिकता, मर्यादा और पारिवारिक सामाजिक संबंधों को परिवर्तनीय स्थिति में ला खड़ा कर दिया है। इससे संयुक्त परिवारों की अपेक्षा एकल परिवारों में पति-पत्नी के बीच तनाव या एक दूसरे से मुक्त होने की इच्छा या आकांक्षा या विवशता अपराध की ओर अग्रेषित करती है।

अपराधों के प्रकारों की वजह से अपराध के कारण भी अनेक हैं। वास्तव में अपराध के लिए कई कारण उत्तरदायी हैं। अपराध एक शास्वत सत्य है, जैसा कि स्वयं समाज मानवीय पतन के अनेक रूप सामाजिक संगठनों में पाये जाते हैं तथा हर समाज में कुछ न कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो स्वीकृत आचार-विचार प्रतिमानों को त्यागकर अलग पक्ति में खड़े हो जाते हैं और यही अपराधों को जन्म देते हैं । वास्तविक तौर पर महिला अपराध व्यक्ति व समाज की अन्तर क्रियाओं का उत्पाद है । अर्थात यह मान्यता इस बात पर बल देती है कि अपराधी बनते नहीं बनाये जाते हैं। अपराधिता के लिए सामाजिक परिवेश व सामाजिक परिस्थितियां उत्तरदायी हैं। निर्धनता, बुरी आवासीय व्यवस्था, गन्दी बस्तियां, मनोरंजन का अभाव, अनैतिक परिवार, मंद बुद्धिता, संवेदात्मक अस्थिरता तथा अन्य ऐसी ही दशायें कम या अधिक मात्रा में सामाजिक एवं व्यक्तिगत व्याधियों के रूप में अपराधी व्यवहार से जुड़ी रहती हैं। विभिन्न व्याधकीय कारक जो महिलाओं को आपराधिक दशाओं की ओर मोड़ते हैं, यह द'ाायें स्वयं अपराध उत्पन्न नहीं करती हैं। समाजशास्त्रीय रूप में परिस्थिति स्वयं में कोई पृथक वस्तु नहीं होती है, यह उस व्यक्ति से जुड़ी रहती है जो उस परिस्थिति का शिकार होता है। महिला अपराध का कोई एकाकी कारण नहीं होता है। महिला अपराध एक जटिल व्यवहार है और इसके विविध कारक हैं।

अध्ययन क्षेत्र- महिला अपराधियों की विभिन्न अपराधों में संलिप्तता के आधार पर मैंने नरसिंहपुर जिले की 4 तहसीलों के थाना करेली, तेंदूखेड़ा, गाडरवारा, गोटेगांव, से द्वितीयक स्रोतों के आधार पर अर्थात पुलिस रोजनामचे में दर्ज पिछले दो वर्ष की रिर्पोटों के आधार पर महिला अपराधियों को निम्न तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया गया है

महिला अपराधिता का विवरण वर्ष- 2019-20

अपराधिता का प्रकार	चोरी	हत्या	दहेज हत्या	दहेज प्रताड़ना	चोट/ झगड़	षड़यंत्र	आपसी कलह	कुल/ प्रतिशत
शिक्षित महिला वर्ग	01 0.49	-	01 0.49	01 0.49	-	02 0.99	02 0.49	06 2.97
अशिक्षित महिला वर्ग	07 3.46	08 3.96	05 2.47	15 7.42	50 24.75	08 3.96	102 50.99	196 97.02
कुल /प्रतिशत	8 3.96	8 3.96	6 2.97	16 7.92	50 24.75	10 4.95	104 51.49	202 99.99

उपरोक्त तालिका स्पष्ट है कि शिक्षित महिला वर्ग में चोरी 0.49 प्रतिशत दहेज हत्या 049, दहेज प्रताड़ना 0.49 षड़यंत्र 0.99, अपसी कलह 0.49 प्रतिशत है। जबकि अशिक्षित महिला वर्ग में चोरी 3.46, हत्या 3.96, दहेज हत्या 2.47, दहेज प्रताड़ना 7.42, चोट 24.75, षड़यंत्र 3.96, व आपसी कलह 50.99, कुल अपराधों का प्रतिशत 97.02 है। उपरोक्त आंकड़े इस बात को स्पष्ट करते हैं कि महिला अपराधों में हत्या व हत्या का प्रयास व चोट जैसे जघन्य अपराध तात्कालिक परिस्थितियों का परिणाम होते हैं। महिला

उत्तेजनावश विवाद की स्थिति में अपना नियंत्रण नहीं रख पाती व अपराध कर बैठती है। भावावेश में दहेज हत्या प्रमुख अपराध है। पारिवारिक झंझटों में आपसी कलह विवाद की स्थिति में हत्या ही अंतिम विकल्प होती है। सोच समझकर किया जाने वाला एकमात्र अपराध षड़यंत्र है। किसी के उकसाने पर अपराध कम ही होते हैं, क्योंकि उस समय बुद्धि का उपयोग कर महिला अपराध को टाल देती है। तत्संबंध में दुर्खीम का ये मानना है कि एकाएक परिवर्तन की स्थिति में चाहे वह उन्नति हो या अवनति, विघटन का एक प्रमुख कारण है। परिवर्तनात्मक स्थिति में महिला उचित अनुचित का सही बोध नहीं कर पाती व भ्रांति उत्पन्न होती है । यह भ्रांति उन्हें अपराध की ओर अग्रेषित करती है।

अशिक्षित महिला वर्ग में वैवाहिक जीवन सामान्य जीवन की अपेक्षा इनके अपराधों के प्रतिशत को बढ़ाता है । परिवार की कलहपूर्ण स्थितियां कुण्ठाओं, मनमुटाओं एवं पुराने व नये प्रतिमानों में अंतर व पुरूष की प्रधानता इन्हें अपराध की ओर अग्रेषित करती हैं। अविवाहित महिलाओं में वर्तमान समय में उनके जीवन में कुछ घटनायें नियमित रूप से घटित होती हैं, जिसके कारण वह निरूत्साही या अवसाद ग्रषित हो आक्रमक होती हैं व अपराध को जन्म देती हैं। प्रमुख समाजशास्त्री ग्लुक ने माना है कि विवाह का प्रभाव अभिवृत्तियों, स्वाभिमान व दूसरे व्यक्तियों के प्रतित आदरभाव आदि पर गहरा पड़ता है। सामान्यतः सुखद व संतुष्ट वैवाहिक जीवन, सामाजिक समन्वय तथा सामंजस्यता बनाता है। परन्तु वर्तमान समय में महिलाओं में परिवर्तन की वजह से आई चकाचौंध एवं स्वयं की आपूर्ति न हो पाने के कारण वे ऐसे लक्ष्य की ओर बढ़ती हैं जो अपराध को जन्म देता है। बड़े-बड़े अधिकांश अपराध एश्वर्य के कारण होते हैं, तकाजों में नहीं। परन्तु कुछ अपराध ऐसे हैं जिनका उद्देश्य अभाव की पूर्ति करना होता है। अशिक्षित महिलाओं में अभाव आपसी कलह को जन्म देता है, यही कारण है कि अपराध के प्रमुख कारकों में आपसी कलह का प्रतिशत ज्यादा है। निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि महिलाएँ जान-बूझकर या भावावेश स्थिति में आकर अपराध कर बैठती हैं, परन्तु जेल जाने पर उन्हें बच्चों की या परिवार की चिंता लगी रहती है। महिला अपराध के कारकों के संबंध में एक बात और स्पष्ट होती है कि जो महिलाएँ काम पर लगी हुई हैं उनमें अपराधों का प्रतिशत कम है, जबकि वह महिलाएँ जो घर पर हैं, जिन्हें कोई बहुत ज्यादा काम नहीं हैं वह अपराध में संलग्न हो जाती हैं।

महिला अपराध के सुधारात्मक बिन्दु-

1. अपराधियों का सुधार प्रथम अभिकरण जिसके सम्पर्क में वह आता है, कर दिया जाये तो अपराध की दर अवश्य कम हो जायेगी। इसके लिए यह आवश्यक है कि सुधारात्मक प्रयासों में यांत्रिकीय विधि का प्रयोग हो। समकालीन मनावैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय ज्ञान के प्रकाश में सुधार की ये विधियां विलुप्त हो गई हैं। जिनका प्रयोग कर हम महिला अपराध को कम कर सकते हैं। जिसमें पहला तरीका है अपराधी को पीड़ा या कष्ट पहुंचाकर उसे सुधारा जा सकता है।
2. महिला अपराधिता पर दण्ड का आरोहण उस परिस्थिति को परिवर्तित नहीं कर सकता जिसमें अपराधिता का जन्म हुआ है। इसलिए यह आवश्यक है कि पीड़ा

के बदले पीड़ा के सिद्धांत को बदला जाये।

3. अपराधिता को सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि उसे एकान्त प्रदान किया जाये, ताकि वह चिन्तन व मनन द्वारा अनुताप का पश्चाताप कर अपने स्वयं को सुधार के लिए प्रस्तुत करे। अपराधिता जब लम्बी अवधि तक अपने दोष के लिए ग्लानि का अनुभव करे व अपने कार्य के प्रति आत्मभर्त्सना करे तो वह स्वयं सुधार के लिए अपने को प्रस्तुत कर सकता है।
4. महिला अपराधिता को सुधारने के लिए आवश्यक है कि उनको नैतिकता का बोध कराया जाये व वह भावनायें उत्पन्न की जायें जिससे उन्हें अपराध के प्रति अलगाव हो।
5. महिला अपराधिता सुधार के लिए यह आवश्यक है कि हम ऐसे समूह का निर्माण करें जिसमें महिला अपराधी स्वयं उसका अंग हो और उस अपराधी की इच्छा की तुष्टी करें जिससे अपराधिता पूर्ण नहीं कर पाई है। सुधारकर्ता अपराधिता को अपील करने वाले उपकरण व प्रविधि से सुधारें।
6. अपराधिता के सुधार के लिए समूह का आकर्षण जितना ही संगतपूर्ण होगा, उतना ही अच्छा प्रभाव अपराधिता पर पड़ेगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि महिला अपराधियों को कलात्मक कार्य का प्रशिक्षण देने में व्यस्त रखें तो उनका सुधार होगा। क्योंकि अधिकांश अपराध कार्य न मिल पाने की वजह से होते हैं। इन प्रशिक्षणात्मक कार्यो के द्वारा सुधार सम्भव हो सकेगा।

न्यायालयीन व्यवस्था व्यवस्था के माध्यम से सुधार- अंत में हम न्यायालयीन व्यवस्था व्यवस्था के माध्यम से सुधार का प्रयास करें तो निम्नलिखित बिन्दु स्पष्ट होते हैं।

1. न्यायालय एवं सुधारात्मक अभिकरण अपराधियों के सुधार के लिए व्यवसायिक रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों की सेवायें ग्रहण कर सकते हैं। इन प्रशिक्षित व्यक्तियों की सेवाओं को ग्रहण कर ये अभिकरण अपराधियों की आपराधिक कारणता के संबंध में उचित निदान करवा सकते हैं।
2. प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ताओं के द्वारा अपराधिता के सुधार के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान कराया जा सकता है।
3. अपराधिता के सुधार के संदर्भ में मनोवैज्ञानिकों की भी भरपूर सहायता ली जा सकती है। मनोवैज्ञानिक सामान्यत: अपराधिता की बुद्धि उसकी अभिरूचि एवं व्यक्तित्व परीक्षण तथा साक्षात्कार कर उसके सुधार के लिए आवश्यक परामर्श दे सकते हैं।
4. मन: चिकित्सक सामान्यत: चिकित्सालयी विद्यालयों में प्रशिक्षित रहते हैं, अपराधी की मन: चिकित्सा में इन मनोचिकित्सकों की सहायता ली जा सकती है। अपराधियों के सुधार के लिए समाजशास्त्री भी आवश्यक भूमिका का निर्वहन कर सकते हैं।

विश्व में प्राय: प्रत्येक वस्तु प्रत्यक्षत: अथवा परोक्षत: अपराधिता से किसी न किसी रूप में संबंधित है। अपराधिता के इन बहुगुण कारकों को निकटस्थ या दूरस्थ कारण के रूप में स्थापित नहीं किया जाता तब तक उपचार कार्यक्रम व्यर्थ होंगे। अपराध

एवं अपचार नियंत्रण का सामान्य सूत्र जो वर्तमान में बनाया जा सकता है वह यह है कि अपराध एवं अपचार को अवांछनीय रूप में वैक्तिक समूहों जिसमें व्यक्ति सहभागी होता है, के द्वारा परिभाषित होना चाहिए। अपराधिता उन्मूलन के लिए वैक्तिक समूहों, परिवार, विद्यालय, पड़ोस कार्य एवं मनोरंजन समूह, धार्मिक समूहों एवं इसी तरह के अन्य प्रचलित समूहों को सम्मिलित किया जा सकता है। अपराध के निवारण के लिए आवश्यक है कि उन नीतियों को जो अपराधिता को उन्मूलित करती हैं, वैक्तिक समूहों के संदर्भ में केन्द्रित होना चाहिए।

वर्तमान में यह धारणा सशक्त होती जा रही है कि पर्याप्त स्थानीय सामुदायिक संगठनों द्वारा अपराधिता का निरोध सम्भव हो सकता है। आधुनिक अपराधशास्त्रियों के अनुसार क्षेत्रीय परियोजनायें अपराधिता एवं अपचार निरोध के संदर्भ में अधिक प्रभावशाली होती हैं, क्योंकि इनमें एक दिये हुए क्षेत्र के बाकी अपने सभी साधनों को जुटाते हैं, मनोरंजन केन्द्रों की स्थापना करते हैं, इससे सुरूचिपूर्ण वातावरण तैयार होता है, जो अपराधों को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. क्लार्क रमसे, क्राइम इन अमेरिका, पब्लिसर्स सीमोन एण्ड शूसर, 1970, पेज 3
2. प्रोफेसर टेननबाम, एडविन एच. सदरलैण्ड एण्ड डोनाल्ड आर. क्रेशी, प्रिंसिपल्स ऑफ क्रमनॉलाजी, द टाईम्स ऑफ इंडिया प्रेस बाम्बे, 1967, पेज 4
3. इलियनट एण्ड मेरिल, सोशल डिश आर्गेनाइजेशन, हार्पर एण्ड ब्रदर्स पब्लिशर्स न्यूयार्क 1950, पेज 91
4. लोम्ब्रासो सीजर्स, क्राईम इट्स केसेश एण्ड रेमीडीस, लिटिल ब्राउन एण्ड बोस्टन कम्पनी 1911, पेज 17
5. रैकलेस वाल्ट सी., दि क्राइम प्राब्लम 1911, पेज 17
6. पोल्लाक ऑटो, दि क्रिमिनालॉजी आफ वूमेन, यूनिवर्सिटी ऑफ पेनासिलेवेनिया, प्रेस फिलाडेलफिया, 1950, पेज1-7
7. एलिस हेवलॉक, दि क्रिमनल लंदन 1901, पेज 124
8. दुर्खीम इमाइल, दि रूक्लस आफ सोशियोलॉजीकल मेथड दॉ फ्री प्रेस न्यूयार्क 1964 पेज-67

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

संचार क्रांति का मानव जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव (रीवा नगर के विशेष संन्दर्भ में)

• प्रियंका गौतम
•• संहिता मिश्रा

सारांश- आज का युग संचार युग है बिना संचार के सामाजिक जीवन की कल्पना भी नही की जा सकती है। यद्यपि संचार का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव, परन्तु संचार के क्षेत्र में प्रगति कुछ सौ वर्ष पूर्व और क्रांति बीसवीं सदी की ही देन है। वर्तमान समय-कोविड-19 की वजह से अत्यधिक प्रभावित था पर संचार के माध्यम से हमारे सारे कार्य संचालित हो रहे हैं। प्रस्त्तुत शोध पत्र मे संचार को परिभाषित करते हुए संचार क्रांति के विविध पक्षों एवं प्रभावो का वर्णन एवं विश्लेषण किया जाता गया है एवं निष्कर्ष निकाला गया है कि संचार क्रांति ने इलेक्ट्रानिक मीडिया को विशेष रूप से प्रभावित किया है और इसका प्रभाव विश्वव्यापी है। आज के कोविड-19 के समय मे शिक्षा उद्योग क्षेत्र मे संचार हमारा विशेष माध्यम है। हमारे हर तरह के कार्य संचार के माध्यम से ही संचालित हो रहे हैं।

मुख्य शब्द - दूरसंचार साधन, इलेक्ट्रानिक मीडिया, टेलीविजन संचार क्रांति

संचार शब्द का शाब्दिक अर्थ किसी बात को आगे बढाना, चलाना या फैलाना है। यह शब्द संस्कृत की मूल धातु 'चर' से निर्मित है जिसका अर्थ है चलना। जब कोई शब्द या विचार दूसरों तक पहुंचता है तो वह संचार कहलाता है। अत: संचार की परिभाषा करते हुये कहा जा सकता है कि यह संदेश या सूचना को दूसरे तक किसी उद्देश्य से पहुंचाने की कला है। इस रूप मे समाज मे संचार का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है यही कारण है कि प्रारम्भ से ही मानव संचार के विविध साधनों का उपयोग और विकास करता रहा है अभी रुका नही और न ही कभी रुकेगा, यह प्रकृति का नियम है कोई नही कह सकता है कि प्रगति की दिशा कौन सी होगी।

संचार जब व्यापक स्तर पर या सामूहिक स्तर पर होने लगता है तब इसे जन संचार का नाम दिया जाता है अर्थात बहुजन के लिये किया गया संचार ही जन संचार है। इस प्रकार संचार वह है जिसमें सूचना एक स्थान से दूसरे स्थान गतिशील होती है। इसके अनेक माध्यम है। आज के वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग मे संचार के साधनो मे निरंतर वृद्धि हो रही है।[1] वर्तमान में सचार के अनेक माध्यम उपलब्ध है उनको निम्नांकित प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है-

• जनभागीदारी शिक्षक, अर्थशास्त्र,शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय,रीवा(म.प्र.)
•• अतिथि विद्धान, अर्थशास्त्र,शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय,रीवा(म.प्र.)

परंपरागत माध्यम (ट्रेडीशनल मीडिया)-यह माध्यम अत्यन्त प्राचीन रहा है अतः हमारी संस्कृति और दैनिक जीवन का विशिष्ट तथा अपरिहार्य अंग बन गया है। इसमें संचार व्यापक एवं सामूहिक स्तर पर होता है। परम्परागत माध्यम धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र के लिये अत्यन्त, उपयुक्त समझे जाते है। इनके प्रमुख रूपों मे लोक कला, संगीत, लोकगीत, समारोह, मेला धार्मिक आयोन, सम्मेलन इत्यादि सम्मिलित हैं।

मुद्रित माध्यम (प्रिंट मीडिया)-यह छपे स्वरूप में व्यापक स्तर पर लोगों तक पहुंचना है अतः केवल शिक्षित लोग ही इसका लाभ ले सकते हैं। शिक्षित जन समुदाय में इसका महत्व अत्यधिक होता है। इसके अन्तर्गत पुस्तकें, समाचार पत्र-पत्रिकायें, जर्नल विज्ञापन पम्पलेट, कैलेण्डर स्टीकर इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।

इलेक्ट्रानिक माध्यम (इलेक्ट्रानिक मीडिया)-वर्तमान समय मे यह सर्वाधिक सशक्त माध्यम है क्योंकि इसका लाभ शिक्षित, अशिक्षित सभी लोग ले सकते है अतः इसकी पहुंच विशिष्ट से लेकर जन तक एक समान है। इसके अन्तर्गत इलेक्ट्रानिक उपकरणों के माध्यम से संचार संभव होता है। और आज संचार का सबसे बड़ा प्रभाव (मोबाइल) हमारे शिक्षा के क्षेत्र मे है जिससे हमारी शिक्षा व्यवस्था संचालित हो रही है। इसके अन्तर्गत रेडियो, टेलीविजन फिल्म वीडियों, टेलीवीजन कम्प्यूटर, ई-मेल फैक्स इत्यादि साधन आते है। प्रसार की दृष्टि से इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और विश्वव्यापी स्तर का है। अतः यह राष्ट्रों की सीमाओं से परे है।[2]

इलेक्ट्रानिक माध्यमों से टेलीविजन नवीन एवं प्रभावी है, इसी कारण से प्रस्तुत अध्ययन को इसी पर केन्द्रित किया गया है। टेलीविजन के माध्यम से जागरुकता अभियान कोविड-19 के बारे मे विशेष सहायक सिद्ध हुआ है।संचार माध्यम आज के युग मे अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये है। आज इनकी अपलब्धता से ही किसी देश के विकास एवं प्रगति का आंकलन किया जाता है। क्योंकि आधुनिक समाज मे सूचना का मूलभूत संसाधन है, जो संचार के द्वारा ही संभव हो पाती है। आज किसी भी क्षेत्र को विकास के क्षेत्र में उन्नत स्थिति में ले जाने मे संचार माध्यमों का महत्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि विकास के लिये योजना के लिये सूचना के लिये सूचना की तैयारी ये विकास प्रक्रिया के अंग है। यही कारण है कि सामान्य रूप से यह कह दिया जाता है कि संचार ही विकास है।

आज का समाज सूचना के अभाव मे अधूरा है। सूचना सम्प्रेषण एवं संग्रहण ही तकनीक के विश्व स्तर पर मनुष्यों को नजदीक ला दिया है, भौगोलिक दूरियॉ मिट गई है। नवीनतम साधन इसे और छोटा बनाते जा रहे हैं। सम्पूर्ण विश्व मे संचार क्रांति घटित हो चुकी है। इसमें निरन्तर नये आयाम जुड़ते आ रहे हैं।

संचार क्रान्ति और भारत-आज संचार के साधन सबसे महत्वपूर्ण सहायक हमारे शिक्षा के क्षेत्र मे है। इसकी शुरुआत 1980 के दशक मे ही हो गयी थी। 1990 के दशक में आरम्भ मे उदारीकरण एवं नयी आर्थिक नीति में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इस कारण यहां सम्प्रेषण सुविधाओं का तीव्र विकास है। अतः इलेक्ट्रानिक मीडिया और प्रिंट मीडिया के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है।

भारतीय समाज में आज से दो दशक पूर्व लोगों ने यह कल्पना भी न ही होगी किसूचना और संचार के क्षत्र मे इतना व्यापक परिवर्तन हो जायेग। भारत विकासशील

देश की श्रेणी में आता है, इसलिये इसमें विकास की संभावना तो थी, परन्तु जिस तीव्र गति से परिवर्तन आया है वह अकल्पनीय है। यद्यपि यह परिवर्तन अनेक क्षेत्रों मे आया है परन्तु संचार और तकनीकी के क्षेत्र मे विशेष रूप से अवलोकनीय है। दूरस्थ अंचलों में बसे गांवो से लेकर नगरों तक मे सूचना और सुविधा उपलब्ध हो गई है। गावों मे भी यह सुविधा उपलब्ध है। अब सबको इन्टरनेट से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। इस क्षेत्र मे तेजी से कार्य हो रहा है यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन भारत जैसे विकासशील देश मे आया है। नि:संदेह यह भारतीय समाज के अनेक पक्षों पर अलग-अलग ढंग से प्रभाव डालेगा।

संचार क्रान्ति और टेलीविजन- संचार के क्षेत्र मे आये दिन परिवर्तनों ने इलेक्ट्रानिक मीडिया जिसमें फिल्में, रेडियों, टेलीफोन तथा इंटरनेट सम्मिलित है, को विशेष रूप से प्रभावित किया है। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, टेलीवीजन क्योंकि यह व्यापक स्तर पर (अनेक देशों) मे एक साथ पहुंचने की क्षमता रखता है यही कारण है कि सम्पूर्ण विश्व पे तेजी के साथ फैला है।

टेलीवीजन के तीव्र विकास में सेटेलाइटों आकाशीय उपग्रहों विशेष भूमिका रही है, क्योंकि इसने प्रसारण की क्षमता को विश्वव्यापी स्वरूप प्रदान कर दिया है। आज कमरे मे बैठकर दुनिया मे किसी भी प्रसारित हो रहे चैनल के कार्यक्रम को देखा जा सकता है। यही कारण है कि आज टेलीवीजन का स्थान भारतीय समाज में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है।

भारत सरकार के प्रयासों के फल्स्वरूप देश की 90 प्रतिशत से अधिक जनता टेलीवीजन प्रसारण के क्षेत्र मे आ चकी है। इस रूप मे टेलीवीजन एक नया परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण माध्यम बनकर अत्यन्त कम समय मे ही हमारे समाज मे विशिष्ट स्थान निर्मित कर चुका है। श्रव्य और दृश्य की सुविधा से युक्त इस उपकरण का प्रभाव व्यक्तियों के विभिन्न समूहों पर किसी भी सजीव माध्यम से अधिक है, यह मनोरंजन करते हुये समय गुजारने का अच्छा साधन है। सूचना देने वाला है, अकेलेपन का साथी है, अनेक समस्याओं और जिज्ञासाओं को हल करने वाला है और सबसे महत्वपूर्ण प्रत्येक सदस्य का मित्र है। यही कारण कि जैसे ही भारत सरकार द्वारा दूरदर्शन मे फैलाव का निर्णय किया गया, समाज द्वारा इसको हाथो लेते हुये अत्यन्त अल्पकाल में ही व्यापक स्तर पर आत्मसात कर लिया गया।

स्वतंत्रता के बाद ऐसा कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नही होता जो इतनी तेजी के साथ स्वीकार किया गया हो। एक प्रकार से दूरदर्शन का फैलाव 'मौन क्रांति' की तरह हुआ। आज बिना टेलीवीजन के समाज की कल्पना नही की जा सकती है। यह लोगों के जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा बन चुका है।

भारत में दूरदर्शन की शुरुआत बहुत सामान्य ढंग से हुई। इसके विकास की गति पहले अत्यन्त धीमी रही, धीरे-धीरे इसमें तीव्रता आयी। 1980 के बाद और विशेष रूप से 1982 में सम्पन्न एशियाई खेलों के बाद टेलीवीजन की उपयोगिता का भारतीय जनमानस को व्यापक स्तर पर पता चला। इसी समय यहां रंगीन प्रसारण की शुरुआत हुई। भारत सरकार ने इच्छाशक्ति का परिचय देते हुये नियोजन ढंग से व्यापक संस्था मे दूरदर्शन प्रेषक (ट्रान्समीटर रिले) केन्द्रो का व्यापक जाल फैलाया।

आकाशीय उपग्रह (सेटेलाइट) के माध्यम से प्रसारण की सुविधा ने यह काम अत्यन्त आसान बना दिया। इसके बाद तो देश में दूरदर्शन रिले केन्द्रो का जाल सा बिछ गया है और घर-घर मे प्रसारण की सुविधा उपलब्ध हो चुकी है। टेलीविजन के फैलाव ने मनोरंजन नाम की संस्था के स्वरूप को ही परिवर्तित कर दिया है। इसने परिवार की मनोरंजनात्मक भूमिका को ही लीलते हुये उसे अपदस्थ सा कर दिया है। कई लोगों ने यहां तक घोषणा कर दी है कि टेलीवीजन के सक्रिय हस्तक्षेप के कारण रंगमंच मरणासन्न है। हालाकि ये एक अतिश्योक्ति है परन्तु इससे यह तो सिद्ध होता है कि टेलीवीजन ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों पर अपना प्रभाव डाला है।

उद्देश्य-

1. नगरीय समाज में युवाओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. दूरसंचार के साधनो के उपयोग के प्रति युवाओं के मनोवृत्ति को जानना।
3. नगरीय समाज मे दूरसंचार साधनो के प्रभाव का युवाओं के जीवन शैली मे क्या बदलाव आये हैं, इसका पता लगाना।
4. दूरसंचार साधनों एवं सोशल नेटवर्किंग साइटो से युवा वर्ग मे होने वाले फायदे एंव नुकसान का अध्ययन करना।
5. युवाओं के शैक्षणिक, सामाजिक, राजनैतिक एंव आर्थिक स्तर को प्रोत्साहित करने मे दूरसंचार साधना/मीडिया/सोशल नेटवर्किंग साइटों के भूमिका का अध्ययन करना।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय- किसी भी समस्या का विस्तृत अध्ययन करने के लिये किसी न किसी क्षेत्र या सीमा मे बंधकर अध्ययन किया जा सकता है। अध्ययन करते ससय बहुत सारी कठिनाईयों को सामना करना पड़ता है। फिर भी अध्ययनकर्ता इन सारी कठिनाइयों की परवाह न करते हुये अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने में तत्पर रहता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिये वह एक क्षेत्र का चुनाव करता है, जिसमे उस क्षेत्र के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके। प्रस्तुत शोध पत्र के लिये मैने रीवा नगर के विशेष संदर्भ मे विषय को चुना है।[3]

रीवा नगर	कुल	पुरूष	महिला
नगर की जनसंख्या	235,654	124,012	111,642
साक्षर	181,504	101,092	80,412
बच्चे	25,356	13,731	11625
औसत साक्षरता(प्रतिशत)	86.31%	91,731	80.40%
लिंगानुपात	900		
लिंगाानुपात बच्चे	847		

अध्ययन विधि- कोई भी सर्वेक्षण तभी सफल हो पाता है, जब उस कार्य को करने का तरीका वैज्ञानिक हो, युवाओं मे दूरसंचार साधनों का प्रभाव (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में) इस अध्ययन के लिये मुझे भी वैज्ञानिक तरीका अपनाना है। अध्ययन क्षेत्र के लिये रीवा नगर को चुना है। अध्ययन के लिये 50 परिवारों का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखा है कि वे परिवार स्तर पर या एक विचार के न हो। साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से पूंछे गये प्रश्नों के विश्लेषण पर शोध पत्र आधारित है।

तथ्यों का सारणीयन विलेषण एवं व्याख्या- शोधार्थी द्वारा किया गया कोई भी शोध कार्य सही अर्थों मे तभी प्रभावी होते है, जब शोधार्थी द्वारा उस समस्या की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन किया जाये। इसके लिये यह आवश्यक है कि शोधार्थी द्वारा शोध अध्ययन मे उपयोग किये गये समस्त शोध उपकरण द्वारा प्राप्त जानकारियों को व्यवस्थित क्रम में सारणीबद्ध किया जावे।

शोध क्षेत्र में टेलीवीजन का ग्रामीण समाज पर प्रभाव हेतु शोधार्थी ने कुछ शोध उपकरणों की सहायता ली है। जिसके द्वारा एकत्रित तथ्यों का सारणीयन, विश्लेषण एवं व्याख्या द्वारा स्थिति की जानकारी प्रस्तुत की गयी है। जो इस प्रकार है-

सारणी क्रमांक-01

परिवार के सदस्यों की संख्या के आधार पर

क्र.सं.	सदस्यों की संख्या	संख्या	प्रतिशत
1	3 सदस्य	45	45
2	4 सदस्य	30	30
3	5 सदस्य	25	25
	योग	100	100

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि रीवा नगर के 100 उत्तरदाताओं मे से 45 परिवारों मे 3 व्यक्ति कार्य करते है जबकि 30 परिवारों के 4 और 25 परिवारों में 5 व्यक्ति कार्य करते है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि परिवार मे 3 सदस्यों मे 3 सदस्यों के कमाने की संख्या सबसे अधिक है जबकि 4 सदस्यों के कमाने वाली संख्या सबसे कम अर्थात 23 है। रीवा नगर के 100 उत्तरदाताओं मे से 90 प्रतिशत लोग इंटरनेट का प्रयोग करते है। मात्र 10 प्रतिशत लोग ही इंटरनेट के प्रयोग से अछूते हैं। नकारात्मक उत्तर देने वाले मे उत्तरदाताओं मे अधिक आयु वर्ग एवं गरीब परिवार के लोग थे।

सारणी क्रमांक-02

मीडिया का जीवन शैली पर प्रभाव-

क्र.सं.	मीडिया ने जीवनशैली को सरल बनाया है	संख्या	प्रतिशत
1	हां	85	85
2	नही	15	15
	योग	100	100

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि रीवा नगर के 100 उत्तरदाताओं मे से 85 प्रतिशत लोगो ने बताया कि दूरसंचार साधनों के प्रयोग ने जीवनशैली को सरल, सहज व सुलभ तथा आसान बना दिया है। आज रोजमर्रा की जिन्दगी पर नजर डालें तो दूरसंचार साधनों के तत्व मोबाइल, कम्प्यूटर, इंटरनेट, टैबलेट, फेसबुक, व्हाट्सएप, टिवटर और संचार के अन्य सैकड़ो टेक्नोलाजी ने हमारी जिन्दगी बहुत कुछ और तीव्रता से बदला है। दूरसंचार साधनों से हाने वाले ये समाज पर प्रभाव और सामाजिक परिवर्तन है। समाज पर इनका नकारात्मक प्रभाव ही ज्यादा हुये हैं।

संचार क्रांति का वैश्विक प्रभाव- पश्चिमी देशों मे जहां सचमुच संचार क्रांति हो चुकी है, वहां बहुत सी चीजें आसान हो गयी हैं, व्यवस्था चुस्त हो गयी है, बहुत से कार्य

बटन दबाने मात्र से सम्पन्न हो जाते हैं, सूचनायें तत्काल उपलब्ध हो जाती हैं नकारात्मक पक्ष भी तेजी से उभर कर सामने आते हैं।

संचार क्रांति ने संपूर्ण विश्व मे मीडिया सम्राज्यवाद पर बहस छेड़ दी है, क्योंकि इसके सूत्र मुख्य रूप से विकसित देशों के हाथ मे है। अत: यह आशंका व्यक्त की जा रही है कि औद्योगिक क्रांति की यह पिछड़े देशों को विशिष्ट प्रकार से नव उपनिवेश न बना दिया जाये। यह उपभोक्तावादी समाज के विकास के रूप मे होगा। मुक्त बाजार की वकालत उसी का एक हिस्सा है। सम्पूर्ण मीडिया आज इसी विचार को आगे बढ़ाने और स्थापित करने मे जुटा है कि मुक्त बाजार एक अच्छी धारणा है और राष्ट्रों को विकास एवं प्रतिस्पर्धा का अवसर उपलब्ध करायेगा। परन्तु अविकसित, एवं विकासशील देश कैसे इनका मुकाबला कर पायेंगे यह भविष्य के गर्भ मे है। आशंका यह है कि संचार क्रांति का लाभ बड़े देश ही अधिक ले पायेगें।

संचार क्रांति का दूसरा पक्ष सांस्कृतिक है। भारत में इसे पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों के संदर्भ मे देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया मे इलेक्ट्रानिक मीडिया और विशेष रूप से टी.वी. चैनलो के वाहक के रूप मे देखा जा रहा है।

निष्कर्ष- आज के वर्तमान युग मे कोरोना महामारी के कारण आम जीवन बहुत प्रभावित है, जिसमे संचार एक उम्मीद की किरण है। हमारे युवा वर्ग के लिये आज की आधुनिक शिक्षा संचार क्रांति से हमारे बच्चों और युवाओं का भविष्य तय करती है। आज के युग में संचार मानव जीवन के एक रीढ की हड्डी है। अगर संचार नही है तो हमारे जीवन के सारे विकास ही प्रभावित हो जायेंगे ओर हम किसी भी क्षेत्र मे आगे नही बढ़ पायेगें। शिक्षा हो या आद्योगीकरण हो या रोजगार हो सब कुछ संचार के माध्यम से संचालित हो रहा है। आज कोरोना जैसा राक्षस भी हमारे संचार के चलते हमारे विकास को प्रभावित नही कर पा रहा है। इसी कारण संचार हमारे जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. अग्रवाल आर.सी., औद्योगिक सन्नियम, नवयुग साहित्य सदन, आगरा, 1995
2. कुलश्रेष्ठ एस. एस., भारतीय भारतीय आद्योगिक अर्थव्यवस्था, साहित्य भवन आगरा, 1979
3. जनगणना 2011

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

किसानों के जीवन की गुणवत्ता सुधार में कृषि विज्ञान केन्द्र की भूमिका

• संजय तिवारी
•• विनोद शंकर सिंह
••• आदित्य तिवारी

सारांश- कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा की जाने पहल को और अधिक लाभकारी बनाने हेतु प्रयास किया जाना चाहिये। जिससे कृषि विज्ञान केन्द्र की पहुंच क्षेत्र के सभी किसाने तक हो सके तथा प्रत्येक किसान कृषि विज्ञान केन्द्र की संचालित गतिविधियों के विज्ञ होकर कृषि विकास में संलग्न हो सके।विश्व स्तर पर सभी प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में उच्च स्तर के प्रसंस्करण के साथ उन्नत खाद्य प्रसंस्करण पारिस्थितिकी तंत्र है और कृषि में प्रति कार्यकर्ता उच्च मूल्य वर्धित है। भारत कई कृषि वस्तुओं के उत्पादन में अग्रणी होने के बावजूद, कृषि में प्रति श्रमिक मूल्य वर्धित मूल्य के मामले में कई देशों से पीछे है।

मुख्य शब्द - कृषि विकास, अर्थव्यवस्था, प्रसंस्करण, उच्च मूल्य वर्धित

भारत का कृषि क्षेत्र काफी हद तक मानसून पर निर्भर करता है, प्रत्येक वर्ष देश के करोड़ों किसान परिवार बारिश के लिये प्रार्थना करते हैं। प्रकृति पर अत्यधिक निर्भरता के कारण कभी-कभी किसानों को नुकसान का भी सामना करना पड़ता है, यदि अत्यधिक बारिश होती है तो भी फसलों को नुकसान पहुँचता है और यदि कम बारिश होती है तो भी फसलों को नुकसान पहुँचता है। इसके अतिरिक्त कृषि के संदर्भ में जलवायु परिवर्तन भी एक प्रमुख समस्या के रूप में सामने आया है और उनकी मौसम के पैटर्न को परिवर्तन करने में भी भूमिका अदा की है।आजादी के 7 दशकों बाद भी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि विपणन व्यवस्था गंभीर हालत में है। यथोचित विपणन सुविधाओं के अभाव में किसानों को अपने खेत की उपज को बेचने के लिये स्थानीय व्यापारियों और मध्यस्थों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिससे उन्हें फसल का सही मूल्य प्राप्त हो पाता।उच्च फसल पैदावार प्राप्त करने और कृषि उत्पादन में निरंतर वृद्धि के लिये बीज एक महत्त्वपूर्ण और बुनियादी कारक है। अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों का उत्पादन करना जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही महत्त्वपूर्ण है उन बीजों का वितरण करना किंतु दुर्भाग्यवश देश के अधिकतर किसानों तक उच्च गुणवत्ता वाले बीज पहुँच ही नहीं पाते हैं।

• शोध छात्र, समाजकार्य, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट,सतना (म.प्र.)
•• एसोसिएट प्रोफेसर (समाज कार्य) कला संकाय, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रा. वि.चित्रकूट,सतना (म.प्र.)
••• एम.एस-सी. (कृषि) एग्रोनामी, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय वि. चित्रकूट,सतना (म.प्र.)

सुख और संतुष्टि से भरा जीवन जीने के लिए बुनियादी के साथ-साथ अतिरिक्त जरूरतों की पूर्ति जीवन की गुणवत्ता कहलाती है। जीवन की गुणवत्ता खुशी या संतुष्टि की एक डिग्री है जो किसी के जीवन में विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति से प्राप्त होती है।आजकल एक तकनीक की सहायता से वह आसान हो गया है जिन कार्यों को असंभव समझा जाता था। पहले लोग अच्छा भोजन, आवास और वस्त्र पाकर बहुत खुश होते थे। लेकिन आखिरकार लोगों ने ऊंच-नीच की मांग करना शुरू कर दिया है। इसलिए उनकी उम्मीदों पर खरा उतरना चाहिए ताकि उनके लिए जीवन की गुणवत्ता अच्छी हो। युद्ध से त्रस्त देशों में युद्ध का रुकना लोगों की अपेक्षा होगी और यदि युद्ध रोक दिया जाता है तो लोग सुरक्षित और प्रसन्न महसूस करेंगे और उनके जीवन की गुणवत्ता उसी के अनुरूप होगी। इसलिए समय और देश की स्थिति के परिवर्तन से जीवन की गुणवत्ता की परिभाषा बदल जाती है।जीवन की गुणवत्ता के तत्व इस प्रकार हैं-

1. पौष्टिक भोजन एवं परिवार का आकार
2. स्वास्थ्य
3. स्वच्छता
4. शिक्षा
5. पारिवारिक आय एवं आवास
6. सुरक्षा एवं सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य
7. बचत

कृषि विज्ञान केन्द्र की बदलती भूमिका और उनसे अपेक्षाएं इसके पेशेवरों की नियमित क्षमता निर्माण की आवश्यकता है। इसलिए, केवीके प्रणाली की अनिवार्य गतिविधियों और छवि निर्माण ब्रांडिंग के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए विशिष्ट क्षमता निर्माण कार्यक्रमों को डिजाइन और व्यावहारि संचालन आवश्यक है।

अध्ययन पद्धति- प्रस्तुत अध्ययन हेतु सतना जिले के मझगवाँ विकासखण्ड के अन्तर्गत स्थापित कृषि विज्ञान केन्द्र को उद्देश्यपूर्ण चयन किया गया है। शोध हेतु क्षेत्र के 8 गाँवों का चयन दैवनिदर्शन विधि से किया गया है। अध्ययन को गहन एवं वैज्ञानिक बनाने की दृष्टि से अनुसंधान की अनुसूची साक्षात्कार प्रविधि आधार बनाया गया है।चयनित गाँवों से प्रशिक्षित एवं अप्रक्षित दोनों प्रकार के क्रमशः 160 एवं 160 कुल 320 किसानों को अंतिम रूप से दैवनिदर्शन पद्धति द्वारा चुना गया है। प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदाताओं से प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त आँकड़े एवं उनके अभिमत का वर्गीकरण लीकर्ट टेक्निक के प्रयोग से किया गया है। इस तकनीक में पंच स्तरीय मापनी विधा का प्रयोग कर उत्तरदाताओं के समक्ष उठाये गये प्रश्नों के संदर्भ में उनके मानसिक द्वंदता के अंतिम रूप से निर्धारण करने के लिये इस विधा का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध में प्रदत्तों की गणना हेतु प्रतिशत का प्रयोग किया गया है।आंकड़ों की सहायता से कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किसानों के विकास के लिए किये गये प्रयासों एवं किसानों के जीवन की गुणवत्ता का अध्ययन करने के हेतु मध्यमान की गणना की गई है तथा मध्यमान की भाँति ही उपकरणों द्वारा प्राप्त आंकड़ों के प्रमाणिक विचलन (मानक विचलन) की गणना की गई है।

तालिका 01
कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किये गये प्रयास
से होने वाले किसानों के जीवन की गुणवत्ता सुधार संबंधी अभिमत

N=320

क्र.	गुणवत्ता सुधार संबंधी अभिमत	पूर्णतः सहमत		सहमत		निरपेक्ष		पूर्णतः असहमत		असहमत		कुल सहमत		माध्य स्कोर	
		–	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित
1	शिक्षा का विकास	82	80	43	41	5	11	19	17	11	11	125	121	4.04	4.01
		(51.25)	(50.00)	(26.88)	(25.63)	(3.13)	(6.88)	(11.88)	(10.63)	(6.88)	(6.88)	(78.13)	(75.63)		
2	सामाजिक स्तर में वृद्धि	73	72	31	30	10	8	31	35	15	15	104	102	3.73	3.68
		(45.63)	(45.00)	(19.38)	(18.75)	(6.25)	(5.00)	(19.38)	(21.88)	(9.38)	(9.38)	(65.00)	(63.75)		
3	रहन सहन में सुधार	58	57	62	69	8	9	23	18	9	7	120	126	3.86	3.94
		(36.25)	(35.63)	(38.75)	(43.13)	(5.00)	(5.63)	(14.38)	(11.25)	(5.63)	(4.38)	(75.00)	(78.75)		
4	कय शक्ति में वृद्धि	90	79	24	36	13	11	19	20	14	14	114	115	3.98	3.91
		(56.25)	(49.38)	(15.00)	(22.50)	(8.13)	(6.88)	(11.88)	(12.50)	(8.75)	(8.75)	(71.25)	(71.88)		
5	आय में वृद्धि	60	61	67	65	7	9	14	13	12	12	127	126	3.93	3.94
		(37.50)	(38.13)	(41.88)	(40.63)	(4.38)	(5.63)	(8.75)	(8.13)	(7.50)	(7.50)	(79.38)	(78.75)		
6	सुरक्षा एवं सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य	81	76	23	26	8	10	22	29	26	19	104	102	3.69	3.69
		(50.63)	(47.50)	(14.38)	(16.25)	(5.00)	(6.25)	(13.75)	(18.13)	(16.25)	(11.88)	(65.00)	(63.75)		
7	महिला सशक्तीकरण	77	73	28	29	13	11	28	32	14	15	105	102	3.79	3.71
		(48.13)	(45.63)	(17.50)	(18.13)	(8.13)	(6.88)	(17.50)	(20.00)	(8.75)	(9.38)	(65.63)	(63.75)		
8	स्वास्थ्य के प्रति	74	73	31	29	10	8	28	36	17	14	105	102	3.73	3.69
	जागरूकता विकास	(46.25)	(45.63)	(19.38)	(18.13)	(6.25)	(5.00)	(17.50)	(22.50)	(10.63)	(8.75)	(65.63)	(63.75)		
9	प्रगतिशील खेती	80	78	24	18	13	19	24	26	19	19	104	96	3.76	3.69
	के प्रति झुकाव	(50.00)	(48.75)	(15.00)	(11.25)	(8.13)	(11.88)	(15.00)	(16.25)	(11.88)	(11.88)	(65.00)	(60.00)		
10	पौष्टिक भोजन एवं परिवार का आकार	74	70	24	30	16	12	26	29	20	19	98	100	3.66	364
		(46.25)	(43.75)	(15.00)	(18.75)	(10.00)	(7.50)	(16.25)	(18.13)	(12.50)	(11.88)	(61.25)	(62.50)		
11	आत्मविश्वास में वृद्धि	60	66	47	48	8	7	26	24	19	15	107	114	3.64	3.79
		(37.50)	(41.25)	(29.38)	(30.00)	(5.00)	(4.38)	(16.25)	(15.00)	(11.88)	(9.38)	(66.88)	(71.25)		
12	सामाजिक सहभागिता में वृद्धि	54	55	23	30	14	11	41	36	28	28	77	85	3.21	3.30
		(33.75)	(34.38)	(14.38)	(18.75)	(8.75)	(6.88)	(25.63)	(22.50)	(17.50)	(17.50)	(48.13)	(53.13)		
13	बचत को बढ़ावा	60	49	42	36	8	19	24	32	26	24	102	85	3.54	3.34
	3.66 98 61.25	(37.50)	(30.63)	(26.25)	(22.50)	(5.00)	(11.88)	(15.00)	(20.00)	(16.25)	(15.00)	(63.75)	(53.13)		
नोट-कोष्टक में दर्शाये गये अंक प्रतिशत में हैं।															

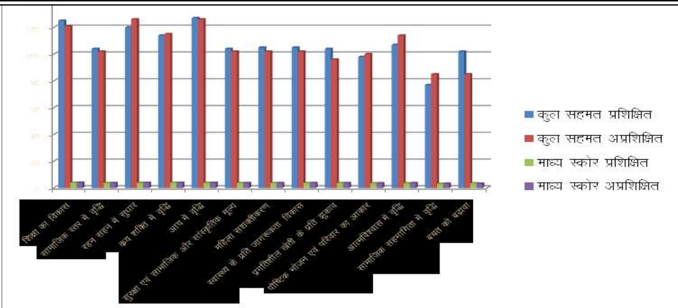

चित्र में कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किये गये प्रयास से होने वाले किसानों के जीवन

की गुणवत्ता सुधार संबंधी अभिमत को दर्शाया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में किसानों के जीवन की गुणवत्ता सुधार संबंधी अध्ययन हेतु प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित चयनित कृषकों से जीवन की गुणवत्ता से संबंधित आवश्यक तत्वों से जुड़े आयामों यथा-शिक्षा का विकास, सामाजिक स्तर में वृद्धि, रहन सहन में सुधार, क्रय शक्ति में वृद्धि, आय में वृद्धि, सुरक्षा एवं सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य, महिला सशक्तीकरण, स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता विकास, प्रगतिशील खेती के प्रति झुकाव, पौष्टिक भोजन एवं परिवार का आकार, आत्मविश्वास में वृद्धि, सामाजिक सहभागिता में वृद्धि, बचत को बढ़ावा आदि कुल 13 आयामों में अभिमत लीकर्ट टेक्निक के माध्यम से 5 विकल्पों क्रमशः पूर्ण सहमत, सहमत, निरपेक्ष, पूर्ण असहमत एवं असहमत प्राप्त कर साख्यिकीय विश्लेषण तालिका 01 में किया गया है।

तालिका में प्राप्त तथ्यों के अनुसार बिन्दु क्रमांक 5 में वर्णित आय में वृद्धि आयाम पर सबसे अधिक 79.38 प्रशिक्षित एवं 78.75 प्रतिशत अप्रशिक्षित कृषकों ने स्वीकार किया है कि कृषि विकास केन्द्र के माध्यम से लोगों के आय में वृद्धि द्रेखी गई है। इस कथन में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित वर्ग के 37.50 एवं 38.13 प्रतिशत पूर्ण सहमत एवं 41.88 एवं 40.63 प्रतिशत सहमत 4.38 एवं 5.63 प्रतिशत निरपेक्ष एवं 8.75 एवं 8.13 पूर्णतया असमत तथा 7.50 एवं 7.50 प्रतिशत असहमत में अपना अभिमत प्रकट किया है। माध्यम स्कोर 3.93 एवं 3.94 पाया गया। उनका मानना है कि जो खेत पहले न्यून उपज के कारण पड़े रहते थे अब उनमें नवीन तकनीक एवं उन्नत बीज के कारण अच्छी उपज होने लगी है।

किसी भी व्यक्ति की जीवन की गुणवत्ता सुधार में शिक्षा का अत्यधिक महत्व होता है। तालिका में शिक्षा का विकास संबंधी अभिमत प्राप्त करने पर पाया गया कि प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षण श्रेणी के क्रमशः 78.13 एवं 75.63 प्रतिशत अधिकांश उत्तरदाता यह स्वीकार करते हैं कि लोगों को शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है। अब वे स्वयं अपने परिवार एवं महिलाओं के शिक्षा को बढ़ाने के प्रति अधिक जागरूक हुये हैं। प्राप्त माध्यम स्कोर 4.04 एवं 4.01 कथन को स्वयं प्रमाणित करता है कि कृषि विज्ञान केन्द्र के प्रशिक्षण, रैली, जागरूकता अभियान, प्रदर्शिनी, भ्रमण आदि का प्रभाव भी है।

रहन सहन में सुधार संबंधी प्रश्न के उत्तर में प्रशिक्षित वर्ग के पूर्ण सहमत, सहमत, निरपेक्ष, पूर्ण असहमत एवं असहमत में क्रमशः 36.25, 38.75, 5.00, 14.38 एवं 5.63 प्रतिशत एवं अप्रशिक्षित श्रेणी के क्रमशः 35.63, 43.13, 5.63 11.25, एवं 4. 38 प्रतिशत पाये गये। इस प्रकार कुल संख्या का प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित वर्ग में सहमत उत्तरदाता क्रमशः 75.00 प्रतिशत एवं 78.75 प्रतिशत दर्ज किये गये तथा माध्यम स्कोर क्रमशः 3.86 एवं 3.94 ऑकलित किया गया।

71.25 प्रतिशत प्रशिक्षित एवं 71.88 प्रतिशत अप्रशिक्षित कृषक उत्तरदाता कहते है कि वर्तमान में क्रय शक्ति में वृद्धि हुई है। उनका यह भी मानना है कि वर्तमान में अपेक्षाकृत सामाजिक स्तर में वृद्धि हुई है। अधिकांश उत्तरदाता यह मानते हैं कि सुरक्षा एवं सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य में वृद्धि के साथ पौष्टिक भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित हुई है एवं परिवार का आकार एंकाकी होने से जरूरत की पूर्ति करने में

कठिनाई नहीं होती साथ ही महिला सशक्तीकरण हुआ है एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का विकास हुआ है जिसका प्रतिशत समान रूप से 65.63, 63.75 पायाग या है। प्रगतिशील खेती के प्रति झुकाव को प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित वर्ग में क्रमशः 65.00 एवं 60.00 प्रतिशत स्वीकार करते है।आत्मा विश्वास एवं सामाजिक सहभागिता में वृद्धि को भी दोनों वर्गों के कृषक कृषि विज्ञान केन्द्र की भूमिका को सहयोगी मानते है।37.50 प्रतिशत पूर्ण सहमत, 30.63 प्रतिशत सहमत इस प्रकार कुल 63.75 प्रतिशत प्रशिक्षित उत्तरदाता यह मानते हैं कि हमारे बचत करने की आदत में सुधार आया है। इस प्रकार बचत को बढ़ावा मिला है दूसरे ओर अप्रशिक्षित वर्ग के उत्तरदाता जो इस कथन से पूर्ण सहमत है वे 30.63 एवं सहमत 22.50 कुल सहमत 53.13 प्रतिशत पाये गये हैं।

प्रस्तुत तालिका में कृषि विकास हेतु केवीके द्वारा किये जा रहे प्रशिक्षण संबंधी प्रयासों पर कृषकों के दृष्टिकोंण का अभिमत तालिका में प्रदर्शित 13 आयामों के माध्यम से प्राप्त किया गया है प्राप्त माध्य स्कोर क्रमशः प्रशिक्षित श्रेणी के 4.04, 3.73, 3.86, 3.98, 3.93, 2.68, 3.79, 3.73, 3.76,2.92, 3.64, 3.21, 3.54 तथा अप्रशिक्षित श्रेणी 4.01, 3.68, 3.94, 3.91, 3.94, 2.69, 3.71, 3.69, 3.69, 2.84, 3.79, 3.30, 3.34, धनात्मक श्रेणी के पाये गये हैं जिनमें समानता पाई गई है। प्रदर्शित माध्य स्कोर किसानों के जीवन की गुणवत्ता सुधार कृषि विज्ञान केन्द्र का आवश्यकता को स्वमेय प्रमाणित करते हैं।

अतः अध्ययन में पाया गया कि क्षेत्र के कृषकों के विकास हेतु तालिका में प्रदर्शित सभी आयामों की उपयोगिता है एवं कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा की जाने पहल को और अधिक लाभकारी बनाने हेतु प्रयास किया जाना चाहिये। जिससे कृषि विज्ञान केन्द्र की पहुंच क्षेत्र के सभी किसाने तक हो सके तथा प्रत्येक किसान कृषि विज्ञान केन्द्र की संचालित गतिविधियों के विज्ञ होकर कृषि विकास में संलग्न हो सके।विश्व स्तर पर सभी प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में उच्च स्तर के प्रसंस्करण के साथ उन्नत खाद्य प्रसंस्करण पारिस्थितिकी तंत्र है और कृषि में प्रति कार्यकर्ता उच्च मूल्य वर्धित है। भारत, कई कृषि वस्तुओं के उत्पादन में अग्रणी होने के बावजूद, कृषि में प्रति श्रमिक मूल्य वर्धित मूल्य के मामले में कई देशों से पीछे है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. Trivedi, G. (1963) Measurement analysis of Socioeconomic status of Rural families unpublished Ph.D. Thesis, Indian Agricultural research Institute, New Delhi-110012.
2. Sharama, B.M. and Jha P.N. (1973). Impact of institutional training in applied nutrition on village level workers, Indian J. Ext. Edu. 9 (3&4) 102-107.
3. Rey N.K. (1972). Training needs of farmers in Relation to High-Yielding verities of paddy Unpublished Ph.D. Thesis Indian Agricultural Research Institute, New Delhi-110012.
4. Rao. M.S.K. (1969). A critical analysis of farmers training iin I.A. D.P. and I.A.P. Districts in Relation to high yielding varieties programme Unpublished

Ph.D. Thesis Indian Agricultural Research Institute, New Delhi. 110012.

5. Mishra, S.P. (1979). A study of farm Enterpreneurship in a Backward District of Bihar, Unpublished Ph.D. Thesis, Indian Agriculture Research Institute, New Delhi-110012.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

रीवा जिले में कृषि उपज की विपणन व्यवस्था-एक अध्ययन

• पुरूषोत्तम प्रसाद बाल्मीकि
•• भानु साहू

सारांश- आधुनिक समय में किसी भी वस्तु का उत्पादन केवल उपभोग के लिए ही नहीं वरन् विक्रय के लिए भी किया जाता है। बड़े पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन किए जाने से विपणन का क्षेत्र राष्ट्रीय से अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है। वर्तमान उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के युग में भी आर्थिक व्यवस्था का एक पहलू उत्पादन है तो दूसरा उसका विपणन है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि उपज के विपणन का भी उतना ही महत्व है जितना कृषि उपज के उत्पादन का, क्योकि भारतीय कृषि का स्वरूप आर्थिक विकास के साथ-साथ बदलता जा रहा है। अतः वर्तमान में समस्या वस्तुओं के उत्पादन की न रहकर उसके विपणन की है। भारत में कृषि विपणन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि देश की श्रम शक्ति का 64 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र से आजीविका प्राप्त करता है तथा सकल घरेलू उत्पादन में कृषि का क्षत्रे का हिस्सा 20प्रतिशत के लगभग है। आज बाज़ार तथा बाज़ार संबंधी क्रिया दोनों ही आर्थिक ढाँचे की महत्वपूर्ण क्रिया बन गई है। वर्तमान समय में कृषि का व्यावसायीकरण हो जाने से इसके विपणन की समस्या उत्पन्न हो गई है। यह कहना अनावश्यक नहीं होगा कि कृषि विपणन का विकास कृषि के आधुनिकीकरण के लिए महत्वपूर्ण है। सुविकसित ग्रामीण बाजार से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास संभव है।

मुख्य शब्द - कृषि उपज मण्डी, विपणन व्यवस्था, कृषि अर्थव्यवस्था

भारत के आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। वास्तव में कृषि हमारे देश में केवल जीविकोपार्जन का साधन या उद्योग धंधा ही नहीं है, अपितु अर्थव्यवस्था की रीड़ की हड्डी है। देश के उद्योग-धंधे, विदेशी व्यापार मुद्रा अर्जन, विभिन्न योजनाओं की सफलता एवं राजनैतिक स्थायित्व भी कृषि पर ही निर्भर है।कृषि की गहनता, विधायन क्रिया तथा संग्रहण के विकास के साथ ही कृषि उत्पादन का विपणन अधिकाधिक महत्वपूर्ण हो गया है। कृषि क्षेत्र के विकास के लिए कृषि विपणन का विकास होना भी आवश्यक है। उचित विपणन तथा वितरण व्यवस्था, वस्तुओं तथा सेवाओं की उपलब्धता बढ़ाने में सहायक हो सकती है। जिससे अधिक उत्पादन की प्रेरणा भी प्राप्त होगी तथा मांग एवं पूर्ति दोनों में वृद्धि को भी प्रोत्साहन मिलेगा।

• शोधार्थी, अर्थशास्त्र
•• मार्गदर्शक, वाणिज्य एवं प्रबंधन विभाग, मध्यांचल प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, भोपाल (म.प्र.)

इस प्रकार विकासोन्मुख कृषि में कृषि विपणन की भूमिका महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध अध्ययन की दृष्टि से देखें तो वैश्विक अर्थव्यवस्था में कृषि उपज का बाज़ार प्रमुख स्थान ले रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में निवेश करने वाली संस्थाएँ इस दिशा में अधिक रूचि ले रही है। कृषि में परम्परागत उपजों का स्थान गौण होता जा रहा है। रोजगार सृजन, विदेशी मुद्रा अर्जन, मानव एवं प्राकृतिक संसाधनों के उपयुक्त विदोहन, प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुनरूत्थान, मानव स्वास्थ्य के कल्याणार्थ तथा देश की अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण हेतु जिस क्षेत्र को वर्तमान में सर्वाधिक सम्भावना सम्पन्न क्षेत्र के रूप में देखा जा रहा है।

कृषि संपूर्ण भारत में प्राथमिक क्षेत्र के अंतर्गत आता है। ठीक उसी प्रकार रीवा में भी कृषि ही सबसे महत्वपूर्ण जीविका का साधन है। यहां की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या मुख्य रूप से कृषि पर ही आधारित है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जिले की संपूर्ण जनसंख्या का 78 प्रतिशत भाग गांवों में निवास करता है। जिनका सीधा अथवा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से संबंध कृषि से ही होता है। इसी कारण यहां की कृषि जिले के विकास का प्रमुख स्रोत भी माना जाता है। रीवा जिले में उपलब्ध भूमि का अधिकांश पहाड़ी है। जिसके कारण कृषि हेतु समतल भूमि का अभाव है। यहां की धरातलीय विषमता, मानसूनी जलवायु पर निर्भरता अविकसित तकनीक एवं आधुनिक कृषि यंत्रो व उपकरणों के अभाव में प्रदेश को इस क्षेत्र में वांछित सफलता नहीं मिल पाई जिले में कृषि उपयोगी भूमि अपेक्षाकृत कम है जो फसलों के उत्पादन को प्रभावित करती है। पर्वतीय तथा पठारी भागों में तीव्र होने से कृषि कार्य भी कठिन हो जाता है। जिले में औसत वर्षा की कमी कृषि पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

रीवा जिले की भूमि व्यवस्था के अध्ययन के पूर्व ऐतिहासिक अध्ययन सर्वप्रथम आवश्यक है। उन्नत कृषि उत्पादन के लिए एक अच्छी भू-धारण प्रणाली का होना आवश्यक है। हम यह कह सकते है कि कृषि उत्पादन में स्थायी विकास के लिए यह पहली शर्त है कि भू-धारण के अंतर्गत हम देखते है कि कृषक के स्वामित्व में भूमि किन शर्तो में रहती है। तथा स्वामित्व में भूमि किन शर्तो में रहती है तथा स्वामित्व का महत्व क्या हो सकता है।

इस प्रकार कृषि उपज का विपणन रीवा जिले की कृषि अर्थव्यवस्था का प्रभावकारी तत्व है। प्रस्तुत शोध अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य म.प्र. में कृषि उपज की विपणन व्यवस्था का अध्ययन ही है। इस दृष्टि से रीवा जिले की दो प्रमुख फसलों गेहूँ एवं सोयाबीन को शोध अध्ययन का आधार बनाया गया है। इन फसलों का बाजार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय है। अतः जिले में चयनित कृषि उपज के क्षेत्र, उत्पादन एवं विपणन व्यवस्था, कीमतों में उच्चावचन, जिले की विभिन्न मण्डियों में कीमतों के बीच पारस्परिक संबंध, विपणन की बदलती प्रक्रिया, विपणन की समस्याओं एवं कठिनाइयाँ तथा निर्यात सम्भावनाओं आदि पर यह शोध अध्ययन आधारित है।

उद्देश्य- इस अध्ययन के मूल उद्देश्य निम्नानुसार है-

1. भूमि व्यवस्था के अंतर्गत भूमि सीमा कानून का क्रियान्वयन भू-समतलीकरण तथा भूमि रखरखाव में हुए परिवर्तन परिवर्द्धन की प्रक्रिया का आंकलन करना।

2. सिंचाई की उपलब्ध सुविधाएं तथा इस परिप्रेक्ष्य में निर्धारित अवधि के बाद कृषि सिंचाई सुविधाओं में हुए संरचनात्मक परिवर्तन का आंकलन करना।
3. रीवा जिले के विभिन्न ग्रामीण स्थिति का मूल्यांकन करना।
4. कृषि उद्योगों एवं व्यवसायिक क्षेत्रों में वनों के योगदान का मूल्यांकन करना।
5. कृषि एवं कृषि पर आधारित उद्योगों के विकास की संभावनाओं को अनुमानित करना।
6. कृषि व्यवस्था तथा औद्योगिक विकास के क्षेत्रीय एवं जिला स्तरीय प्रकृति का मूल्यांकन करना।
7. कृषि की प्रकृति एवं विशिष्टताओं का सूक्ष्मतम उपयोग परीक्षण करते हुए कृषि विकास हेतु उचित नीति निर्धारण का औचित्य प्रतिपादित करना।
8. रीवा जिले के कृषि विपणन का ऐतिहासिक महत्व जानने का प्रयास करना।
9. रीवा जिले के कृषि विपणन उद्योगों को भारत के मानचित्र में लाने का प्रयास करना।
10. कृषि विपणन ग्रामीण क्षेत्र की उत्पदान क्षमता का नियोजन तथा नियंत्रण का अयापन करना।
11. सार्वजनिक क्षेत्र में कृषि विपणन की वित्तीय संरचना, पूंजी विनियोग, लाभ देयता इत्यादि का अध्ययन करना।
12. कृषि विपणन के क्षेत्र में मौजूद समस्याओं का अध्ययन करना तथा ऐसे प्रभावी उपयों तक पहुंचने का प्रयत्न करना, जिसमें रीवा जिले के कृषि विपणन दिनों दिन विकसित होते रहें और कृषि विभाग को इससे लाभ मिलता रहें।

शोध प्रविधि- शोध या अन्वेषण किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए किया जाता है। ज्ञान की किसी भी शाखा में ध्यानपूर्वक नये तथ्यों की खोज के लिए किये गये अन्वेषण या परीक्षण को अध्ययन कहते है। ज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य अपरिहार्य है। शोध कार्य में रीवा जिले कृषि अर्थव्यवस्था से संबंधित वास्तविक एवं विश्वसनीय आकड़ो को प्राप्त करने के लिये प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आकड़ों को एकत्र कर पूर्ण किया गया है। प्राथमिक आकड़े स्वयं कार्य स्थल एवं कृषि उपज मण्डी पर जाकर मूल स्रोतो से एकत्र किये गये हैं। जबकि द्वितीयक आंकड़े के लिये कृषि विपणन से संबंधित विभिन्न प्रकाशित- अप्रकाशित पुस्तकों, शोध पत्र-पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, शासकीय प्रतिवेदनों आदि से एकत्र कर प्रयोग किये गये हैं। इसके अतिरिक्त लाइब्रेरी, एवं इंटरनेट आदि का भी आकड़ें एवं विषय वस्तु से संबंधित स्टडी मटेरियल एकत्र करने में प्रयोग किया गया है।

कृषि उपज मण्डी समिति की आय की मदे- कृषि उपज मण्डी समिति को पिछले पांच वर्षों में विभिन्न स्त्रोतों से कितनी-कितनी आय प्राप्त हुई है, प्राप्त आय को किन-किन मदों पर खर्च किया गया है और इन वर्षों में बचत या घाटे की क्या स्थिति रही है। इन सभी बातो का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंर्तगत किया जा रहा है। रीवा मण्डी समिति की पिछले पांच वर्षों की आय को निम्न तालिकाओं में दर्शायी गयी है-

तालिका क्रमांक-01

क्र.	वर्ष	मंडी शुल्क	लायसेंस फीस	अन्य आय	कुल आय
1.	2010-2011	39166643	26967	1139327	40332937
2.	2011-2012	56026088	28839	114969	56169896
3.	2012-2013	51687923	24990	1176334	52889247
4.	2013-2014	63119147	21450	1340295	64480892
5.	2014-2015	74707695	96610	1955827	76760132
	कुल	284707496	198856	5726752	29063310
	औसत	97.96	0.07	1.97	4

स्रोत - कृषि उपज मण्डी समिति रीवा की लेखा पुस्तकों से

मण्डी समिति रीवा को प्राप्त विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय का पूर्व में बिंदुवार अध्ययन किया जा चुका है। यहा इन्हें सरलता से एक दृष्टि में समझने हेतु प्रस्तुत किया गया है। उपरोक्त तालिका और पूर्व के विवरण से स्पष्ट होता है की धार मण्डी को कुल आय का लगभग 97.96 प्रतिशत भाग मण्डी शुल्क से प्राप्त होता है। वर्तमान में मण्डी शुल्क की दर 2 प्रतिशत जो राज्य सरकार द्वारा कम करने की घोषणा की जा चुकी है। अतः कुल आय में मण्डी शुल्क का अति महत्वपूर्ण स्थान है।

कृषि उपज मण्डी की व्यय की मदें- मण्डी समिति को विभिन्न स्रोतों से जो आय होती है, उन्हें कार्यालय भवन, मण्डी प्रांगण के विकास, कर्मचारियों के वेतन एवं भत्ते क्रेता विक्रेताओं को सुविधाए प्रदान करने आदि मदों पर व्यय करती है। मण्डी समिति बोर्ड शुल्क के अलावा जो खर्च करती है। उसे इस मद के अंर्तगत रखा जाता है इसमे स्थापना व्यय, निर्माण कार्य पर व्यय, बैठको में उपस्थित होने पर देय भत्ते, अतिथियों पर खर्च, लेखन सामाग्री कार्यालय के वाहनो पर पेट्रोल व्यय, सामाजिक दृष्टिकोण से प्याऊ आदि का निर्माण एवं अन्य व्यय इस व्यय में शामिल होते है। इन रीवा मण्डी समितियों द्वारा पिछले 5 वर्षों में विभिन्न मदों पर किये गये व्ययों को निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित किया गयाहैं।

तालिका क्रमांक-02
मण्डी समिति रीवा के विभिन्न 5 वर्षो के व्यय एक दृष्टि में

वर्ष	स्थापना पर व्यय (रू.में)	किये गये कुल व्यय का	निर्माण पर (रू. में)	किये गये कुल व्यय का	विविध व्यय (रू.में)	किये गये कुल व्यय का	कुल व्यय
2010-2011	4265958	10.93	17608	0.04	34732141	89.02	39015707
2011-2012	6669126	12.43	148500	0.27	46801160	87.28	53618786
2012-2013	7319922	13.84	1181330	2.23	44372572	83.92	52873824
2013-2014	8360601	13.52	500229	0.80	52957322	85.66	61818152
2014-2015	7783158	10.13	627651	0.81	68348166	89.04	76758975
योग	34398765	12.11	2475318	0.87	247211361	87.02	289085444

स्रोत- कृषि उपज मण्डी समिति रीवा के लेखों से

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट हैं कि यह समिति अपने कुल व्ययों को स्थापना पर भुगतान, निर्माण पर भुगतान तथा अन्य विविध व्ययों में विभाजित करती हैं। कुल व्ययों में विभिन्न मदों का महत्व लगभग समान हैं। पिछले 5 वर्षों में औसत रूप में कुल व्यय का

लगभग 12.11 प्रतिशत भाग स्थापना भुगतान पर 0.87 प्रतिशत भाग निर्माण भुगतान में तथा शेष 81.02 प्रतिशत भाग अन्य व्ययों पर खर्च किया गया हैं।

मण्डी समिति की आर्थिक स्थिति- विद्वानों का मत हैं कि व्यक्ति को उतने ही पैर पसारना चाहिये जितनी चादर लम्बी होती हैं, यह कथन मण्डी समितियों पर भी पूर्णतया लागू होता हैं, वैसे तो मण्डी समितियों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलवाना होता हैं। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मण्डी को अनेक आधारभूत सुविधाओं की व्यवस्था करनी होती हैं, जिनके लिये धन खर्च करना होता हैं। सुविधाओं को पूरा करने के लिये मण्डी समितियों द्वारा जो धन खर्च किया जाता हैं, उसकी पूर्ति के लिये समितियों को विभिन्न स्रोतों से आय प्राप्ति के अधिकार भी दिये गये हैं। मण्डी का व्यवहार विवेकपूर्ण तभी माना जायेगा, जबकि आय की तुलना में उसके व्यय कम हो अर्थात समितियों को बचतों की ही प्राप्ति होना चाहिये। बचतों की मात्रा ही उनकी आर्थिक समितियों को बचतों की ही प्राप्ति होना चाहिये। बचतों की मात्रा ही उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढता या कमजोरी को प्रदर्शित करती हैं। मण्डी समिति रीवा की आर्थिक स्थिति को निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया हैं।

तालिका क्रमांक-03

कृषि उपज मण्डी मण्डी समिति रीवा की आर्थिक स्थिति

क्रमांक	वर्ष	कुल आय रू. में	कुल व्यय रू.में	बचत रू. में
1	2010-2011	40332937	39015707	1317230
2	2011-2012	57200596	53618786	3581810
3	2012-2013	52889247	52873824	15423
4	2013-2014	64480892	61818152	2662740
5	2014-2015	76760132	76758975	1157

स्रोत- कृषि उपज मण्डी समिति रीवा के लेखों से

उक्त तालिका से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हैं-

1. इस मण्डी समिति को पिछले 5 वर्ष में प्राप्त आय उसके व्ययों से अधिक रही हैं। अर्थात सभी 5 वर्षों में बचत की ही स्थिति रही हैं।
2. इस मण्डी को वर्ष 2011-2012 में सर्वाधिक बचत प्राप्त हुई हैं, इस वर्ष में इसकी कुल बचत 3581810 रूपये थी।
3. समिति को सबसे कम बचत वर्ष 2014-2015 में ही हुई हैं। इस वर्ष इसे मात्र 1157 रूपये की बचत हुई हैं।
4. समिति के आय-व्यय के आंकडों पर दृष्टिपाल करने से यह स्पष्ट होता हैं की समिति की आर्थिक स्थिति सुदृढ हैं, क्योंकि उसने विभिन्न स्रोतोंसे पर्याप्त मात्रा में आय अर्जित करके सुविधाओं के विस्तार में आवश्यक वृद्धि की हैं।
5. मण्डी समिति की श्रेणी निर्धारित करने के लिये यह देखा जाता हैं कि पिछले तीन वर्षों में उसकी कुल आय का औसत क्या रहा हैं। यदि कुल आय का औसत 7 लाख रूपये से अधिक हैं, तो उस मण्डी को 'अ' श्रेणी प्रदान की जाती हैं।

तालिका से स्पष्ट हैं कि मण्डी समिति को पिछले 3 वर्षों में प्राप्त आय का औसत 7.00 लाख रूपये से अधिक हैं, इसलिये इसे ''अ'' श्रेणी प्रदान की गयी हैं।

कृषि वित्तीयकरण तथा रूपांतरण- सभी व्यवसायिक संस्थाओं के लिए वित्त की व्यवस्था परम आवश्यक हैं और कृषि क्षेत्र इसका कोई अपवाद नही है। समयानुकूल पर्याप्त व सस्ती साख की व्यवस्था कृषि क्षेत्र की प्रगति में महत्वपूर्ण आगत हैं। जिस प्रकार व्यवसायियों, को सभी व्यवसायिक क्रिया कलापों के संचालन एवं विस्तार के लिए वित्त की आवश्यकता होती है, उसी तरह से कृषकों से संबंधित विभिन्न कार्यो के लिए वित्त की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु, कृषि एवं कृषको की अपनी कुछ ऐसी विशिष्टताएँ होती हैं, जो इसकी वित्त एवं साख संबंधी आवश्यकताओं से अलग करती हैं। छोटे व निर्धन कृषकों की बचत करने की असमर्थता व निर्धनता के कुचक्र को देखते हुए संख्यात्मक साख का जन्म जर्मनी में हुआ। प्रत्येक कृषक परिवार, समध्यम वर्गीय, अथवा छोटे किसान अधिक निवेश के द्वारा नई तकनीक का लाभ उठाना चाहते हैं। अतएव, अधिक व सस्ती साख तथा पूंजी की उपलब्धता भारतीय कृषि के विकास में एक विशिष्ट स्थान पाती है। भारत जैसे अर्द्धविकसित व घनी आबादी वाले देश के लिए कृषि साख की समस्या साख प्रदान करने की नीतियों को अवलोकन करना मात्र नहीं है। इस समस्या को एक वृहद् परिवेश में समझना होगा, जिसके अन्तर्गत ग्रामीण अर्थव्यवस्था, जनसंख्या का आर्थिक व सामाजिक स्तर, घरेलू पूंजी निर्माण में बाधाएं, उत्पादन व आवश्यक उपभोग कार्यो के लिए साख के परिमाण का निर्णय और उससे संबंधित तथ्यों व कारणो की जानकारी करती होगी। साधारणतया छोटी जोत आकार वाले भारतीय कृषक की आय जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक हो पाती हैं और उसको प्रत्येक फसल में खेती के कार्यो के लिए व आवश्यक उपभोग के लिए ऋण लेना पड़ता है। भू-राजस्व का भुगतान व पुराने ऋणों का परिशोधन, कृषि-उत्पादन संबंधी व्यय, औजार के क्रय तथा उपयुक्त मूल्य मिलने तक अनाज को रोक रखने के व्यय उत्पादक ऋण के उदाहरण हैं।

कृषि एवं कृषकों की अपनी कुछ ऐसी विशिष्टताएँ होती है, जो इसकी वित्त एवं साख की आवश्यकताओ को कृषि भिन्न क्षेत्रों की वित्त एवं साख संबंधी आवश्यकताओं से अलग करती है। कृषकों को कृषि कार्यो के लिए अथवा भूमि पर स्थायी सुधार करने के लिए पर्याप्त एवं सस्ती साख सुलभ नही है। कृषि वित्त की विद्यमान व्यवस्था अपर्याप्त तथा महंगी है। जिसके फलस्वरूप कृषि का विकास अवरूद्ध हो गया है। सरकार द्वारा कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए बुनाई गई कोई योजना तभी सफल हो सकती है। जब कृषकों को उचित समय पर पर्याप्त एवं सस्ती साख सुविधा उपलब्ध कराई जाए।

रीवा जिले में यूनियन बैंक ऑफ इंडिया द्वारा
कृषि क्षेत्र में विभिन्न वर्षो में प्रदत्त वित्तीय सुविधाएं

वर्ष	कुल अग्रिम राशि (लाख में)				उपलब्धित का प्रतिशत
	लक्ष्य		उपलब्धि		
	खाता	राशि	खाता	राशि	
1991-92	2012	126.22	1258	87.94	70
1999-2000	2920	237.85	805	178.14	75
2003-04	1510	305.50	1135	233.40	76
2007-08	2600	648.17	1310	960.19	148.14
2012-13	3055	1475.10	1188	869.71	58.96
2016-17	4671	2460.61	2383	2558.42	103.98

स्रोत-यूनियन बैंक ऑफ इंडिया अग्रणी जिला कार्यालय (रीवा), वार्षिक साख योजना (पत्रिका)

उपरोक्त तालिका द्वारा स्पष्ट है कि जिले में यू.बी.आई. बैंक कृषि क्षेत्र के लिए प्रतिवर्ष लक्ष्य निर्धारित करता है और उन लक्ष्यों के पूर्ति के सतत् प्रयास भी किये जाते है। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 1991-92 में कृषि क्षेत्र के लिए 2012 खाता धारकों के लिए निर्धारित लक्ष्य 126.22 लाख वितरण का लक्ष्य रखा गया, इसके विरूद्ध 1258 खाता धारको को 87.94 लाख की राशि वितरित की गई और इस उपलब्धि का प्रतिशत 70 प्रतिशत रहा। वहीं वर्ष 1999-2000 में लक्ष्य के अनुसार 2920 खाता धारकों को 237.85 लाख रूपये की राशि वितरित का लक्ष्य रखा गया।

समस्याएं- कृषि उपज मण्डी समिति में क्रय संबंधी समस्याओं से तात्पर्य क्रेताओं की समस्या से होता है। क्रेता समिति में वह पक्ष होता है जो मण्डी क्षेत्र में लायी गई कृषि उपज को क्रय करता है। इस क्रेता व्यापारी को मण्डी में कई असुविधाओं एवं समस्याओं का सामना करना पड़ता है, क्रेता व्यापारियों द्वारा जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। विक्रय संबंधी समस्याओं से तात्पर्य किसानों तथा विक्रेता व्यापारियों की समस्याओं से है। क्रय विक्रय के अतिरिक्त कृषि उपज मण्डी समिति की कई अन्य प्रशासनिक समस्याए भी है जो कि कृषि विपणन को प्रभावित करती है। इन समस्याओं पर कृषकों का ध्यान नहीं जाता है। किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से ये प्रशासनिक समस्याएं विपणन प्रक्रिया में बाधक होती है।

सुझाव- कृषि उपज मण्डी समिति की कार्य प्रणाली के प्रति कृषकों की संतुष्टि का अध्ययन के तीन पक्षों से सम्बधित है। क्रय अर्थात क्रेता व्यापारियों से, विक्रय अर्थात कृषकों एवं विक्रेता व्यापारियों से तथा प्रशासन अर्थात मण्डी समिति स्वयं विवेचन के आधार पर इन विभिन्न समस्याओं के निवारण हेतु सुझाव की आवश्यकता है, जो निम्नलिखित बिन्दुवार सुझाए जा रहे है-

1. सुरक्षित प्रांगण की व्यवस्था
2. गाँवों से मण्डी तक आवागमन के लिए सड़कों की व्यवस्था
3. मण्डी प्रांगण में तौल व्यवस्था
4. उपज मूल्य का समय पर भुगतान हो
5. मण्डी अधिकारियों की आवास व्यवस्था
6. किसानों को कृषि के आधुनिक तरीकों की जानकारी देना
7. गाँवों में गोदामों की कमी की पूर्ति
8. मण्डियों में कृषक संपर्क केन्द्र की व्यवस्था
9. भण्डारण की सुविधा का विस्तार
10. कृषकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था
11. मण्डी का नित्य कार्यकलाप समय पर प्रारंभ हो
12. विश्राम गृहों की व्यवस्था में सुधार
13. मण्डी की सेवाएं मण्डी बोर्ड में विलीन करने बाबत

उपरोक्त सुझावों के अतिरिक्त मण्डी समिति को अपने प्रांगण में

साफ-सफाई की उचित व्यवस्था करनी चाहिए दूषित पानी की निकासी के लिए आंतरिक नालियों का निर्माण करना चाहिए, किसानों के पशुओं के लिये पशु आहार एवं पानी की व्यवस्था होनी चाहिए और सबसे बड़ी बात यह कि अधिकारियों और कर्मचारियों को अपना व्यवहार कृषकों के प्रति सरल एवं अपनत्व भरा होना चाहिए। कर्मचारियों को उच्च सेवा भावना का परिचय देते हुए आदर्श स्थापित करना चाहिए, ताकि उनके एवं कृषकों के बीच मधुर संबंध बने रहे।

निष्कर्ष- कृषि विपणन तकनीकी में सुधार, कृषि उत्पादन में वृद्धि, मध्यस्थों की समाप्ति, कृषि विनिमय हेतु वित्तीय सुविधाएॅ, कृषि उत्पाद मूल्य में वृद्धि तथा कृषि विपणन का व्यावसायिक कार्य, व्यवसायिक अनुभव, पूँजी निवेश, छोटे कृषि व्यापारियों को संरक्षण कृषि के लिए वित्तीय सुविधाएॅ, व्यावसायिक प्रशिक्षण, यातायात का विकास, भण्डारण प्रक्रिया में सुधार, व्यावसायिक स्थिति का मूल्यांकन, मूल्य में स्थिरता जैसे अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। कृषि विपणन में जमाखोरी की समाप्ति, कृषि क्षेत्र को औद्योगिक क्षेत्र मानने के साथ-साथ गांवो में कृषि उत्पाद के विक्रय हेतु आवश्यक सुविधाएॅ प्रदान करने का प्रयास होगा। कृषि विपणन क्षेत्र में सहाकरी समितियों के विकास हेतु कृषि विपणन क्षेत्र में सहकारी समितियों के विकास हेतु सरकारी एजेन्सी द्वारा कम मात्रा का पूर्व निर्धारण उत्पादक व व्यापारियों से कृषि आय में वृद्धि जैसे उपायों को अपनाने से कृषि विपणन तथा कृषि उपज में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। कृषि उपकरणों वित्तीय सुविधाओं में वृद्धि के साथ ही अन्य आवश्यक मूलभूत सुविधाओं में विकास हेतु उपाय किये जायेगे। सहकारी विपणन व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जाएगा उत्पादको को उचित मूल्य दिलाए जाने के साथ ही पूंजीवादी बाजार को रोकने का प्रयास किए जाएगा, साथ ही कृषि विपणन व्यवसाय का विस्तार किया जाएगा, विस्तार के साथ ही देश वे अन्य विकसित राज्यों की कृषि विपणन के समान किया जाएगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. अग्रवाल एन.एल., भारतीय कृषि का अर्धतंत्र, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी
2. अग्रवाल, एन.एल. कृषि अर्थशास्त्र राजस्थान हिन्दी ग्रंन्थ अकादमी जयपुर
3. भारती एवं पाण्डेय भारतीय अर्थव्यवस्था मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
4. चौहान, शिवध्यान सिंह भारतीय व्यापार साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा
5. चतुर्वेदी टी.एन. तुलनात्मक आर्थिक पद्धतियाॅ राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर
6. जैन, एस.जी. विपणन के सिद्धांत साहित्य भवन आगरा
7. जैन, पी.सी. एवं जैन टेण्डका विपणन प्रबंध नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
8. खंडेला मानचन्द्र, उदारीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था साहित्य भवन प्रकाशन आगरा
9. मदादा एवं बोरवाल विपणन के सिद्धान्त रमेश बुक डिपो जयपुर
10. श्रीवास्तव, पी.के. विपणन के सिद्धान्त नेशलन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
11. सिंघई जी.सी. एवं मिश्रा, जी.पी. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त साहित्य भवन आगरा
12. त्रिवेदी, इन्द्रवर्धन एवं जटाना, रेणु विदेशी व्यापार एवं विनिमय राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
13. वान हेबलर, गाट फ्रायड, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत उ.प्र. हिन्दी सस्थान

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

भारत में विनिवेश : आजादी से अब तक

● कुमुद श्रीवास्तव

सारांश- भारत के विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्ष 1991 में आर्थिक सुधारों के अंतर्गत इन उपक्रमों की भूमिका को विनिवेश एवं निजीकरण के रूप में दोबारा परिभाषित किया गया है। वर्ष 1997 में सरकार के द्वारा विनिवेश आयोग का गठन किया गया साथ में 2002 में अलग से विनिवेश मंत्रालय बनाया गया। इस प्रकार आजादी के बाद विनिवेश की प्रक्रिया चलती रही। वर्ष 2021-22 के लिये विनिवेश प्राप्ति लक्ष्य 1.75 करोड़ का रखा गया। संघीय बजट 2021-22 के अनुसार सरकार विनिवेश से प्राप्ति राशि का उपयोग सामाजिक क्षेत्र एवं विनिवेश संबंधी कार्यक्रमों के वित्त पोषण में करेगी तय किया गया। आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंतर्गत वर्ष 2020-21 में भारत सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र से उपक्रमो की वाणिज्यिक क्षेत्र में उपस्थिति सिर्फ रणनीतिक क्षेत्रों में रखने का निर्णय लिया गया तथा शेष कम्पनियों को विलयित, निजीकृत या होल्डिंग कंपनी बनाने की घोषणा की गई। विनिवेश के द्वारा यदि देश के सामाजिक क्षेत्र शिक्षा स्वास्थ्य अन्य के साथ-साथ यदि रोजगार को बढ़ाया जाये, तथा विषय हो तो विनिवेश देश की प्रगति में सहायक होगा।

मुख्य शब्द - विनिवेश, वर्तमान नीति, मुख्य चरण

भारत सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों का देश की विकास प्रक्रिया में बुनियादी भूमिका रही है। वर्ष 1991 में आर्थिक सुधारो की प्रक्रिया के अंतर्गत बदली हुई परिस्थितियों में सरकार द्वारा इन उपक्रमों की भूमिका को 'पुनर्परिभाषित' निजीकरण एवं विनिवेश के रूप में किया गया। इस समय तक देशभर में विस्तृत ऐसे 244 उपक्रमों में सरकार द्वारा कुल 2.4 लाख करोड़ रूपये का निवेश किया जा चुका है। इनकी स्थापना की शुरूआत मार्च 1951 में 5 उपक्रमों एवं मात्र 29 करोड़ रूपये से की गयी थी। आर्थिक सुधारो की अवधि में भी सरकार द्वारा नये उपक्रमों को स्थापित करने का कार्य जारी रखा गया। वर्ष 2019तक ऐसे उपक्रमों की कुल संख्या 348 थी जिनमें भारत सरकार का कुल 16.41 लाख करोड़ रूपये का निवेश था।

विनिवेश किसी कंपनी में स्वामित्व की बिक्री की प्रक्रिया है तकनीकी रूप से इस शब्द का प्रयोग किसी भी कंपनी अर्थात निजी क्षेत्र की कंपनी के लिये किया जा सकता है। लेकिन व्यवहार में इसे सिर्फ सरकारी स्वामित्व वाली कंपनियों के लिये ही प्रयोग में लाया जाता है। भारत में विनिवेश का शुरूआत तीन अंतः सबंधित नियामको के साथ हुई –

● प्राध्यापक, शासकीय तिलक महाविद्यालय कटनी

1. सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों के सुधार के साधन के तौर पर
2. आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के अंग के तौर पर अर्थात उद्योगो के अनारक्षण के अंग के रूप में, और
3. बजटीय आवश्यकताओं के लिये संसाधन42 की व्यवस्था करने के साधन के तौर पर।

शोध के मुख्य उद्देश्य-

1. विनिवेश के अर्थ को स्पष्ट करना।
2. भारत सरकार की विनिवेश की वर्तमान नीति की विवेचना करना।
3. भारत सरकार की विनिवेश नीति के आजादी के विभिन्न चरणों को स्पष्ट करना।

शोध विधि- शोध पत्र का अध्ययन क्षेत्र भारत है, अध्ययन अवधि स्वतंत्रता से लेकर वर्तमान समय तक की अवधि की गई है। शोध हेतु द्वितीय संमकों के रूप में विभिन्न पुस्तके, ई-बुक, प्रकाशित समाचार पत्र पत्रिकायें का प्रयोग किया गया है।

अन्य विकासशील देशों की तुलना में भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों के लिये अधिक सतर्क दृष्टिकोण अपनाया गया है। भारत ने इसके लिये अत्यांतिक समाधान नही अपनाया जिसके तहत वाणिज्यिक रूप से लाभकारी सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का पूर्णतया निजीकरण किया जाता है तथा उन उद्यमों को बन्द कर दिया जाता है। जो वाणिज्यिक रूप से लाभकारी नही होते है।1980 के दशक में भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों के तहत सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों की कार्यात्मक स्वायत्तता को बढ़ाने पर बल दिया गया ताकि उनकी कार्यकुशलता बढ़े। आर्थिक सुधार की प्रक्रिया 1990 के दशक के शुरूआत में प्रारंभ हुई तथा विनिवेश सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों का एक भाग बना। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के विनिवेश पर गठित सी. रंगराजन आयोग (1991) ने विश्वभर में विनिवेश के अनुभव को देखते हुये सरकार को इस संदर्भ में एक अत्याधिक सराहनीय व सुव्यवस्थित रूप में सलाह दी। सरकार ने विनिवेश की प्रक्रिया को 1991 में ही आरंभ कर दिया। सरकार ने 1997 में एक विनिवेश आयोग की स्थापना विनिवेश प्रक्रिया के विभिन्न पक्षों को सलाह देने के लिये की। वित्तीय वर्ष 1999-2000 में सरकार द्वारा विनिवेश को एक राजनीतिक प्रक्रिया बनाने का प्रयास किया गया ताकि इसे देश में आगे बढ़ाया जा सके-पहले एक विनिवेश विभाग तथा बाद में एक पृथक विनिवेश मंत्रालय स्थापित किया गया। नई यू.पी.ए. सरकार ने विनिवेश मंत्रालय को विघटित कर दिया ओर अब केवल विनिवेश विभाग ही इस दिशा में काम कर रहा है तथा यह विभाग वित्त मत्रालय के अधीन कार्य करता है।

जनवरी 2013 में सरकार ने राष्ट्रीय निवेश कोष (National Investment Fund - NIF) को पुर्नगठित करने का निर्णय लिया, जिसे फरवरी 2013 में पुनः संशोधित किया गया और यह तय किया कि वित्तीय वर्ष 2013-14 से विनिवेश प्राप्तियों को वर्तमान "लोक लेखा" में एन.आई.एफ. (Public Account) शीर्ष में जमा कराया जायेगा तथा इसके व्यय का निर्णय संघीय बजट द्वारा लिया जायेगा। यह भी निश्चय किया गया कि एन.आई.एफ. का निम्नलिखित उद्देश्यों के लिये उपयोग किया जायेगा।

1. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको तथा बीमा कंपनियों सहित सी.पी.एस.ई. द्वारा जारी शेयरों को सब्सक्राइब करना वह भी अधिकार पर आधारित जिससे कि इनमें सरकार का स्वामित्व 51 प्रतिशत तक सुनिश्चित किया जा सकें।
2. प्रोत्साहकों (Promoters) को सी.पी.एस.ई.के शेयरों का प्राथमिकता के आधार पर आवंटन, जिससे कि उन मामलो में सरकार की हिस्सेदारी 51 प्रतिशत से कम न हो पाये जहॉ सी.पी.एस.ई. अपने कैपेक्स (Capex) 51कार्यक्रम के लिये नई इक्विटी जारी करें।
3. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको एवं सार्वजनिक क्षेत्र की बीमा कंपनियों का पुनः पूंजीकरण।
4. सरकार द्वारा आर.आर.बी. आई.आई.एफ.सी.एल., नाबार्ड, एक्जिम बैंक में निवेश।
5. विभिन्न मेट्रो परियोजनाओ में इक्विटी डालना।
6. भारतीय नाभिकीय विद्युत निगम तथा यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया लि. में निवेश।
7. भारतीय रेल में पूॅजी व्यय के लिये निवेश

इस प्रकार विनिवेश से प्राप्त धनराशि के इस्तेमाल की नीति वर्ष 2013-14 से काफी लचीली हो गयी तथा यह सरकार को इसे वर्तमान सामाजिक-आर्थिक जरूरतो के अनुसार उपयोग में लाने का अवसर प्रदान करती है। इसका व्यय अब राजस्व (Revenue) एवं पूॅजीगत (Capital) दोनो ही प्रकार के व्ययों के वित्त पोषण में किया जा सकता है। संघीय बजट 2021-22 के अनुसार सरकार इस धनराशि का उपयोग सामाजिक क्षेत्र एवं विकास संबंधी कार्यक्रमों के वित्त पोषण में करेगी।

विनिवेश से प्राप्त धनराशि सरकार की गैर-ऋण पूॅजीगत प्राप्तियॉ है जिस कारण समयांतराल मे यह बजटीय व्ययों के वित्त पोषण के लिये एक आकर्षक धन के रूप में उभरी। केन्द्र सरकारें प्रतिवर्ष इसका उच्च स्तर लक्षित करती रहीं है उदाहरणस्वरूप वर्ष 2020-21 के लिये इसका लक्ष्य 2.10 लाख करोड़ रूपये था, वैसे कोविड़-19 महामारी के संकट के कारण जनवरी 2021 तक मात्र 15,220 करोड़ रूपये प्राप्ति हो पायी थी 2020-21 के अनुसार, वर्ष 2021-22 के लिये संघीय बजट द्वारा विनिवेश की प्राप्ति का 1.75 करोड़ रूपये का लक्ष्य रखा गया है।

विनिवेश की शुरूआत होने के एक वर्ष बाद ही यह विवाद उठ खड़ा हुआ कि उससे हुई प्राप्ति का उचित उपयोग कैसे हो सरकार को यह प्राप्ति सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के शेयरो के बिक्री से होती है। इस विवाद काक्रम विकास मूलतः चार चरणों से होकर गुजरा है।

चरण 1- यह चरण 1991-2000 के मध्य माना गया है, जिसमें विनिवेश द्वारा हुई प्राप्ति का उपयोग सरकार द्वारा बजट की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये किया गया। दूसरे शब्दो में यदि कहा जाये तो वित्तीय घाटे को कम करने के लिये इसका उपयोग किया गया।

चरण - 2 इस चरण की अवधि बहुत कम थी (2000-2003) तथा इसमें दो नये विकास

हुये सर्वप्रथम सरकार ने यह प्रथा शुरू की कि प्राप्ति का उपयोग न केवल वित्तीय घाटे को कम करने के लिये किया जायेगा बल्कि कुछ अन्य उद्देश्यों के लिये भी किया जायेगा। जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में पुनर्निवेश, सरकारी ऋण को चुकाने में तथा सामाजिक क्षेत्र में इसका उपयोग। दूसरा यह कि 2000-01 के शुरूआत में एक व्यापक सर्वसम्मति तत्कालीन वित्त मंत्री के एक प्रस्ताव पर हुई यह प्रस्ताव विनिवेश से हुये प्राप्ति के उपयोग के संदर्भ में था।

विनिवेश से हुये प्राप्ति के कुछ अंशों का उपयोग-

1. विनिवेश किये गये सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम में ही उसे अधिक उन्नत बनाने के लिये किया जायेगा।
2. अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में परिवर्तन के लिये किया जायेगा
3. सरकारी ऋणों की पूर्व अदायगी/भुगतान के लिये किया जायेगा।
4. सामाजिक आधारभूत संरचना शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा इत्यादि के लिये किया जायेगा।
5. श्रम बल के पुनर्वास में किया जायेगा। यह उपयोग विनिवेश किये गये सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम में किया जायेगा।
6. बजट की आवश्यकताओं को पूरा करने में किया जायेगा।

चरण 3- इस चरण में सरकार द्वारा दो महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये -

1. **एक राष्ट्रीय निवेश कोष (National Investment Fund NIF)**-इसकी स्थापना जनवरी 2005 में हुई जिसमें विनिवेश से हुयी जिसमें विनिवेश से हुयी प्राप्ति को निम्न प्रकार से निर्दिष्ट किया जाता है।

1. यह निधि भारत की संचित कोष (Consolidated Fund of India) से अलग (पूर्व नीति के विपरीत) है।
2. राष्ट्रीय निवेश कोष (एन.आई.एफ.) की राशि स्थाई प्रवृत्ति की होगी।
3. इस कोष का पेशेवर प्रबंधन होगा, ताकि इस पर निर्भर हुये बिना स्थाई कमाई हो सकें प्रबंधन चुनिन्दा सार्वजनिक क्षेत्र के म्यूचुअल फंड करेंगे जैसे- यू.टी. आई. असेट मैनेजमेंट कंपनी लिमिटेड (एस.बी.आई), फंड्स मैनेजमेंट कंपनी प्राइवेट लिमिटेड(एल.आई.सीम्यूचुअल फंड असेट मैनेजमेंट कंपनी लिमिटेड)

कोष की 75 फीसदी राशि का इस्तेमाल चुनिंदा सामाजिक क्षेत्र योजनाओं को वित्त उपलब्ध करवाने के लिये किया जायेगा, जो शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार को बढ़ावा देती है। बचे हुये 25 फीसदी का इस्तेमाल लाभ योग्य और पुनर्जीवन योग्य पीएसयू की पूँजी निवेश आवश्यकताओं को पूरा करने में किया जायेगा। जिससे यथोचित फायदा मिले ताकि वित्त के विस्तार/विविधीकरण के लिये पूंजीगत आधार बढ़ाया जा सकें। एनआईएफ निवेशों से आय को सामाजिक क्षेत्र की कुछ चुनिंदा योजनाओं में लगाया गया, जो है जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी पुनर्वास अभियान (JNNURM) त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम (एआईबीपी) राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरणयोजना(आरजी जीवीवाई) त्वरित विद्युत विकास और सुधार कार्यक्रम, इंदिरा गांधी आवास योजना और

राष्ट्रीयग्रामीणरोजगार गारंटी योजना(एनआरईजीएस)

2.एन.आई.एफ. का पुनर्गठन-Restructuring of NIF नवम्बर 2009 में सरकार ने विनिवेश प्राप्ति उपयोग की नीतियों में एक परिवर्तन की स्वीकृति दी। 2008-09 की वैश्विक मंदी तथा 2009-10 के सूखे के कारण पैदा हुई कठिन परिस्थिति के मद्देनजर एन.आई.एफ. में जमा होने वाली विनिवेश प्राप्तियों के लिये एक बार की छूट की स्वीकृति दी गई, जो कि 2009-12 के लिये प्रयोजनीय थी। लेकिन अर्थव्यवस्था की कठिन अवस्था जारी रहने के कारण जिसे 2012-13 तक बढ़ा दिया गया तीन वर्षो की अवधि की सभी विनिवेश प्राप्तियों का उपयोग चुनिंदा सामाजिक क्षेत्र की योजनाओं में किया जायेगा।

चरण4- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों का उद्देश्य आयात प्रतिस्थापन (Substitution) एवं आत्मनिर्भरता रहीं थी। जो कि वर्ष 1954 के महालानोबिस योजना का आधार बना। लेकिन इन उपक्रमों आंतरिक अदक्षता, उच्च लागत आधारित संरचना एवं सरकार की तंग राजकोषीय स्थिति इत्यादि कारणों की वजह से वर्ष 1991 से इनके विनिवेश एवं निजीकरण की प्रक्रिया शुरू की गयीं। सरकार द्वारा अब तक रणनीतिक बिक्री एवं स्टॉक बाजार के माध्यमों से इनकी वाणिज्यक क्षेत्रों में उपस्थिति को कम करने की भी कोशिश की गयी है ओद्योगिक क्षेत्र से सरकार को बाहर निकलने के विषय पर हम गंभीर एवं दीर्घावधिक परिचर्चा भी देखते है। जो इसकी समाजिक एवं आर्थिक महत्ता को दर्शाता है।

आत्मर्निभर भारत अभियान के अंर्तगत सरकार द्वारा 2021-21 में सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों से जुड़ी नीति में प्रतिमानात्मक (Pardigmatic)परिर्वतन की घोषणा की गई इनके अनुसार इन उपक्रमों की वाणिज्यिक क्षेत्र में उपस्थिति सिर्फ रणनीतिक (Strategic) क्षेत्रों में रखने का निर्णय लिया गया है तथा बाकि उपक्रमों को विलयित, निजीकृत या होल्ड़िग कंपनी बनाने की घोषणा की गयी है। इसके साथ ही गैर सामरिक क्षेत्र की उपक्रमों को निजीकृत या फिर बंद कर देने का निर्णय लिया गया है। इस प्रक्रिया के उपरांत न सिर्फ अर्थव्यवस्था में एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का समावेश होगा बल्कि सरकार को सामारिक क्षेत्र पर ध्यान देने का भी बेहतर अवसर प्राप्त होगा ताकि सरकार के अधीन आने वाले उपक्रम सरकार की अपेक्षाओं के अनुसार कार्य एवं निष्पादन कर सकें सलाह दी गई थी -

1. इनके बोर्ड एवं संरचना का पुननिर्माण
2. इनके बोर्ड की परिचालन संबंधी स्वायत्तता में वृद्वि तथा मजबूत कारॅपोरेट गवर्नेस की व्यवस्था, एवं
3. पारदर्शिता को बढ़ाने के लिए उन्हें स्टॉंक एक्सचेंज में सूचीबद्व करना।

इन उपक्रमों के विनिवेशीकरण एवं युक्तिकरण (Rationalisation) के अतिरिक्त सरकार द्वारा इनके बेहतर ढंग से परिचालित करने के उद्‌देश्य से कई और नीतिगत पहलें भी की गयी है।जैसे इनके निष्पादन को प्रबोधित करने संबंधी व्यवस्था की पुर्नसंरचना, रूग्ण घाटे में चलने वाले उपक्रमो को समय पर बंद करना तथा इनकी परिसंपत्तियों का मौद्रीकरण इत्यादि।उपरोक्त विषलेषण के स्पष्ट होता है कि-

1. वर्ष 1991के आर्थिक सुधारों में सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों को निरीकरण एवं विनिवेश के रूप में पुर्नपरिभाषित किया है।
2. भारत में विनिवेश की शुरूआत सार्वजनिक उपक्रमों के सुधार, सुधार प्रक्रिया के अंग एवं बजटीय संसाधन के तौर पर हुई।
3. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विनिवेश हेतु गठित आयोग ने सलाह दी। 1997 में सरकार के द्वारा विनिवेश के विभिन्न क्षेत्रों में सलाह देने के लिए विनिवेश आयोग की स्थापना की।
4. वर्ष 1999-2000 में सरकार के द्वारा प्रथम विनिवेश विभाग बनाया गया और बाद में अलग से विनिवेश मंत्रालय स्थापित किया गया।
5. वित्तीय वर्ष 2013-14 से विनिवेश प्राप्टियों हो (NIF) राजकीय निवेश कोष के (Public account) लोक लेखा में जमा करने का निर्णय लिया,जिसके व्यय का निर्णय संघीय बजट द्वारा लिया जाता रहा।
6. संघीय बजट 2021-22 के अनुसार सरकार विनिवेश से प्राप्त राशि का उपयोग सामाजिक क्षेत्र एवं विनिवेश संबंधी कार्यकलयों के रिक्त पोषण में करेगी।
7. विनिवेश से प्राप्त राशि भारत सरकार की गैर ऋण पूंजीगत प्राप्तियां है, जो बजटीय व्ययों के वित्तपोषण का कार्य भी करती है।
8. वर्ष 2021-22 के लिए संघीय बजट द्वारा विनिवेश प्राप्ति का लक्ष्य 1.75 करोड़ रू. का रखा गया है।
9. वर्ष 1991-2000 के बीच विनिवेश से प्राप्ति का उपयोग वितीय घाटे को कम करने के लिए किया गया।
10. वर्ष 2000-2003 के बीच विनिवेश से प्राप्ति का उपयोग अन्य उद्यमों में परिवर्तन सरकारी ऋणों के भुगतान सामाजिक आधारभूत संरचना के लिए एवं श्रमबल के लिए किया जाना तय था।
11. एक राष्ट्रीय निवेश कोष (NIF)की स्थापना 2005 में की गई। जो कि स्थायी प्रवृत्ति की होगी, प्रबंधन पेशेवर होगा कोष का उपयोग सार्वजनिक क्षेत्र के म्यूचुअल फण्ड जैसें यू टी आई असेटं मैनेजमेट कंपनी लिमिटेड फण्ड मैनेजमेट कंपनी प्राइवेट लिमिटेड।
12. 2005 की अवधि में कोष की 75 प्रतिशत राशि का उपयोग सामाजिक क्षेत्र के लिए वित्त कराने के लिए एवं 25 प्रतिशत लाभयोग्य एवं पूर्जी निवेश आवश्यकताओं के लिए तय किया गया।
13. एन. आई. एफ. का पुनर्गठन 2009 में किया। जिसके अंतर्गत विनिवेश प्राप्तियों के लिए छूट की स्वीकृति दी गई । जिसे अर्थव्यवस्था की कठनाईयों के कारण (सूखा एवं मंदी) 2012-13 तक बढ़ा दिया। तीन वर्षों की सभी विनिमेश प्राप्तियों का उपयोग सामाजिक क्षेत्र की योजनाओं में किया जायेगा।
14. वर्ष 2020-21 में भारत सरकार के द्वारा आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंर्तगत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की वाणिज्यिक क्षेत्र में उपस्थिति सिर्फ रणनीतिक क्षेत्रों रखने का निर्णय लिखा गया तथा शेष उपक्रमों को विलियित, निजीकृत या

होल्डिग कंपनी बनाने की घोषणा की गई।

15. वर्ष 2020–21 में गैर सामाजिक क्षेत्र के उपक्रमों को निजीकृत या फिर बंद करने का निर्णय किया गया।
16. वर्ष 2020–21 में उपक्रम अपेक्षाओं के अनुसार कार्य करें एवं निष्पादन कर सकें इसके लिए बोर्ड का पुननिर्माण स्वायत्ता में वृद्वि मजबूत कारपोरेट गवर्नेस की व्यवस्था द्वारा पारदर्शिता हेतु स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्व करने की सलाह दी गई।
17. वर्ष 2020–21 में भारत सरकार ने जो भी नीतिगत फैसले लिये है उनके निष्पादन की निगरानी का निर्णय लिया है।

भारत में आजादी से अब तक विनिवेश नीति का यदि कुछ सुझावों को प्रस्तुत किया जायें तो वे देश की अर्थव्यवस्था जनमानस के लिये लाभदायक हो सकती है।

1. नीति का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में सुधार हो।
2. विनिवेश से प्राप्त राशि का उपयोग विनिवेश संबंधी कार्यक्रमों के वित्त पोषण में किया जाये।
3. विनिवेश सार्वजनिक उपक्रमों के उचित मूल्य प्राप्ति पर ही किया जायें।
4. विनिवेश से प्राप्त राशि का उपयोग सामाजिक क्षेत्र जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, जैसे अन्य कार्यो में किया जाना चाहियें।
5. विनिवेश से प्राप्त राशि का प्रयोग सरकार अपनी देनदारियों, सामाजिक अधोसंरचना, देश में रोजगार स्थापित करने एवं अर्थव्यवस्था के विकास में लगायेंगी तो निश्चित रूप से अर्थव्यवस्था में सुधार आयेगा और भारत के आत्मनिर्भर भारत अभियान को प्राप्त किया जा सकेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. Economic survey 2019-20 , Vol.2 PP.221-223 Ministry of finance Gol, N Delhi.
2. Economic survey 2020-21 Vol.2 P 273 - 75 Ministry of Finance Gol N. Delhi.
3. Ministry of Finance Department of Investment and Public Asset Management Government of India N Delhi March 2017
4. Ministry of finance various issue of he economic surrey New Delhi Government of India.
5. Publication Division, India 1991 (New Delhi Government of India 1992)
6. Ministry of finance Disrestment Policy Announcement Depaotment of Disinvestment, New Delhi
7. Government of India 2005
8. P.A. Sanuelson and W.D. Noodhans , Economcis, New Delhi Tata Mcgrane hill 2005 P 703
9. Publication Division , India 2003 New Delhi Government of India 2004.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

म.प्र. के रतलाम जिले में कृषि विपणन समितियों का अध्ययन

•राकेश कुमार चौहान

सारांश- सहकारी विपणन समितियों के विकास के लिए काफी बड़ा क्षेत्र उपलब्ध है। सर्वप्रथम उच्चतर खेती और विपणन के समायोजन की आवश्यकता है। आज यह प्रयास किया जाता है कि ऐसी समितियां कायम की जाए जो इन तीनों सेवाओं को एक साथ उपलब्ध कराए।सहकारी विपणन समितियों को ग्रामीण क्षेत्रों तथा मण्डियों में अपने गोदाम और भण्डारण कायम करने के लिए भी सहायता देनी चाहिए। यह सरकार द्वारा अनुदान और अर्थसाध्य देकर भी लिया जा सकता है या स्टेट बैंक या रिजर्व बैंक द्वारा सस्ती वित्त-व्यवस्था द्वारा ही हो सकता है। सहकारी विपणन समितियों का कार्य क्षेत्र बढ़कर इनमें बहुत से ग्राम शामिल कर लेने चाहिएं ताकि ये किसानों के माल का अच्छी प्रकार क्रय-विक्रय कर सकें। इस प्रकार समिति अपने प्रबन्ध कार्य के लिए योग्य व्यक्तियों को भी लगा सकती हैं। सहकारी विपणन समितियों के लिए कृषि उत्पादनों अर्थात उर्वरक, बीजों, कृषि मशीनरी और औजार, कीटनाशकों आदि के क्रय-विक्रय का बहुत बड़ा क्षेत्र उपलब्ध है। देश में कुल उर्वरक के वितरण का लगभग 47 प्रतिशत सहकारी विपणन समितियों द्वारा बेचा जाता है।

मुख्य शब्द - सहकारी विपणन, भण्डारण, क्रय-विक्रय, उर्वरक, बीजों, कृषि

भारत में कृषि बाजार की अक्षमता का एक मुख्य कारण परिवहन के सन्तोषजनक साधनो की कमी है। पंजाब, हरियाणा तथा केरल को छोड़ कर देश के बाकी भागों में परिवहन के साधनों में बहुत सुधार लाने की आवश्यकता है। देश के कई भागों में अब भी मण्डियों गाँवों से केवल कच्ची तथा धूल-धूसरित सड़कों द्वारा ही जुड़ी हुई है। अब भी भारत के अधिकतर किसानों के लिए परिवहन का मुख्य साधन बैलगाड़ी, पिकअप, ट्रेक्टर ट्राली का अधिक प्रयोग किया जाता है। मण्डियों में उत्पादनों को कृषि विपणन में उन सभी गतिविधियों, एजेंसियों और नीतियों को शामिल किया जाता है। जिनके द्वारा कृषि उत्पादों को किसान के खेत खलियानों से लेकर अंतिम उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जाता है। कृषि विपणन में बहुत सारी गतिविधियों का एक दूसरे से अंतर्सम्बन्ध होती है। जैसे- फसल का उगाना, काटना, कृषि उत्पाद का श्रेणीकरण एवं विभाजन करना, पैकिंग, परिवहन, भण्डारण, विज्ञापन, वितरण एवं विक्रय करना होता है। कृषि उत्पादकों की विपणन प्रणाली के कार्यकुशलता का स्तर ऊँचा करने और किसानों के मध्यस्थता के कपटपूर्ण व्यवहार से बचाकर उन्हें उसकी फसल का उचित मूल्य दिलाने के लिए सहकारी विपणन एक

• शासकीय महाविद्यालय लटेरी, विदिशा, मध्य प्रदेश

अच्छा विकल्प है। सहकारी विपणन समिति पर अपने सदस्यों के थोड़े-थोड़े विपणन आधिक्य को एकत्र कर मण्डियों में थोक व्यापारियों की सहायता से किसानों की अच्छी उपज का उचित मूल्य मिल सकता है। सहकारी विपणन समितियों किसानों की उपज को बेचने के अतिरिक्त उन्हें उन्नत किस्म के बीज, उर्वरक, कृषि उपकरण आदि अन्य अनिवार्य वस्तुएँ उपलब्ध कराती है।

बेहतर उत्पादकता के लिए आवश्यक है कि बेहतर गुणवत्ता के बीज वाजिब कीमत और सही समय पर किसानों को उपलब्ध कराए गए। इसके लिए बारहवीं योजना के अन्तर्गत बीज और रोपण सामग्री की गुणवत्ता सुधारने तथा उपलब्धता बढ़ाने का एक उपमिशन शुरू किया गया था, जिससे नई सरकार के आने के बाद और अधिक मजबूती से लागू किया जाए। वैज्ञानिकों संस्थाओं को बेहतर क्वालिटी के प्रजनक बीज तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपी गई और किसानों को भी इस अभियान में शामिल किया गया। शुद्ध बीज उत्पादन की तकनीकी को विकसित करके किसानों तक पहुँचाया गया जिससे इस अभियान को बल मिला और किसानों की आमदनी भी बढ़ी। किसानों के आर्थिक उद्देश्य को अपनी जिम्मेदारी मानते हुए प्रधानमंत्री सन 2022 तक किसानों की आमदनी दोगुनी करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। अभी तक कृषि विकास का मुख्य उद्देश्य उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाकर देश की खाद्य सुरक्षा को मजबूत बनाना था।

जब तक किसान खुशहाल नहीं होंगे तब तक देश एवं समाज का पूर्ण विकास नहीं हो सकता है। इस बात के महत्व को समझते हुए केन्द्र सरकार ने स्वतंत्रता के बाद से ही किसानों के हितों को विशेष तरजीह दी है और उनके संरक्षण एवं संवर्धन के लिए कई योजनाएँ लागू की। परिणाम बेहद उत्साहवर्धक है। किसान क्रेडिट कार्ड, फसल बीमा योजना, साहित्य बागवानी मिशन आदि इस प्रयास का एक हिस्सा है। आज किसान के हाथों में किसान क्रेडिट कार्ड है। भारतीय रिजर्व बैंक और नाबार्ड की संयुक्त पहल पर किसानों के लिए यह महत्वाकांक्षी योजना 1998 में लाई गई। किसान क्रेडिट कार्ड योजना का उद्देश्य बैंकिंग व्यवस्था से किसानों को समुचित और यथासमय सरल तरीके से आर्थिक सहायता दिलाना है। ताकि खेती एवं जरूरी उपकरणों की खरीद आदि के लिए उनकी वित्तीय आवश्यकता पूरी हो सके।

वर्तमान भारत में बड़ी संख्या में ग्रामीण परिवारों की आजीविका कृषि से संबंध है। ऐसी स्थिति में इनकी उन्नति के बिना देश की उन्नति की कल्पना नहीं की जा सकती है। यदि हम वित्तीय समावेशन की बात करें तो कृषि में वित्तीय समावेशन के जरिए पिछड़े किसानों को आगे लाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना और राष्ट्रीय कृषि ब्याज योजना वित्तीय समावेशन की दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकती है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए कैबिनेट ने इन दोनों योजनाओं की मंजूरी दी है। इन दोनों योजनाओं के जरिए किसानों को काफी राहत मिलेगी। इन योजनाओं का किसानों को त्वरित लाभ मिले, इसके लिए नीति आयोग खुद इसकी निगरानी करेगा।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला है। आर्थिक जीवन का आधार रोजगार का प्रमुख स्रोत तथा विदेशी मुद्रा का माध्यम होने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि कामहत्वपूर्ण स्थान है। यही नहीं कि देश की दो तिहाई जनसंख्या कृषि व कृषि

संबंधित क्षेत्रों पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से आश्रित है। अतः कृषि की समृद्धि की समानता व उत्पादकता पर ही अपनी जीविकोपार्जन कर रही है। इसी महत्वपूर्ण पहलू को देखते हुए देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भी विकास प्रक्रिया में को प्राथमिकता प्रदान करते हुए कहा था कि सब कुछ इंतजार कर सकता है मगर खेती नहीं। इसी मूलमंत्र को ध्यान में रखते हुए देश में कृषि विकास हेतु उत्तरोत्तर किया गया। इंदिरा गांधी ने भी कृषि को सर्वोच्च स्थान देते हुए कहा है कि जब तक हम अगले कुछ वर्षों में कृषि का उत्पादन बढ़ाकर आत्मनिर्भर नहीं होंगे तब तक हमें महान देश की पदवी तो दूर की बात है पर स्वतंत्र कहलाने का अधिकार भी नहीं है। कृषि को जब तक जीविकोपार्जन का साधन समझा जाता तब तक कृषि लाभप्रद नहीं होगी। इस लिए आज आवश्यकता है कृषि को तकनीकी एवं संसाधनों सुदृढ़ कर इसे व्यावसायिक मंडल के तौर पर विकसित किए जाने की और साथ ही किसानों को भी आश्वस्त किए जाने की जरूरत है कि कृषि भी एक व्यवस्थापरक क्षेत्र है। जहाँ आर्थिक लाभ की असीम संभावनाएँ है। जब तक कृषि का व्यवसायीकरण नहीं किया जायेगा तब तक किसान इसे मजदूरी का कार्य समझकर उदासीन ढंग से कृषि करता रहेगा।

आज किसान के हाथों में किसान क्रेडिट कार्ड है। भारतीय रिजर्व बैंक और नाबार्ड की संयुक्त पहल पर किसानों के लिए यह महत्वकांक्षी योजना 1998 में लाई गई। किसान क्रेडिट कार्ड योजना का उद्देश्य बैंकिंग व्यवस्था से किसानों को समुचित और यथासमय सरल तरीके से आर्थिक सहायता दिलाना है। ताकि खेती एवं जरूरी उपकरणों की खरीद आदि के लिए उनकी वित्तीय आवश्यकता पूरी हो सके।

कृषि में उत्पादकता का सबसे महत्वपूर्ण साधन भूमि है। तथा भूमि की एक विशेषता यह है कि उत्पादन के अन्य साधनों जैसे क्रय या पूंजी की भांति, इसका एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं ले जाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में फसलों के उत्पादनों के लिए अपने खेत को किसी सुस्थापित मण्डी के निकट ले जाना सम्भव नहीं है तथा उत्पादन इकाई का उसके बाजार या मण्डी के पास होना आवश्यक है। इसलिये कृषि क्षेत्र में एक ही विकल्प रह जाता है। वह यह है कि मण्डियों को ही खेतों के निकट स्थापित किया जाए। इस कारण से कृषि में किसानों के हितों की रक्षा करने के लिए एक कुशल बाजार प्रणाली अर्थात मण्डियों की स्थिति तथा इनकी कार्य कुशलता का महत्व बहुत बढ़ जाता है। खेतों तथा मण्डियों को एक दूसरे के निकट लाने की आवश्यकता के महत्व को ध्यान में रख कर हीइल ने कहा था कि, केवल कृषि मण्डियों की एक सुसंगठित श्रृंखला हो, जहाँ इधर-उधर बिखरे हुए किसान बिना किसी कठिनाई के पहुँच सकते हैं। कृषि क्षेत्र की उस समस्या का समाधान कर सकती है जो कि जोतों की नियत स्थिति के कारण खड़ी होती है।

भारत में कृषि उत्पादन लागत बढ़ रहा है। आज भारतीय कृषि भारत की खाद्यान्न आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है। भारतीय कृषि का महत्व इस बात में परिलक्षित होता है कि दुनिया के मात्र 2.4 प्रतिशत क्षेत्रों और 4.2 प्रतिशत पानी से हम विश्व की लगभग 17.5 प्रतिशत आबादी का भरण-पोषण करने में कामयाब है। आज भारत ने खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है।

कृषि विपणन से आशय उन सभी क्रियाओं से है, जिनका सम्बन्ध कृषि उत्पादन को किसानों के यहाँ से अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाना है। अर्थातकृषि विपणन में कृषि उपजों को एकत्रित करना उसका श्रेणीयन एवं प्रमाणीकरण, भण्डारणों में रखना, मण्डी तक पहुँचाना, उसकी बिक्री करना और इन सबके लिए आवश्यक वित्त व्यवस्था करना आदि शामिल है। भारत में कृषि विपणन व्यवस्था में व्याप्त दोषों के कारण किसानों को आज भी अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पा रहा है। यद्यपि सरकार ने कृषि विपणन में सुधार हेतु अनेक कदम उठाए हैं किन्तु अभी भी ये उपज पर्याप्त नहीं हे और कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार की जरूरत है। इस प्रक्रिया में अपने शोध में कृषि उपज मण्डी समितियों का चुनाव किया है। किस तरह उत्पादन का विपणन व कार्य प्रणाली आय व्यय और मण्डी समितियों के अधिकारी के व्यवहार को अध्ययन में शामिल किया गया है।

आवश्यकता एवं महत्व- भारत अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है जो देश की 65 प्रतिशत जनसंखया कृषि से जुड़ी हुई है। ग्रामीण जनसंख्या का लगभग 74 प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर है। कृषि विकास का स्तर ही देश का सूचकांक और आर्थिक विकास संवृद्धि का आधार है। आप कृषि विपणन की उचित व्यवस्था एक सबसे बड़ी देश की आर्थिक विकास से संबंधित है। यही एक मात्र क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत कृषि उपज का विक्रय मूल्य से नहीं होता है। जबकि अन्य व्यवसायों में प्रत्येक वस्तु का विक्रय मूल्य पूर्व निर्धारित होता है, जिसमें लागत के साथ लाभ भी शामिल होता है। परन्तु कृषि के विक्रय में यह बड़ी विडम्बना है कि कृषक अपनी उपज का मूल्य स्वयं निर्धारित नहीं कर सकता है चाहे उसे हानि उठाना पड़े।

1. कृषि उपज मण्ड़ी समितियों का तकनीकी एंव उसके प्रभावो का अध्ययन किया गया।
2. कृषकों को सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से लोगों को कृषि उपज मण्डी से सम्बन्धित जागरूकता का अध्ययन किया गया है।
3. कृषि उपज मण्डी में विभिन्न उपज मूल्य दरों कर अध्ययन किया गया है।
4. किसानों को विपणन संबंधी कार्य मे आने बाली समस्याओं व समाधान का अध्ययन किया गया है
5. नवीन योजनाओ का कृषि में योगदान का अध्ययन किया गया है
6. भारत में कृषक अपनी उपज का एक बड़ा भाग गाँव में ही महाजनों एवं व्यापारियों को बेच देता है। प्रायः कृषक गाँव के महाजनों व व्यापारियों से ऋण लेता है। इस स्थिति में यह वर्ग लाभ उठाता है और कृषकों से कम मूल्य पर अनाज खरीद लेना, ऋणग्रस्तता के कारण भी कृषक उन्हें बेचने के लिए बाध्य हो जाता है।

कृषि वस्तुओं की विपणन व्यवस्था में पाये जाने वाले दोषों को दूर करने के लिए सरकार ने मण्डियों को नियंत्रित करना। विभिन्न राज्यों में मण्डियों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से समय-समय पर अधिनियम पारित किया गया है, जैसे हैदराबाद कृषि विपणन अधिनियम 1935, बम्बई कृषि उपज अधिनियम 1939। इन विभिन्न अधिनियमों के परिणामस्वरूप नियंत्रित मण्डियों की संख्या जहाँ 1950-51 में केवल 265 थी

बढ़ते-बढ़ते 2010 तक 7157 हो गई। इन नियंत्रित मण्डियों से कृषकों के साथ-साथ उपभोक्ताओं को भी लाभ होता है।

म.प्र. में रतलाम जिले मे कृषि विपणन समितियाँ

तहसील सैलाना	तहसील आलोट	तहसील रतलाम	तहसील बजना	तहसील जवरा
3-3	3-3	3-3	3-3	3-3
ग्राम पंचायत	ग्राम पंचायत	ग्राम पंचायत	ग्राम पंचायत	ग्राम पंचायत
प्रत्येक ग्राम पंचायत 20-20	प्रत्येक ग्राम पंचायत 20-20	प्रत्येक ग्राम पंचायत 20-20	प्रत्येक ग्राम पंचायत 20-20	प्रत्येक ग्राम पंचायत 20-20
उत्तरदाताओं का सर्वेक्षण 60	उत्तरदाताओं का सर्वेक्षण 60	उत्तरदाताओं का सर्वेक्षण 60	उत्तरदाताओं का सर्वेक्षण 60	उत्तरदाताओं का सर्वेक्षण 60

मध्यप्रदेश में कृषि उपज मण्डी समितियों का आर्थिक विकास रतलाम जिले के विशेष संदर्भ में किया गया है। रतलाम जिले में कृषि उपज मण्डी व मण्डी समितियों का अध्ययन करना, कृषि उपज मण्डी समितियों का तकनीकी एवं उसके प्रभावों का अध्ययन करना, कृषकों को सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से लोगों का कृषि उपज मण्डी समितियों का अध्ययन सरकार द्वारा चलाई गई कृषि विकास योजनाओं का मूल्यांकन किया गया है। तथा योजनाओं का क्रियान्वयन व लाभ लेने में आने वाली समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है।निरीक्षण प्रविधि प्राथमिक समंकों के संग्रहण की प्रत्यक्ष प्रविधि है। जिनें हम हमारी आँखों से देख सकते है। क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष रूप से देख कर विश्वास किया गया है। अत: शोध प्रविधि विश्वसनीय आंकड़ों के संकलन में सहायक है जिससे शोध हेतु अनुसंधान क्षेत्र में जाना तथा शोध कार्य सम्बन्धित समस्याओं के तथ्यों की निरीक्षण करना और समंकों का संकलन करना आता है।

मध्यप्रदेश एवं कृषि विपणन बोर्ड- म.प्र. के विभाजन के बाद 2000 में नवीन म.प्र. के जबलपुर संभाग में सर्वाधिक 328 हाट बाजार है, जबकि सबसे कम 81 रीवा संभाग में क्रियाशील है। ग्वालियर संभाग में वर्ष 1990-91 में 109 हाट बाजार थे जो वर्ष 2000 में 168 हाट बाजार क्रियाशील हो गए। भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रधानता कृषि पर निर्भर करती है और अधिकाधिक कृषि उत्पादन पर जोर दिया जाता है। अधिक कृषि उत्पादन की सफलता बहुत हद तक कृषि उपज के समुचित विपणन पर तथा किसी प्रकार का शोषण न होने देने पर अवलम्बित है। अतएव यह आवश्यक है कि एक ऐसे मशीनरी की रचना की जाय जो कृषि उपज के विपणन का विनियमन दक्षतापूर्वक कर सके तथा वह यह सुनिश्चित कर सके कि खेतिहरों को अधिक अच्छी तथा लाभ वाली कीमतें प्राप्त हो।

मध्यप्रदेश एग्रीकल्चर प्रोड्यूस मार्केट्स एक्ट क्रमाक 19/1960 मध्यप्रदेश में 15 अक्टूबर 1961 से लागू रहा और सन् 1972 तक उस कानून को संशोधित करने के बारह वर्षों की अवधि में कृषि मंडी समितियों की संख्या 87 से बढ़कर 230 हो गई। क्रमांक 19/1960 के कानून के क्रियान्वयन से अनेक कमियाँ उजागर हुई और यह आवश्यक हुआ कि उन कमियों को दूर कर कृषकों तथा व्यापारियों को समुचित लाभ पहुँचाने का ध्यान रखते हुए मंडी समितियों के कार्य के दक्षतापूर्वक संचालन के लिए कानून का पुनर्विलोकन किया जाय। इस हेतु श्री मुश्रान की अध्यक्षता में सन 1965 में नियुक्त समिति में विधान मण्डल सभा के सदस्यों तथा मंडी समितियों के अध्यक्षों को

शामिल किया गया। इस समिति द्वारा की गई सिफारिशों तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त सुझावों के प्रकाश में कानून को संशोधित किये जाने का विनिश्चय हुआ। इसके पालन में पुनरीक्षित एक विधेयक सितम्बर सन 1970 में पेश हुआ। उस पर प्रवर समिति की रिपोर्ट 21 सितम्बर 1971 को पेश हुई और उस पर विचार हुआ। किसानों का कृषि उपज मंडी समितियों में उचित प्रतिनिधित्व हो और वे उसकी कार्यवाही में प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लेकर शोषण से मुक्त हो सके। किसानों को उनके उत्पादन को बाजार में उपलब्ध कराया जा सें जिसमें वे अपना माल बेच सकें और उनके उत्पादन का उन्हें उचित मूल्य मिल सकें अतः कृषि उपज मंडी पर कुशल नियंत्रण प्रशासन एवं सर्वांगीण विकास हेतु म.प्र. राज्य कृषि बोड्र की आवश्यकता प्रतीत हुई।

सहकारी विपणन समितियों के लाभ- पश्चिम देशों में सहकारी विपणन बहुत ही सफल हुआ है। दुग्ध पदार्थ के सहकारी विपणन के लिए डेनमार्क विश्व में प्रसिद्ध है। सहकारी आधार पर कृषि विपणन के अनेक लाभ है, उनमें मुख्य है–

1. विपणन समिति वैयक्तिक सौदा शान्ति का प्रति स्थापना सामूहिक सौदा शक्ति द्वारा करती है। किसान स्वयं निर्बल है परन्तु विपणन समिति बलवान होती है।
2. यह समिति किसानों को अग्रिम देती हे। और उन्हें अच्छी कीमतों की प्रतीक्षा करने के योग बनाती है। इसके अतिरिक्त यह उन्हें उसकी अन्य आवश्यकताओं के लिए भी ऋण देती है।
3. समिति को अपने गोदान और भण्डार गृह भी होते हैं। इस प्रकार यह चूहों, चींटियों और नमी से खराब हो जाने वाली फसल को बचाती है।
4. यह तेज और सस्ते परिवहन का प्रबन्ध भी करती है। जो कई बार तो यह अपने वाहनों की व्यवस्था करती है।
5. यह किसानों को वर्गीकरण और मानकीकृत वस्तुओं के उत्पादन के लिए प्रोत्साहन देती है। और इन्हें अपनी उपज में मिलावट करने से रोकती है।
6. यह भण्डारण की मात्रा का नियन्त्रण करती है और इस प्रकार कीमतों को प्रभावित करती है।
7. यह बहुत से बिचौलियों को भी हटा देती है और इस प्रकार बहुत सा लाभ उनकी उपेक्षा किसान को प्राप्त होता है।
8. किसानों की उपज को बेचने के अतिरिक्त यह उनको बीज, उर्वरक, उपकरण आदि जैसी अनिवार्य वस्तुएं उपलब्ध कराती है।
9. अतः सहकारी विपणन समिति ग्रामीण संचार प्रणाली को पुनः व्यवसिथत करने की सर्वोत्तम पद्धति है।

सहकारी विपणन में सुधार का क्षेत्र- सहकारी विपणन समितियों के विकास के लिए काफी बड़ा क्षेत्र उपलब्ध है। सर्वप्रथम उच्चतर खेती और विपणन के समायोजन की आवश्यकता है। आज यह प्रयास किया जाता है कि ऐसी समितियां कायम की जाए जो इन तीनों सेवाओं को एक साथ उपलब्ध कराए।सहकारी विपणन समितियों को ग्रामीण क्षेत्रों तथा मण्डियों में अपने गोदाम और भण्डारण कायम करने के लिए भी सहायता देनी चाहिए। यह सरकार द्वारा अनुदान और अर्थसाध्य देकर भी लिया जा सकता है या स्टेट

बैंक या रिजर्व बैंक द्वारा सस्ती वित्त-व्यवस्था द्वारा ही हो सकता है। सहकारी विपणन समितियों का कार्य क्षेत्र बढ़कर इनमें बहुत से ग्राम शामिल कर लेने चाहिएं ताकि ये किसानों के माल का अच्छी प्रकार क्रय-विक्रय कर सकें। इस प्रकार समिति अपने प्रबन्ध कार्य के लिए योग्य व्यक्तियों को भी लगा सकती है। सहकारी विपणन समितियों के लिए कृषि उत्पादनों अर्थात उर्वरक, बीजों, कृषि मशीनरी और औजार, कीटनाशकों आदि के क्रय-विक्रय का बहुत बड़ा क्षेत्र उपलब्ध है। देश में कुल उर्वरक के वितरण का लगभग 47 प्रतिशत सहकारी विपणन समितियों द्वारा बेचा जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. मिश्र जय प्रकाश, 2004, कृषि अर्थशास्त्र साहित्य भवन आगरा
2. केडिया, ओंकार 2003, कृषि विकास की कुंजी, योजना सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय पटियाला हाऊस, नई दिल्ली
3. यादव सत्यभान, 2001, कृषि विपणन प्रभावी व्यवस्था की आवश्यकता, कुरूक्षेत्र सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय पटियाला हाऊस, नई दिल्ली
4. यादव सुबह सिंह, 1992, कृषि अर्थव्यवस्था, रावण पब्लिकेशंस जयपुर
5. जैन, हेमचन्द्र 1976, कृषि वित्त सिद्धांत एवं व्यवहार मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल (म.प्र.)
6. कौसन रीमा, कन्हैया लाल, 1974, आर्थिक समीक्षा मध्य प्रदेश संदेश जनसम्पर्क संचालनालय जन सम्पर्क भवन, बाण गंगा भोपाल।
7. मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में औद्योगिकरण का अध्ययन, जय प्रकाश पाटीदार।
8. मध्य प्रदेश विस्तृत अध्ययन पूर्णेन्द्र कुमार।

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

कृषि विज्ञान केन्द्र के खाद्‌य प्रसंस्करण एवं मूल्यसंवर्धन संबंधी तकनीकी हस्तान्तरण का अध्ययन

•विनोद शंकर सिंह
•• संजय तिवारी
•••आदित्य तिवारी

सारांश- केवीके लाभकारी प्रभावों के साथ क्षेत्र स्तर पर नई तकनीक को स्थानांतरित करने में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। उनके पास बेहतर तकनीकी विशेषज्ञता और प्रदर्शन इकाइयां होने के कारण अन्य सेवा प्रदाताओं की तुलना में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को बढ़ावा मिल रहा है।केवीके के मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण से लगभग अधिकांश किसानों ने अपने कृषि पैटर्न को संशोधित किया है जो फसलों के विविधीकरण और फसल पैटर्न में बदलाव, बीज रोपण तकनीक, उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग, प्रयुक्त मशीनरी में परिवर्तन और पानी के उपयोग के पैटर्न से संबंधित थे। किसानों द्वारा अपनाई गई तकनीकों के परिणामस्वरूप उच्च उत्पादकता के साथ आय बढ़ी है इसके साथ कठिन परिश्रम में कमी आई है।राज्य सरकार के अधिकारियों, गैर सरकारी संगठनों, साथी किसानों, शिक्षाविदों और उद्योग कर्मियों आदि की बातचीत ने किसानों को कृषि में नई तकनीक और विकास के बारे में कुछ हद तक जागरूक किया है। हालांकि, केवीके के हस्तक्षेप से नई तकनीक को अपनाने, बेहतर उत्पादन और आय में बहुत अधिक वृद्धि हुई है परन्तु हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि स्थानीय जरूरतों के अनुसार अधिक प्रभावी और कुशल खाद्‌य प्रसंस्करण एवं मूल्यसंबंर्धन संबंधित तकनीकी हस्तांतरण की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द - तकनीक, तकनीकी विशेषज्ञता, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, परिवर्तन

देश में कृषि क्षेत्र में कार्यरत आधे कार्यबल के साथ, कृषि में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका न केवल देश की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में सहायक है तथापि कृषकों को प्रतिस्पर्धा में आगे रखने तथा खाद्य पदार्थों की निरन्तर वृद्धि के लिए भी प्रासंगिक है। कृषि विकास के लिये किसानों के पास अत्याधुनिक तकनीकों और संबंधित जानकारी तक पहुंच होनी चाहिए। इसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये भारत सरकार ने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के माध्यम से देश भर में कृषि विज्ञान केंद्रों

• एसोसिएट प्रोफेसर (समाज कार्य),कला संकाय, म.गाँ.चि.ग्रा.वि.वि.चित्रकूट, सतना(म.प्र.)
•• शोध छात्र, समाज कार्य, म.गाँ.चि.ग्रा.वि.वि.,चित्रकूट, सतना,(म.प्र.)
•••एम.एस-सी. (कृषि) एग्रोनॉमी, अंतिम वर्ष, म.गाँ.चि.ग्रा.वि.वि.,चित्रकूट, सतना,(म.प्र.)

(केवीके) की स्थापित की है, जिसका उद्देश्य प्रौद्योगिकी मूल्यांकन और शोधन, ज्ञान प्रसार और महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करना है। प्रत्येक केवीके में वैज्ञानिक सलाहकार समिति का प्रावधान है, इस समिति का कार्य वार्षिक तकनीकी कार्यक्रम के निर्माण में केवीके को सलाह देना और प्रदर्शन अनिवार्य गतिविधियों की समीक्षा करना है। केवीके कृषक समुदाय की जरूरतों के आधार पर विभिन्न तकनीकी हस्तक्षेपों को लागू कर करते हैं। शिक्षा आयोग (1964-66) की सिफारिश और योजना आयोग और अंतर-मंत्रालयी समिति की चर्चा के साथ-साथ 1973 में आईसीएआर द्वारा नियुक्त डॉ. मोहन सिंह मेहता की अध्यक्षता वाली समिति की सिफारिश पर कृषि विज्ञान केंद्र(कृषि) की स्थापना का विचार विकसित किया गया था। पहला केवीके, एक पायलट आधार पर, 1974 में तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर के प्रशासनिक नियंत्रण में पांडिचेरी में स्थापित किया गया था। इसके अलावा 1976-77 में, योजना आयोग ने पांचवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 18 केवीके स्थापित करने के लिए आईसीएआर के प्रस्ताव को मंजूरी दी।[1] वर्तमान में देश में 721 केवीके स्थापित हैं। परिणामस्वरूप, बढ़ती जनसंख्या के बावजूद महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में वृद्धि हुई है। खाद्य सुरक्षा राष्ट्रीय संप्रभुता से जुड़ी हुई है, इस प्रकार, कृषि क्षेत्र में राष्ट्रीय सरोकार को बनाए रखने के लिए ताकत और दृष्टि हासिल करनी होगी। किसानों का ज्ञान और प्रौद्योगिकी सशक्तिकरण खाद्य सुरक्षा हासिल करने की कुंजी है।

किसानों की आय दोगुनी करने के वर्तमान प्रधानमंत्री के आह्वान पर खाद्य प्रसंस्करण भारत का जवाब हो सकता है। यह महत्वपूर्ण क्षेत्र कृषि, विनिर्माण क्षेत्र और अंतिम उपभोक्ताओं को जोड़ता है, बुनियादी ढांचे के निर्माण के माध्यम से कटाई के बाद की बर्बादी को कम करता है और प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों के माध्यम से कृषि उत्पादों के लिए महत्वपूर्ण मूल्य जोड़ता है। अतिरिक्त मूल्य, जब यह मूल्य श्रृंखला के माध्यम से किसानों के पास वापस प्रवाहित होता है और साथ ही अपव्यय की रोकथाम के माध्यम से प्राप्त मूल्य, किसानों की आय में महत्वपूर्ण वृद्धि कर सकता है। कृषि के पांच साल के सीएजीआर 3.4 प्रतिशत की तुलना में यह क्षेत्र भी 9.5 प्रतिशत के तेज सीएजीआर से बढ़ा है। भारत में केपीएमजी ने अपनी हालिया रिपोर्ट में-"भारतीय खाद्य प्रसंस्करण उद्योग-COVID-19 महामारी के बाद के विकास के अवसर" का अनुमान है कि, आगे जाकर, यह क्षेत्र 2025 तक 15 प्रतिशत की सीएजीआर पर 535 बिलियन अमरीकी डालर तक पहुंच जाएगा, जो कि महत्वपूर्ण क्षमता को इंगित करता है। इस प्रकार, प्रसंस्कण संभावित रूप से समाधान हो सकता है जिसे भारत को किसान की आय को दोगुना करने की आवश्यकता है।

विश्व स्तर पर सभी प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में उच्च स्तर के प्रसंस्करण के साथ उन्नत खाद्य प्रसंस्करण पारिस्थितिकी तंत्र है और कृषि में प्रति कार्यकर्ता उच्च मूल्य वर्धित है। भारत, कई कृषि वस्तुओं के उत्पादन में अग्रणी होने के बावजूद, कृषि में प्रति श्रमिक मूल्य वर्धित मूल्य के मामले में कई देशों से पीछे है।[2]

शोध प्रविधि- प्रस्तुत अध्ययन हेतु सतना जिले के मझगवाँ विकासखण्ड को उद्देश्यपूर्ण विधि से चुना गया है तथा तथ्यों के संकलन हेतु मझगवाँ ब्लाक स्थिति कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा 30 किलोमीटर दूरी में स्थित ऐसे गाँव जहाँ पर कृषि विज्ञान केन्द्र के माध्यम से प्रशिक्षण आदि उत्तम कार्य किया है, उनकी सूची तैयार कर दैवनिदर्शन विधि से 8 गाँवों का चयन किया गया है।

अध्ययन को गहन एवं वैज्ञानिक बनाने की दृष्टि से अनुसंधान की अनुसूची साक्षात्कार प्रविधि का साहारा लिया गया। इसके अन्तर्गत शोध छात्र ने अध्ययन क्षेत्र के किसानों से प्रश्न पूंछकर अध्ययन विषय से संबंधित तथ्यों को संकलित किया। साक्षात्कार अनूसूची से प्राप्त आंकड़ों का वर्गीकरण एवं सारणीयन कर अन्तः संबंधात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया।चयनित गाँवों से अध्ययन हेतु प्रशिक्षित एवं अप्रक्षित दोनों प्रकार के क्रमशः 160 एवं 160 कुल 320 किसान उत्तरदाताओं का चयन अंतिम रूप से दैवनिदर्शन पद्धति द्वारा किया गया।

सांख्यिकीय विधियाँ -

मध्यमान- प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदाताओं से प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों की सहायता से कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किसानों के विकास के लिए किये गये प्रयासों एवं किसानों के जीवन की गुणवत्ता का अध्ययन करने के हेतु मध्यमान की गणना के लिए निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया गया है।

सूत्र-

$$M = AM + \left(\frac{\Sigma Fd}{N}\right) x\ i$$

यहाँ

M = मध्यमान

AM = कल्पित माध्य

ΣFd = कोडर विचलन(क)का आवृत्तियों के गुणनफलों का योग

i = वर्गान्तर

N = इकाइयों की संख्या

प्रमाणिक विचलन (मानक विचलन)- प्रस्तुत शोध पत्र में मध्यमान की भाँति ही उपकरणों द्वारा प्राप्त आंकड़ों के प्रमाणिक विचलन की गणना की गई है। प्रमाणिक विचलन (मानक विचलन) की गणना के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया गया है। सूत्र

यहाँ

$$S.D. = i\sqrt{\frac{\Sigma Fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma Fd}{N}\right)^2}$$

S.D. = प्रमाणिक विचलन

i = वर्ग का अन्तर

ΣFd2 = कोडर विचलन (क) के आवृत्तियों के गुणनफलों का योग

ΣFd = आवृत्तियों के गुणनफलों का योग

N = आवृत्तियों का योग

प्रतिशत- प्रस्तुत शोध में प्रदत्तों की गणना हेतु प्रतिशत का प्रयोग किया गया है। जिसका सूत्र इस प्रकार है -

$$\text{प्रतिशत} = \frac{\text{प्राप्तांक संख्या}}{\text{पूर्णांक संख्या}} \times 100$$

लीकर्ट स्केलिंग तकनीक-आँकड़े एवं उनके अभिमत का वर्गीकरण लीकर्ट टेक्निक के प्रयोग से किया गया है। इस तकनीकी में पंच स्तरीय मापनी विधा का प्रयोग कर उत्तरदाताओं के समक्ष उठाये गये प्रश्नों के संदर्भ में उनके मानसिक द्वंदता के अंतिम रूप से निर्धारण करने के लिये इस विधा का प्रयोग किया गया है।

तालिका क्रमांक 01

खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्यसंवर्धन संबंधित तकनीकी हस्तान्तरण का अभिमत

N=320

क.	अभिमत	पूर्णतः सहमत		सहमत		निरपेक्ष		पूर्णतः असहमत		असहमत		कुल सहमत		माध्य स्कोर		माध्य विचलन (SD)	
		[illegible]	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित
1	खाद्य प्रसंस्करण	70 (43.75)	55 (34.38)	30 (18.75)	45 (28.13)	8 (5.00)	13 (8.13)	24 (15.00)	22 (13.75)	28 (17.50)	25 (15.63)	100 (62.50)	100 (62.50)	3.56	3.52	3.612	2.693
2	मूल्यसंवर्धन एवं परिश्रण में कमी	65 (40.63)	62 (38.75)	42 (26.25)	43 (26.88)	7 (4.38)	9 (5.63)	27 (16.88)	28 (17.50)	19 (11.88)	18 (11.25)	107 (66.88)	105 (65.63)	3.67	3.64	3.391	3.130
3	फल व सब्जियों का प्रसंस्करण	55 (34.38)	50 (31.25)	45 (28.13)	38 (23.75)	10 (6.25)	11 (6.88)	24 (15.00)	33 (20.63)	26 (16.25)	28 (17.50)	100 (62.50)	88 (55.00)	3.49	3.31	2.791	2.238
4	रोजगार में वृद्धि	60 (37.50)	49 (30.63)	29 (18.13)	38 (23.75)	9 (5.63)	12 (7.50)	36 (22.50)	32 (20.00)	26 (16.25)	29 (18.13)	89 (55.63)	87 (54.38)	3.38	3.29	2.891	2.128
5	अपने कृषि पैटर्न को संशोधित किया है।	44 (27.50)	46 (28.75)	55 (34.38)	47 (29.38)	16 (10.00)	10 (6.25)	16 (10.00)	24 (15.00)	29 (18.13)	33 (20.63)	99 (61.88)	93 (58.13)	3.43 3.56	3.31 3.52	2.722	2.461

नोट-कोष्टक में दर्शाये गये अंक प्रतिशत में हैं।

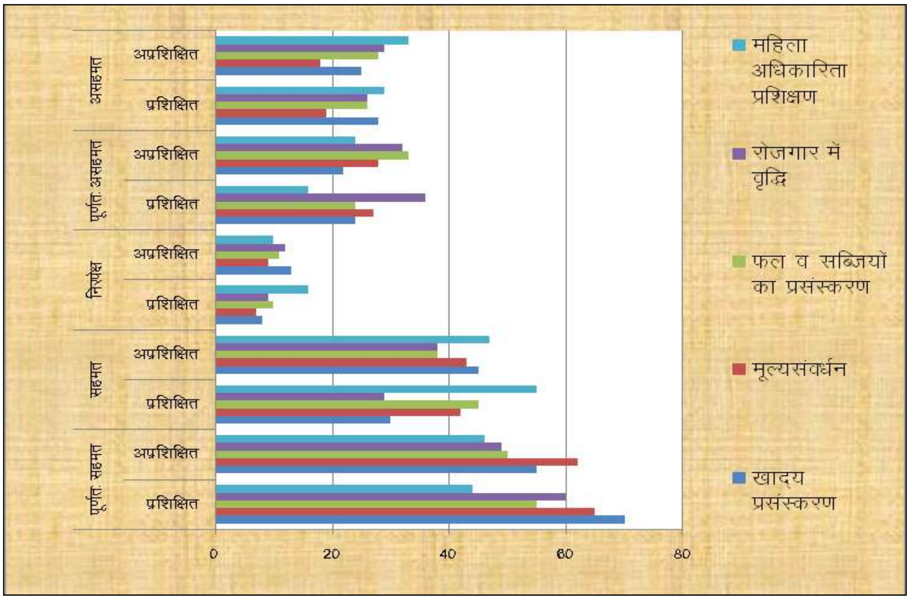

चित्र क्र. 01 खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्यसंवर्धन संबंधित तकनीकी हस्तान्तरण का अभिमत

प्रसंस्करण एवं मूल्यसंवर्धन संबंधित तकनीकी हस्तान्तरण संबंधी अभिमत हेतु तालिका में 5 प्रमुख आयामों को केन्द्र में रखकर तथ्यों का संग्रहण एवं अभिमत प्राप्त किया गया है।

तालिका के अनुसार प्राप्त माध्य स्कोर क्रमशः प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित वर्ग का सबसे अधिक 3.67 एवं 3.64 मूल्यवर्धन के पक्ष में प्राप्त किया गया है। जिसमें प्रशिक्षित वर्ग के कृषक पूर्ण सहमत में 40.63 प्रतिशत सहमत में 26.25 एवं निरपेक्ष में 4.38 प्रतिश पाये गये हैं अप्रशिक्षित वर्ग में 38.75, 26.88 एवं 5.63 प्रशित क्रमशः पाये गये हैं। इस प्रकार प्रशिक्षित वर्ग में कुल सहमत 66.88 एवं प्रशिक्षित में 65.63 प्रतिशत हैं।प्रशिक्षित कृषक कुल सहमत 62.50 प्रतिशत यह मानते हैं कि खाद्य प्रसंस्करण का तकनीकी हस्तांतरण कृषकों की आय वृद्धि मुनाफे का सौदा है। इस कथन के पक्ष में अप्रशिक्षित के कुल 62.50 प्रशित उत्तरदाता अपना मत प्रकट किया है।

फल व सब्जियों का प्रसंस्करण संबंधित प्रश्न के उत्तर में दोनों वर्ग के क्रमशः 62.50 एवं 55.00 प्रशित उत्तरदाता यह स्वीकार करते है कि फल व सब्जियों का प्रसंस्करण आवश्यक है जिसकों कृषि विज्ञान केन्द्र की पहल से तथा तकनकी हस्तांतरण के माध्यम से कृषक अपना आय को बढ़ा सकते है तथा सफल खेती कर सकते है।3.38 एवं 3.29 माध्य सकोर प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित वर्ग में रोजगार में वृद्धि संबंधी कथन में प्राप्त किया गया है। उत्तरदाता खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्यसंवर्धन संबंधित तकनीकी हस्तान्तरण रोजगार में वृद्धि का केन्द्र मानते हैं।

महिला अधिकारिता प्रशिक्षिण संबंधी कथन में प्रशिक्षित कृषक वर्ग के 27.50 पूर्ण सहमत, 34.38 प्रतिशत सहमत, 10.00 प्रतिशत निरपेक्ष, 10.00 प्रतिशत पूर्ण असहमत, 18.13 प्रतिशत असहमत के उत्तर प्राप्त किये गये। जबकि अप्रशिक्षित वर्ग के क्रमशः पूर्ण सहमत, सहमत, निरपेक्ष पूर्ण असहमत एवं असहमत उत्तरदाताओं का प्रतिशत 28.75, 29.38, 6.25, 15.00 एवं 20.63 के साथ कुल सहमत उत्तरदाता 58. 13 प्रतिशत पाये गये हैं। दोनों का वर्गों का माध्य स्कोर क्रमशः 3.43 एवं 3.31 है जो कथन की प्रमाणित को स्वयं सिद्ध करता है। महिला अधिकारिता प्रशिक्षण समाज के लिये सामाजिक आर्थिक विकास का अहम बिन्दु है। घर में महिलायें खाली रहती है तो उनका समय बर्बाद हाने के साथ उनमें हीनता की भावना पैदा होती है तथा आय प्राप्त न होने से उनकी आवश्यता की पूर्ति में भी कठिनाई होती है साथ ही उनको अपने परिवार के मुखिया पर पूर्णतः आश्रित रहना पड़ता है कि खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्यसंवर्धन संबंधित तकनीकी हस्तान्तरण के माध्यम से महिलाओं को प्रशिक्षित कर उन्हें सशक्त कर समाज के सबसे बड़े वर्ग को विकास की धुरी से जोड़ा जा सकता है।

अध्ययन में पाया गया कि खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्यसंवर्धन संबंधित तकनीकी हस्तान्तरण के माध्यम से अल्प समय वाले अथवा शीघ्रता से सड़ने गलने वाले या खराब होने कृषि उत्पाद, डेयरी उत्पात एवं फल-सब्जियाँ आदि को खराब करने वाले कारको को नियंत्रित एवं प्रतिबंधित करके जीवन बढ़ाकर लंबे समय तक संरक्षित रखा जा सकता है। प्रसंस्करण तकनीक का प्रयोग कर कृषि संबंधी उत्पादों के जीवाणु एवं कवक को नष्ट कर उनके प्रजनन व विकास को नियंत्रित किया जा सकता है।

प्रसंस्करण तकनीकी के प्रयोग से खाद्य उत्पाद को विभिन्न प्रकार से तैयार कर तथा व्यवसायीकरण कर मूल्य में वृद्धि किया जा सकता है। रासायनिक तथा भौतिक अवसंरचना में परिवर्तन कर कृषि उत्पाद यथा आचार, मुरब्बा, जेम, सॉस, जैली तथा

सब्जियों व फलों को मूल रूप में नमक/मीठे पानी में कैनिंग प्रणाली द्वारा अथवा इनका जूस/रस निकाल कर वैक्यूम/टेट्रा पैकिंग द्वारा दीर्घकाल तक संरक्षित रखा जाता है एवं खाद्य पदार्थ को उपचार के पश्चात सीलबंद अथवा पैकिंग की कर बिक्री कर अपने उत्पादों की सही कीमत प्राप्त कर किसान अपनी आय को दुगुना कर पाते है एवं संरक्षित खाद्य पदार्थों को जीवाणुओं द्वारा पुन: दूषित होने से बचाया जा सकता है।

अध्ययन में पाया गया कि केवीके लाभकारी प्रभावों के साथ क्षेत्र स्तर पर नई तकनीक को स्थानांतरित करने में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। उनके पास बेहतर तकनीकी विशेषज्ञता और प्रदर्शन इकाइयां होने के कारण अन्य सेवा प्रदाताओं की तुलना में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को बढ़ावा मिल रहा है। केवीके के मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण से लगभग अधिकांश किसानों ने अपने कृषि पैटर्न को संशोधित किया है जो फसलों के विविधीकरण और फसल पैटर्न में बदलाव, बीज रोपण तकनीक, उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग, प्रयुक्त मशीनरी में परिवर्तन और पानी के उपयोग के पैटर्न से संबंधित थे। किसानों द्वारा अपनाई गई तकनीकों के परिणामस्वरूप उच्च उत्पादकता के साथ आय बढ़ी है इसके साथ कठिन परिश्रम में कमी आई है।

राज्य सरकार के अधिकारियों, गैर सरकारी संगठनों, साथी किसानों, शिक्षाविदों और उद्योग कर्मियों आदि की बातचीत ने किसानों को कृषि में नई तकनीक और विकास के बारे में कुछ हद तक जागरूक किया है। हालांकि, केवीके के हस्तक्षेप से, नई तकनीक को अपनाने, बेहतर उत्पादन और आय में बहुत अधिक वृद्धि हुई है परन्तु हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि स्थानीय जरूरतों के अनुसार अधिक प्रभावी और कुशलखाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्यसंबंर्धन संबंधित तकनीकी हस्तांतरण की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. K.M.Singh, Pushpa Singh, Brajesh Shahi and Dibyanshu Shekha (posted - 2020), Role of Krishi Vigyan Kendras in Agricultural Extension: An Overview, mpra.ub.uni-uenchen.de
2. Mohit bisen (2021), Food processing impact on doubling farmers' income, oneline on https://kpmg/in/en/home/insights
3. Supe, S.V. (1969). Factor Related to different degrees of Rationality in decision-making Among Farmers, Unpublished Ph.D. Thesis Indian Agricultural research institute. New Delhi.
4. Thankar. K.A. (1979). Attitude of contact farmers towards new agricultural extension programme in panchayat samities Dudu and Sambhar lake of Jaipur District. M.Sc. Thesis College of Agril jobner PP 110-112.
5. Trivedi, G. (1963) Measurement analysis of Socioeconomic status of Rural families unpublished Ph.D. Thesis, Indian Agricultural research Institute, New Delhi-110012.
6. Vijayaraghyan P. And Sonasundarm, D. (1979) Factors associated with knowledge of the high yielding varrieties of paddy by marginal farmers.

Indian journal of Extension Education Vo. XV, No. 1 & 2 June PP 77-81.

7. Vijay Pratap Yadav 2014) A critical Study of Functioning of Crishi Vigyan Kendra, Basti and Its imapact on Adoption of Agricultural Technology, Thesis, Amar singh PG college Lakhaoti, Bulandshahar, UP, page 238
8. Workshop on farmers Training and education (1967). Workshop on Farmers' Education. Group (iv) Selection and Training of Staff, New Delhi, Directorate of Extension, Ministry of Food Agriculture community Development

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

पान उपज एवं विपणन व्यवस्थाः छतरपुर जिले के विशेष संदर्भ में

• नीना चौरसिया

सारांश- पान की उपज धीरे धीरे कम हो रही है परन्तु पुराने तकनीक के साथ नवीन तकनीक को बढ़ावा मिल रहा है। शासन द्वारा भी पान के किसानों को सापेक्ष सुविधा एवं अपेक्षित सहयोग प्राप्त नहीं हो पा रहा है साथ ही पानी का अभाव भी किसानां की समस्या का कारण है। पान उपज हेतु अधिकांश कृषक अधिकतर परम्परागत तरीकों का प्रयोग करते हैं। पान अनुसंधान केन्द्रों की भूमिका एवं सहयोग बहुत कम है साथ ही सबसे बड़ी समस्या यह है कि पान की खेती को कृषि का दर्जा प्राप्त नहीं है। पान के विभिन्न प्रकारों की पैदावार में कमी है। पान के विपणन का स्थान ज्यादातर स्थानीय मण्डी में होता है।

मुख्य शब्द - तकनीक, सापेक्ष सुविधा, सहयोग, विपणन

पान एक द्विबीजपत्री बेल है, पाइपर बीटल इसका लेटिन नाम है, और यह पाइपेरेसी कुल का सदस्य है। भारत में पान के उद्गम का स्रोत तथा खेती कब शुरू हुई इसका अनुमान कठिन है फिर भी ऐसा सिद्ध हुआ कि यह भारत के पश्चिमी भाग में सर्वप्रथम दक्षिण एशिया से आया है। पान की व्यासायिक खेती 700 पूर्वी से 1300 पूर्वी देशान्तर और 120 दक्षिण तता 250 उत्तर अक्षांश के बीच की जाती है। पान के लिये उष्णकटिबन्धीय जलवायु जहाँ विस्तृत छायादार और नम वातावरण उपलब्ध होना चाहिये।

ताम्बूल कटुतिक्तमिश्रधुरय क्षार कषाय यन्वित्सखे
त्रयोदशे गुणाः स्वर्गेव्यापी दुर्लभाः।

पान कटु कडुवा, तीखा, मधुर और कसैलेपन (पाँच रसों) से युक्त होता है। पान खाने से वायु नही बढ़ता, कफ मिटता है, कीटाणु मर जाते हैं, मुँह से दुर्गन्ध नही आती, मुख की शोभा बढ़ती है मुँह का मैल दूर होता है और कामाग्नि बढ़ती है। ये पान महत्वपूर्ण गुण है। वात्सायन के कामसूत्र व रघुवंश आदि ग्रंथों में ताम्बूल शब्द का प्रयोग है कथा सरित्सागर तथा वृहत्कथा श्लोक मे उल्लेख है कि कौशाम्बी नरेश उदयन ने ताम्बूल लता को नागों से दहेज में प्राप्त किया था। जगनिक रचित लोक काव्य आल्हा खण्ड के अनुसार विख्यात वीर आल्हा ऊदल युद्ध संकल्पों हेतु पान का बीड़ा उठाकर दृढ़ -प्रतिज्ञ होते थे। महोबा में पान की खेती का श्रेय चन्देल शासकों को जाता है। आइने अकबरी में सूबा इलाहाबाद के अन्तर्गत महोबा मुहाल से भू-राजस्व के रूप में मुगल दरबार को पान प्राप्त होने का उल्लेख है।

• छतरपुर , मध्यप्रदेश

भारत में पान उपज- कुछ इलाकों में यह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि खाद्य या दूसरी नकदी फसलें। भारत वर्ष मे लगभग 40000 हे0 भूमि में उगाया जाता है अधिकारिक सूत्रों के अनुसार विभिन्न प्रान्तों में निम्नलिखित क्षेत्रफल में उगाया जाता है। हमारे प्रमुख कृषि उद्योगों में पान की खेती का एक प्रमुख महत्व है।

राज्य	अनुमानित क्षेत्रफल (हे.) में
आन्ध्र प्रदेश	2900
असम	1400
बिहार	3150
कर्नाटक	8750
केरल	3000
महाराष्ट्र	2700
मध्य प्रदेश	1250
उड़ीसा	5000
तमिलनाडु	5500
पश्चिमी बंगाल	3000
उत्तर प्रदेश	2000
गुजरात	100
राजस्थान	50

सभी प्रदेशों में पान विभिन्न जलवायु के कारण तरह-तरह से उगाया जाता है, उत्तर प्रदेश, बंगाल उड़ीसा में पान चारों तरफ से बन्द बरेजों मे उगाया है। ताकि अधिक नमी व कम तापमान की व्यवस्था की जा सके, जो पान के लिये जरूरी है। इसके विपरीत तमिलनाडु केरल व अन्य दक्षिणी भागों में पान खुले बरेजों मे अगस्त (सेस्बेनिया ग्रेण्डलोरा) के पौधों के सहारे उगाया जाता है। उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य होने के साथ ही औद्यानिक फसलों में पान उत्पादन में अपना एक विशेष स्थान रखता है जिसमें महोबा पान उत्पादन के क्षेत्र में पहला स्थान रखता है।

महोबा में पान की खेती की शुरूआत नवीं शताब्दी में चंदेल शासकों के समय हुई थी। पूर्व में यहाँ लगभग 500-600 एकड़ क्षेत्रफल में पान की खेती हो रही थी किन्तु कई कारणों जैसे दैवीय आपदाओं, गुटखा खाने का बढ़ता प्रचलन, सिंचाई की समस्या, कच्चे माल की कमीएवं घटती मांग के कारण वर्तमान में इसका क्षेत्रफल सिमट कर रह गया है। महोबा पान की एक अच्छी मण्डी है चित्रकूट धाम मण्डल में महोबा बाँदा तथा झाँसी मण्डल में ललितपुर पान की खेती के लिये प्रसिद्ध हैं।

क्र.	जनपद	स्थान	क्षेत्रफल (एकड़ में)
1	महोबा	महोबा	100-125
2	ललितपुर	पाली	50-60
3	बाँदा	बरईमानपुर	20-35
4	कानपुर	कानपुर देहात (मालों खिरिया चौबेपुर फत्तेपुर भीतरगाँ बरईगढ़ आदि)	80-90
5	जौनपुर	बराई, महराजगंज	35-40
6	प्रतापगढ़ गौरीपुर आदि	सघईपुर कुन्दनपुर बेला	25-35
	गौरीपुर आदि	रामपुर पट्टी गौरीपुर आदि	
7	हरदोई	संडीला	30-40
8	सुल्तानपुर	भाई भट्टी जरौली राम उमरीआदि	50-60
9	रायबरेली	स्लबन	50-60
10	उत्राव	बाँगरमऊ सफीपुर बीघापुर सुमेरपुर	55-70
11	आजमगढ़	बिलारमऊ	40-50
12	लखनऊ	थ्नगोहा	80-100
13	बाराबंकी	हैदरगढ़	80-100
14	बस्ती	हरैया	100-120
15	मिर्जापुर	ओराई	80-100
16	गोरखपुर	शहजनवाँ	100-100
17	देवरिया	दोहरीघाट	40-50

प्रदेश में पान की खेती पर अनुसंधान करने तथा कृषकों को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये महोबा में वर्ष 1980-81 में एक मात्र पान प्रयोग एवं प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की गई थी।

शोध पद्धति- अध्ययन हेतु मध्यप्रदेश के छतरपुर जिला को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से चयनित किया गया। छतरपुर जिले में सात तहसील हैं, जिसमें छतरपुर, महराजपुर, नौगांव, लौड़ी, गौरिहार, राजनगर एवं बिजावर है इनमें चार तहसीलों में पान की खेती होती है। इन तहसीलों के अंतर्गत आने वाले गांवॉं से पान की खेती करने वाले 350 परिवारों को निम्नानुसार उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर चयन किया गया।

क्रमांक	तहसील	ग्राम/कस्बा	कुल खेती करने वाले परिवार	चयनित परिवार
1	महाराजपुर	महाराजपुर (अर्द्धशहरी)	360	72
2	महाराजपुर	गढ़ीमलेहरा (अर्द्धशहरी)	450	90
3	बिजावर	पिपट (ग्रामीण)	400	86
4	बिजावर	पनागर (ग्रामीण)	400	80
5	लवकुशनगर	लवकुशनगर (अर्द्धशहरी)	60	12
6	छतरपुर	निवारी (ग्रामीण)	50	10
	योग		1750	350

पान की उपज- यह देशी पौधा है डिकैन्डोल (1884) के अनुसार पान की जन्मभूमि मलाया प्रायद्वीप समूह है जहाँ लगभग 2000 वर्षो से पान उगाया जाता है।भारत में वन्य रूप में पान की पश्चिमी घाट एवं आसाम के जंगलों मे बड़े वृक्षों पर पान की बेल प्राकृतिक रूप से उगी देखी गयी। एक समय ब्रह्मजी के प्रथम यज्ञ के देवपूजन हेतु ताम्बूल की आवश्यकता हुई, जिसे दक्षिण के ब्रह्म ऋषि अपने मनोबल एवं चातुर्य से पाताल से नागदेव (ताम्बूल) लेकर आये थे साथ मे तक्षकदेव, डेढादेव और जाखदेव भी पाताललोक से आये थे, इसका प्रमाण यह है कि आज भी इन देवताओं की पूजा पान बरेजों पर समयानुसार पान कृषकों द्धारा संपन्न की जाती है।

पान का प्रभाव-

ताम्बूलं कटुतिक्तमिश्रामधुरं क्षारं कषायान्वितं,
वातघ्नं कफनाशनं कृमि हरंदौगन्हर्य दोशापहम्।,
वक्श्रास्याभरणं मलापहरणं कामाग्निसंदीपनं,
ताम्बूलस्य सखे त्रयोदश गुणाः स्वर्गेप्यभी दुर्लभाः।।

पान का हमारे सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों से घनिष्ठ संबंध रहा है। वाराहमिहिर के अनुसार पान खाने से रूप निखरता है, सौभाग्य बढ़ता है, मुख सुगन्धित होता है, शरीर में तेज व काम की वृद्धि होती है तथा कफ नष्ट होता है। एडवर्ड हैरी के अनुसार पान मस्तिष्क को शांत रखता है आमाशय की शक्ति बढ़ाता है। आयुवेदाचार्य सुश्रुत एवं चरक के अनुसार बंगला पान के सेवन से गले की खराश में आराम मिलता है और कफ दोष दूर हो जाता है। बंगला पान के डंठल के रस से शरीर के मस्सों में आराम मिलता है। पान के सेवन से पाचन क्रिया ठीक रहती है और वायुविकार नहीं होता फोड़े-फुन्सियों में पान के पत्ते को हल्का गर्म करके देशी घी लगाकर बांध लेने से फोड़ा स्वतः फूटकर ठीक हो जाता है। पान के पत्ते में कीटाणुनाशक (एण्टीसेप्टिक)

गुण होता है, इसीलिए यदि कहीं चोट लग जाये तो उस भाग पर पान के पत्ते को मसलकर लगा लेने से घाव पकता नहीं है तथा शीघ्र ठीक हो जाता है। पान के पत्ते को दूध के साथ पकाकर हिस्टीरिया (मिर्गी दोष) के रोगी को इसके द्वारा पड़ने मे आराम पहुंचाता है, लोगो को भ्रम है कि पान खाने से कैंसर होता है जबकि ऐसा नहीं है।

पान की प्रमुख जातियां- मध्यप्रदेश में पान की निम्न किस्में लगायी जाती हैं-

बंगला- बंगला पान प्रायः सभी प्रांतों मे लगाया जाता है। इनकी पत्तियों का आकार व स्वाद में परिवर्तन भी स्थान बदलने पर हो जाता है। बंगला पान की पत्ती बड़ी ह्दयाकार किनारे सपाट सतह चिकनी डंठल बड़ा एवं डंठल के पास गोलाकार कटाव रहता है, पत्तियों की शिरा नुकीली एवं छोटी होती है, पत्ती का स्वाद तीखा होता है।

बिलहरी (महोबा पान)- बिलहरी पान की पत्तियां बड़ी हदयाकार अण्डाकार पहले पतली व बाद में मोटी हो जाती है। डंठल के पास पत्ती का कटाव बंगला से कम होता है, नसों की मात्रा कम होती है, पत्ती का कोना संकरा व लम्बा होता है कभी-कभी किनारे तंरगित होते है स्वाद हल्का मीठा व रेशाहीन होता है।

कपूरी-पत्ती का आकार अण्डाकार मुलायम डंठल के पास कटाव नहीं के बराबर होता है, स्वाद में तेज रंग हल्का पीला एवं खुली जगह में भी लगाई जाती है।

कटक एवं कलकतिया- यह देखने में बंगला पान जैसा ही होता है परन्तु बंगला पान से इसका आकार बड़ा होता है एवं पतला रहता है। स्वाद में हल्की चिरपराहट लिए रहता है, बिलहरी की तुलना में रेशे अधिक होते है।

कांकेर- यह पान लम्बा बिलहरी की तरह दिखता है, परन्तु इसमें रेशे अधिक रहते है तथा यह मोटा होता है इसका स्वाद सोफिया की तरह होता है।

जिला	जिले के पान उत्पादक	किस्म
छतरपुर	महाराजपुर, बारी गढ़ीमलहरा, पिपट, बिजावर, गुलगंज पनागर वारीगढ़ दिदवारा निवारी खोंप लौड़ी	बिलहरी
ग्वालियर	बिलौआ, संदलपुर वरई आंतरी	विलहरी
मंदसौर	कुकडेश्वर परडा भानपुरा	बिलहरी बंगला बालवी
पन्ना	पटनातमोली, गंज, सलेहा, मोहेन्द्रा, नयागांव	बंगला
सतना	मैहर, झिन्ना उचेहरा अमरपाटन, सोहामल रामपुर बघेलान	बंगला कांकेर
रीवा	मेहगांव, गोविन्दगढ़ मऊगंज भीटी, वरदाही, गौरगी, पतौता	बंगला कांकेर

उपज का समय व विधि- पान का रोपण फरवरी से मार्च माह में करना उपयुक्त पाया गया है, वैसे कई स्थानों पर अक्टूबर माह में भी रोपण करते हैं। पानी की एक पत्ती जिसमें गांठ वाला टुकड़ा रहता है, वह भाग रोपण के लिए उपयुक्त होता है। सपरे में हल्की सिंचाई कर जमीन को गीला करके पान की बेल का बीजोपचार कर रोपण करते है। रोपण करने के उपरांत सूखे हुए घास को स्वच्छ पानी से गीलाकर पान की बेलों को सपरे मेंढॅक दिया जाता है, तदुपरांत हल्की सिंचाई करें, जिससे पान की पत्तियों पर गीलापन या आर्द्रता बनी रहे। सपरे के किनारे चौलाई की बोनी करना चाहिए जब चौलाई की भाजी एक माह की हो जाए तब इसे काटकर बेचने से कृषकों को पान की फसल के अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है, साथ ही भाजी लगाने से पान की पत्तियों के आसपास छाया एवं आर्द्रता बनी रहती है, जिससे पान की पत्तियों पर गर्मियों में तापमान का असर नहीं होता।

खाद-उर्वरक एवं सिंचाई- पान की खेती प्रायः जैविक कृषि पद्धति से करना चाहिए

क्योंकि इसकी पत्तियों को सीधे रूप में लोग उपयोग करते है परन्तु अधिक मात्रा में जैविक पदार्थों की उपलब्धता न होने के कारण रसायनिक खादों का उपयोग पान का अधिक उत्पादन लेने के लिए किया जाता है। इसके लिए 150-200 ग्राम नत्रजन 70-80 किग्रा. स्फुर व पोटाश प्रति हेक्टेयर फसल को देना चाहिए। किसान भाई नत्रजन को खरी के रूप मे देते है जिससे उत्पादन लागत अधिक आती है, अतः नत्रजन की आधी मात्रा रसायनिक खाद द्वारा एवं शेष मात्रा खरी के रूप में देने से उत्पादन लागत कम होने के साथ ही उत्पादन भी बढ़ता है। स्फुर व पोटाश की पूरी मात्रा पान रोषण के पूर्व मृदा में देना चाहिए। नत्रजन की मात्रा खड़ी फसल में 4-5 बार मृदा मे डालकर देना चाहिए। पान की फसल में सरसों अलसी तिली नीम करंज की खरी का उपयोग किया जाता है। खरी को डालने के पूर्व एक सत्ताह तक पानी में डालकर सड़ाया जाता है जिससे खरी में सूक्ष्मजीवों की मात्रा बढ़ जाती है मात्रा बढ़ने से पौध रोगजनक जीवाणुओं को नष्ट करने की क्षमता बढ़ जाती है, जिससे रोगों का प्रकोप कम होता है खरी डालने के बाद मिट्टी चढ़ाना अनिवार्य है, जिससे बेलो में नई जड़े सक्रिय हो जाती है और बेल की बढ़वार अधिक होती है। सिंचाई पान की फसल के लिए 80 प्रतिशत आर्द्रता बनाये रखने के लिए बेलों को ग्रीष्मकाल या गर्मी में 3 बार हल्की सिंचाई करते है। इसके बाद 2-3 दिन के अंतराल से आवश्यकतानुसार सिंचाई की जाती है वर्षा ऋतु में सिंचाई नहीं करते परन्तु पानी का निकास करना जरूरी है जिससे पानी का रूकाव (जलमग्नता) रोका जा सके।

बेल की बंधाई व पान की तुड़ाई- रोपण करने के बाद 3 या 4 पान पत्तियां निकलने के उपरांत रोपण की गई पत्ती को निकाल देना चाहिए जिसे पेड़ी या पुराना पान कहा जाता है, इससे किसान भाईयों को अपनी लागत का आधे से अधिक धन की प्राप्ति हो जाती है। जब बेल की ऊंचाई आधा मीटर से अधिक हो जाती है, तब सनोटी या बांस की कमचियों के सहारे बेल को सूखे हुए कांस के टुकड़ो के सहारे बांधा जाता है, जिससे बेल कमचियों के सहारे बढ़ने लगती है, वर्षा शुरू होने के पूर्व लगभग 70 से.मी. की ऊंचाई के पान तोड़ दिये जाते है जिससे रोग उत्पन्न होने की क्षमता कमती है और किसानों को कुछ लाभ भी प्राप्त होता है। अगस्त माह से नीचे के पान तोड़ना शुरू कर दिया जाता है और 15 दिन या 1 माह के अंतर से आवश्यकतानुसार पान की तुड़ाई की जा सकती है। बेल की अधिक बाढ़ होने पर जनवरी-फरवरी माह में वैशाखी उतारना होता है चूंकि वर्षा उपरांत घास या कांस सड़ जाने के कारण फिर से नया घास डालना आवश्यक होता है जिससे कि ठंड या पाले से फसल को बचाया जा सके, इसलिए बढ़ी हुई बेल को नीचे कर छत या मण्डप पर नया सूखा हुआ घास छाया जाता है जिससे बरेजे के तापमान में बाहर के तापमान का सीधा असर न हो एवं डंठल को नीचे डालने से नई जड़े निकलती है जिससे बेल को आवश्यक तत्व एवं बाढ़ में सहायता मिलती है पाला से बचाव के लिए पान में सिंचाई करना आवश्यक है, जिससे भूमि एवं बरेजे के वातावरण में तापमान अधिक हो जाता है।जनवरी-फरवरी में अंतिम तुड़ाई की जाती है यदि वैशाखी उतारना होता है तो बरेजे को फिर से छाया जाता है ओर बेले उतारकर लगर से बांध दिया जाता है यदि पान अच्छा है और बीच लायक है तो मार्च माह में बेलें तोड़कर शेष डंठल को जमीन में लिटा दिया जाता है और नई बेले निकलने तक बहुत कम मात्रा में सिंचाई की जाती है।

बोर्डो मिश्रण बनाने की विधि-एक बर्तन (मिट्टी के या सीमेन्ट कंकरीट) को लें उसमे 250 ग्राम नीला थोथा घोले तथा पानी 50 लीटर हो इसी प्रकार के दूसरे बर्तन में 50 लीटर पानी लेकर अनबुझा 250 ग्राम चूना घोलें। इसके बाद दोनों को तीसरे इसी प्रकार के बर्तन में मिलाकर एकत्रित करें तथा उसमें एक लोहे की छड़ या पीतल की छड़ डालकर देख लें। छड़ का रंग नहीं बदलना चाहिये अर्थात भूरी तथा लाल न हो तो समझो बोर्डो मिश्रण तैयार है। मिश्रण हमेशा ताजा बनाकर डालना चाहिये। इसे बनाकर नहीं रखना चाहिये अगर मिश्रण 0.5 प्रतिशत बनाना हो तो नीला थोथा 500 ग्राम चूना उतना ही पानी मिलायें अगर मिश्रण 1 प्रतिशत बनाना हो तो उतने ही पानी में नीला थोथा 1 किग्रा. तथा उतने ही पानी में 1 किग्रा. चूना घोले और उसी प्रकार बनाये। छड़ के रंग बदलने पर मिश्रण में चूने की मात्रा बढ़ा दें।विक्रेता से भंडार तक रसायन लाने हेतु प्रयुक्त किये गये झोले बोरे आदि में अन्य वस्तुयें एक साथ नही रखना चाहिये अन्यथा विषाक्त होने की संभावना रहती है।

रसायन के भण्डारण में-रसायन को विक्रेता के पास लेकर अपने भण्डार सुरक्षा के दृष्टिकोण से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सावधानियाँ बरतने की विशेष आवश्यकता है-

1. रसायन को से मूल पैकिंग में ही रखना चाहिए जिस पर उनका नाम एवं आवश्यक निर्देश आदि अंकित रहते हैं किसी अन्य डिब्बे बर्तन में इन्हीं नहीं रखना चाहिये।
2. रसायन सदैव बच्चों चिड़ियों पालतू पशुओं की पहुंच से दूर किसी ऊंचे स्थान अथवा किसी अलमारी में बन्दकर ताले में रखना चाहिये।
3. यदि किन्ही कारणों से पैकिंग पर नाम निर्देश आदि मिट जाये तो कागज की एक पट्टी पर रसायन का नाम एवं 'घातक विष' लिखकर चिपका देना चाहिये।

पान उपज की तकनीक-पान उपज की तकनीक निम्नलिखित है -

भूमि का चुनाव व उपचार-अच्छे जल निकास वाली ढालू तथा कार्बनिक पदार्थ वाली मृदा इसकी खेती के लिये उपयुक्त रहती है तथापि कछारी लाल मुरम बलुई कंकरीली मिट्टी में पान अच्छी होती है क्योंकि इसमें जल निकास उत्तम होता है। मिट्टी घास फूस से मुक्त होना चाहिए ताकि गंदली रोग का प्रकोप कम हो। बरेजा निर्माण-पान की फसल हेतु कृत्रिम वातावरण तैयार करने के लिये बांस व घास फूस से बरेजा तैयार करते है। जिसमें 60-70 सेमी. की दूरी पर लाइने बनाई जाती है। मण्डप पर सूखा घास या कांस रखते हैं। जिससे पौधों को तेज धूप न लगे व सामान रूप से प्रकाश भी मिलता रहे। बरेजे की जमीन बराबर कर गहरी जुताई करते हैं व जमीन को समतल कर जल निकास हेतु नालियां बनाते हैं।

बीजोपचार-बीज के रूप में ली गई बेलों को स्ट्रेप्टोसायक्लिन दवा (6 ग्राम दवा को 25 लीटर पानी में घोलकर) से उपचारित करें तथा बोते सयम तांम्रयुक्त फफूंदीनाशक जैसे ब्लाइटाक्स या डायथेन एम- 45 दवा 25 ग्राम/10 लीटर पानी में मिलाकर बेलों को 15-20 मिनट उसमें रखें तत्पश्चात बुवाई करें।रोपाई-पान के रोपण के लिये फरवरी-मार्च उपयुक्त समय है। पान की अच्छी फसल के लिये पान की बेल के ऊपरी एक मीटर के भाग को बुआई के लिये उपयोग करें। पान की पत्ती जिसमें गांठ रहती है वह रोपाई के लिये

ले। गीली जमीन में रोपाई करें। उसके बाद सपरे को पानी से भीगी घास के ढ़क दें। बरेजे में नमी व तापमान बढ़ने न देने के साथ ही कुछ आमदनी भी दे जाती है। इसके अतिरिक्त इसमें पपीता, परवल, कुंदरू ककड़ी शिमला मिर्च भी लगाई जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक-पान की फसल हेतु नाइट्रेजन 150 कि.ग्रा. 70-80 कि.ग्रा. स्फुर व 50 कि. ग्रा. पोटाश की आवश्यकता प्रति हेक्टयर आवश्यक होती है। नत्रजन की आधी मात्रा व स्फुर व पोटाश की पूरी मात्रा पान रोपाई से पूर्व बरेजे में डाले। नत्रजन की शेष मात्रा 4-5 बार में खड़ी फसल में मिट्टी में डालकर देना चाहिए। पान की फसल में सरसो, अलसी, नीम या तिली की खरी डालने से उत्पादन के बढ़ने के साथ लागत कम हो जाती है। खरी डालने के बाद मिट्टी जरूर चढ़ाये जिससे नई जड़े बने और बेलों की बढ़वार और अधिक हो। सिंचाई-बरेजों में 80 प्रतिशत नमी बनाये रखने के लिये गर्मियों में 2-3 बार तथा सर्दियों में 2-3 दिन के अन्तर पर सिंचाई करें। वर्षा ऋतु में जल निकास का उचित प्रबंध करें।

बेल की बंधाई व तुड़ाई-रोपाई के बाद 3 या 4 पान निकलने के बाद रोपित की गई पत्तियों को निकाल दे इससे किसानों की कुछ लागत भी निकल आती है। जब बेल आधा मीटर ऊंची हो जाये तब बेलों को बांस की कमचियों के सहारे सूख कांस से बांधते है। बारिश होने के पहले पौन मीटर तक के पत्ते हटा देते है जिससे रोगों का प्रकोप कम होता है।तुड़ाई-अगस्त माह से 15-20 दिन के अंतर से पान की तुड़ाई करें। बारिश के बाद एक फिर नया घास डाले तथा ठण्ड या पाले से बचाव के लिये सिंचाई अवश्य करें। जनवरी-फरवरी में अंतिम तुड़ाई की जाती है।

उपज व विपणन व्यवस्था-नई पान की फसल से लगभग 100 से 125 क्विंटल पान के पत्तों का उत्पादन प्रति हेक्टेयर होता है जबकि दूसरे व तीसरे वर्ष 80-120 क्विंटल पान प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है।पान की पत्ती शीघ्र नष्ट होने वाली प्रकृति की होती है इसलिए इसे लम्बे समय तक भंडारित करके नही रखा जा सकता होती कुछ थोड़े दिनों के लिए भंडारित करने के लिए स्वस्थ व रोगरहित पान की पत्ती को टोकरियों में गीले कपड़े में क्रम से जमाकर रखते है वे कुछ अंतराल के बाद पानी का छींटा मारते जाते है यदि दो दिन से ज्यादा भंडारित करना होता है तो उसे पलटना चाहिए।पान की पत्ती शीघ्र ही सड़ने लगती है, जिसके कारण 60 प्रतिशत छोटे कृषक स्थानीय बाजार पान की गुमटियों में पान को बेचते है। बुंदेलखण्ड के महाराजपुर व महोबा में इसकी मंडी है यहां आड़ पद्धति से इसकी बिक्री होती है व बिचौलिये यहाँ से पान मेरठ सहारनपुर लखनऊ दिल्ली आदि की बड़ी मंडियों में भेजते है, बिलहरी पान को पाकिस्तान भी भेजा जाता है।

तालिका संख्या 01

		(2015-16)		(2016-17)		(2017-18)	
क्र. सं.	ग्राम का नाम	क्षेत्रफल (एकड़)	कुल पारी	क्षेत्रफल (एकड़)	कुल पारी	क्षेत्रफल (एकड़)	कुल पारी
1	महाराजपुर	80	4000	60	3000	40	2000
2	गढीमलहरा	75	3750	55	2750	30	1500
3	पिपट	70	3500	55	2750	50	2500
4	पनागर	70	3500	60	3000	50	2500
5	लवकुशनगर	30	1500	15	750	5	250
6	निवारी	25	1250	11	750	5	250

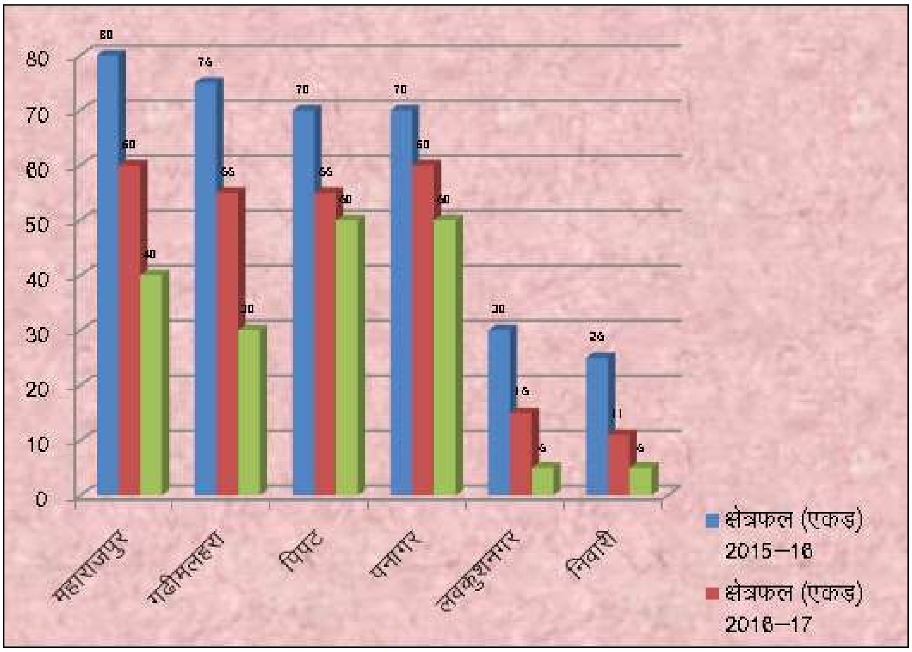

छतरपुर जिले में पान की खेती का रकबा

चित्र संख्या 01 : छतरपुर जिले में पान की खेती का रकबा

सारणी क्रमांक 01 में वर्ष 2015-16 में छतरपुर जिले में पान की खेती का रकबा महाराजपुर में 80 एकड़ अर्थात् 4000 पारी का क्षेत्रफल रहा। गढ़ीमलहरा में 75 एकड़ अर्थात् 3750 पारी में पान की खेती हुआ करती थी। लवकुशनगर में 30 एकड़ अर्थात् 1500 पारी में पान बरेजो हुआ करते थे, पिपट क्षेत्र में 70 एकड़ अर्थात् 3500 पारी में पान की खेती हुआ करती थी। पनागर क्षेत्र में 70 एकड़ अर्थात् 3500 पारी में पान की खेती हुआ करती थी, निवारी क्षेत्र में पान की खेती का रकबा 25 एकड़ अर्थात् 1250 पारी का था। छतरपुर जिले में वर्ष 2016-17 एवं 17-18 में पान बरेजे का रकबा महाराजपुर में क्रमशः 60 एकड़ एवं 40 एकड़ पाया गया। गढीमलहरा में 55 एवं 30 एकड़ में पानी की उपज होती थी। लवकुशनगर क्षेत्र में 2016-17 एवं 17-18 में 15 एवं 5 एकड़ आँकलित की गई। पनागर में 60 एवं 50 और पिपट क्षेत्र में 55 तथा 50 एकड़ में वर्ष 2016-17 एवं 17 -18 में पान की उपज दर्ज की गई है।

अध्ययन में पाया गया कि तीनों वर्षों क्रमश 2015-16, 2016-17 एवं 2017-18 में चयनित सभी 6 गाँवों में सबसे अधिक खेती 2015-16 में दर्ज की गई। जबकि आगामी वर्ष 2016-17 में यह खेती 15-16 की अपेक्षा कम पाई गई इसी प्रकार 2017-18 में यह और घट गई और तीनों वर्षों की तुलना में सबसे कम दर्ज की गई। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लगातार पान की उपज चयनित क्षेत्रों में कम हो रही है। इसका कारण पान हेतु उपयुक्त जलवायु परिवर्तन, पान हेतु तकनीकी उपलब्धता एवं शासन की पान की खेती के प्रति उपेक्षाभाव प्रमुख कारणों में से हैं।

निष्कर्ष - अध्ययन में निष्कर्ष रूप में पाया गया कि पान की उपज धीरे धीरे कम हो रही है परन्तु पुराने तकनीक के साथ नवीन तकनीक को बढ़ावा मिल रहा है। शासन द्वारा भी

पान के किसानों को सापेक्ष सुविधा एवं अपेक्षित सहयोग प्राप्त नहीं हो पा रहा है साथ ही पानी का अभाव भी किसानों की समस्या का कारण है। पान उपज हेतु अधिकांश कृषक अधिकतर परम्परागत तरीकों का प्रयोग करते हैं। पान अनुसंधान केन्द्रों की भूमिका एवं सहयोग बहुत कम है साथ ही सबसे बड़ी समस्या यह है कि पान की खेती को कृषि का दर्जा प्राप्त नहीं है। पान के विभिन्न प्रकारों की पैदावार में कमी है। पान के विपणन का स्थान ज्यादातर स्थानीय मण्डी में होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. Acharya, S.S., and Agarwal, N.C., "Agricultural Marketing in India", Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi, 1987.
2. Chaurasia, J.P., "Betelvine Cultivation and Management of Diseases", Scientific Publishers (India), Jodhpur, 2001.
3. Lee Uma, J., "Food grain Marketing in India", Popular Prakasam Ltd., Mumbai, 1973.
4. Ahuja, S.C., and Uma Ahuja, "Betel Leaf and Betel Nut in India: History and Uses", Asian Agri-History, Vol.15, No.1, 2011, pp.13-35.
5. Arulmozhiyan, R., and Thamburaj, S., "Integrated Nutrient Management in Micronutrients Content of Betel Leaf under open system of cultivation", Journal of plantation crops, Vol.21, No.3, December 1999, pp.45-51
6. Chatterjee, "Water stress effects on betelvine (piper betle l.) and its alleviation by n-triacontanol". Acta Hort. (ISHS), Vol. 502, 1999, pp.93-98.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

जनपद शाहजहाँपुर में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों का मानव विकास पर प्रभाव

• इन्दू मिश्रा

सारांश- आज देश में पाँच करोड़ से अधिक मध्यम, लघु एवं कुटीर उद्योग हैं। ये उद्योग भारत के निर्माण में 40 प्रतिशत और व्यापारिक निर्यात में अपना महत्वपूर्ण योदान प्रदान करते हैं। स्पष्ट है, कि अर्थव्यवस्था में योगदान न देने के सन्दर्भ में ये उद्योग बड़ी भूमिका निभाते हैं। प्राय: हम देखते हैं, कि लघु और ग्रामीण उद्योगों के योगदान को पर्यावरण पर डाले जा रहे दुष्प्रभावों के आधार पर उपेक्षित किया जाता है। जबकि वास्तविकता इसके उलट है। भारी उद्योगों की तुलना में लघु और ग्रामीण उद्योग पर्यावरण को कम हानि पहुँचाते हैं।आज ग्रामीण और लघु उद्योगों पर चर्चा इसलिए भी आवश्यक है कि जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के दौर में उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था और पर्यावरण दोनों के सुरक्षित रख सकते है। यह दु:ख की बात है कि अपने देश में आज तक भारी उद्योगों को ध्यान में रखकर ही नीतियाँ बनायी गई, परिणामत: न सिर्फ हमने पर्यावरण को अकल्पनीय क्षति पहुँचायी, बल्कि लघु और ग्रामीण उद्योगों की क्षमता और महत्व की भी उपेक्षा की। हालांकि समय-समय पर लघु उद्योगों के लिए नीतियाँ बनीं, लेकिन इन उद्योगों के विकास का प्रश्न कभी भी प्राथमिकता में नहीं आ सका। इनके पर्यावरणीय पक्ष को लेकर चर्चा तो सिरे से गायब रही, जबकि विकास की दौड़ में यह बात अपने देश के लिए वरदान हो सकती थी।

मुख्य शब्द - मध्यम, लघु एवं कुटीर उद्योग, अर्थव्यवस्था, पर्यावरण

किसी भी क्षेत्र के औद्योगिक विकास में उस क्षेत्र की भौगोलिक पृष्ठभूमि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वास्तव में क्षेत्र की भौगोलिक पृष्ठभूमि ही उस क्षेत्र में औद्योगिक विकास के लिए आधार प्रदान करती है। किसी भी क्षेत्र की भूगर्भिक संरचना उस क्षेत्र में खनिज संसाधन की उपलब्धता को निर्धारित करती है। प्राय: लावा जनित पठारी क्षेत्रों में मैदानों की अपेक्षा अधिक खनिज संसाधन उपलब्ध होते हैं। साथ ही किसी क्षेत्र का उच्चावच उस क्षेत्र में औद्योगिक विकास हेतु आधारभूत संरचनाओं जैसेपरिवहन साधन, सड़क, विद्युत उपलब्धता, जलापूर्ति आदि को प्रभावित करती है। सामान्यत: पहाड़ी और पठारी क्षेत्रों की अपेक्षा मैदानी क्षेत्रों में आधारभूत संरचनाओं की संभावना अधिक सरलता से की जा सकती है। किसी भी क्षेत्र की जवायु भी उस क्षेत्र में वस्तुओं के निर्माण को प्रभावित करती है। शुष्क जलवायु में कपड़े का धागा जल्दी टूट जाता है। इसीलिए वस्त्र उद्योग आदि

• एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, वी.एस.एस.डी. कॉलेज, नवाबगंज, कानपुर

जलवायु वाले क्षेत्रों में अधिक विकसित होता है। इसी प्रकार किसी भी क्षेत्र की जवायु और मृदा संयुक्त रूप से मिलकर उस क्षेत्र में कृषि के स्वरूप को निर्धारित करती है, और अन्ततः कृषि दो तिहाई से अधिक प्रकार के उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध करवाती है।

भारत में भी यदि औद्योगिक नगरों की अवस्थित पर दृष्टि डाली जाये तो स्पष्ट होता है, कि भारत में उन क्षेत्रों में अधिक औद्योगिक विकास हुआ है, जिनकी भौगोलिक पृष्ठभूमि औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल है। जैसे-गुजरात, महाराष्ट्र, झारखण्ड और उड़ीसा आदि राज्य। इन राज्यों में औद्योगिक विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में खनिज संसाधन, जल की उपलब्धता सस्ता परिवहन और कुशल मानव संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था, जिसके परिणाम स्वरूप यहाँ औद्योगिक गतिविधियों का तीव्रता से विकास हुआ।

अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक परिचय- प्रशासनिक दृष्टि से शाहजहाँपुर जनपद भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के उत्तरी भाग में अवस्थित है। यह जनपद उत्तर प्रदेश राज्य के बरेली मण्डल में अवस्थित है। जनपद शाहजहाँपुर 270 35' उत्तरी अक्षांश से 280 29' उत्तरी अक्षांश तथा 790 19' पूर्वी देशान्तर से 2800 20' पूर्वी देशान्तर के बीच अवस्थित है। इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 4575 वर्ग किलोमीटर है। भारतीय जनगणना विभाग 2011 के अनुसार शाहजहाँपुर की कुल जनसंख्या 3006538 है, जिसमें पुरूष 1606403 तथा महिला 1400135 हैं। जनपद शाहजहाँ पुर के पूर्व में जनपद लखीमपुर खरी, दक्षिण में हरदोई, फर्रूखाबाद पश्चिम में बदायूँ एवं बरेली तथा

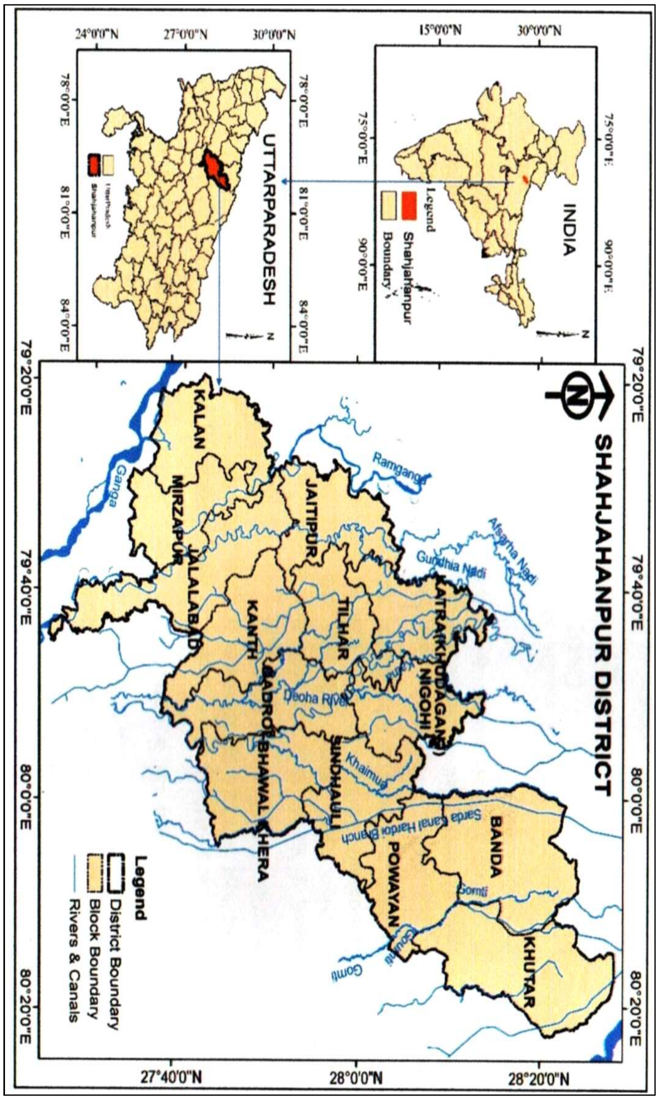

उत्तर में पीलीभीत स्थित है। जनपद शाहजहाँपुर में कुल 4 तहसीलें (सदर तिलहर, पुवायां और जलालाबाद) 15 विकासखण्ड (बडा, खुटार, पुवायां, सिंधौली, कटरा खुदागंज, जैतीपुर, तिलहर, निगोही, कांठ, दररौल, भावलखेड़ा, मदनापुर कलान, मिर्जापुर और जलालाबाद) 1077 ग्राम पंचायत और 2325 गाँव हैं। जनपद की मुख्य नदियों में गंगा, रामगंगा, गोमती और गर्रा हैं। जनपद शाहजहाँपुर की सागरतल से औसत ऊँचाई 150 मीटर से 200 मीटर के बीच पायी जाती है। (मानचित्र संख्या-1)

उद्देश्य- जनपद शाहजहाँपुर के विकास में लघु उद्योगों का महत्वपूर्ण योगदान है। उद्योगों से क्षेत्र में ही रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, जिससे मानव को रोजगार मिलता है और उसके रहन-सहन के स्तर में सुधार होता है एवं आर्थिक तंत्र भी सुदृढ़ होता है। प्रस्तुत शोधपत्र के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं -

1. जनपद शाहजहाँ पुर की अर्थ व्यवस्था को जानना।
2. आर्थिक नियोजन के साथ-साथ राष्ट्रीय आय में उद्योगों का योगदान ज्ञात करना।
3. उद्योगों द्वारा यह पता लगाना कि कौन सा उद्योग कितने लोगों को रोजगार प्रदान करता है।
4. जनपद की उत्पादकता एवं उत्पादन ज्ञात करना।

विधितंत्र- इस भौगोलिक अध्ययन में सूचनाओं एवं आँकड़ों का एकत्रीकरण द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है।इस द्वितीयक आँकड़ों का संकलन प्रकाशित स्रोतों जैसे-भारतीय जनगणना विभाग द्वारा प्रकाशित जनगणना आँकड़ा, जिला- जनगणना पुस्तिका, जिला सांख्यिकीय पुस्तिका आदि से लिया गया है।

ग्रामीण एवं लघु औद्योगिक परिदृश्य- वस्तुतः आर्थिक विकास कृषि और उद्योगों के सम्मिलित विकास पर निर्भर करता है। ग्रामीण औद्योगीकरण एक व्यापक योजना और युक्ति है, जो निम्नलिखित दो तत्वों को समाहित किये हुए है -

1. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि एवं
2. ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध मानव संसाधन और बेरोजगार व्यक्तियों के मध्य अन्तर कम करना तथा क्षेत्रीय विभिन्नताओं को न्यूनतम करना।

आर्थिक विकास गव्यात्मक सामाजिक आर्थिक परिवर्तन में निहित है। यह मुख्य रूप से नगरीकरण के साथ-साथ चलता है। औद्योगीकरण और नगरीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।ग्रामीण एवं लघु उद्योगों की अवधारणा सापेक्षिक है। अध्ययन की सुविधा एवं स्वतन्त्रता पहचान बनाये रखने के ध्येय से लघु उद्योगों को एकाधिक आधार पर परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। परिभाषाओं की भी अपनी सीमा होती है; ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि, ''भारत में लघु उद्योगों में जैसी विविधता पाई जाती है। उसे परिभाषा में बाँधकर न्याय नहीं किया जा सकता है।''हमारे देश में लघु उपक्रम वे हैं, जिसमें पूँजी अथवा समग्र निवेश 5 लाख रूपये तक हो तथा (गणना) नियमित रूप से काम करने वाले कर्मचारी 50 से अधिक न हों।

शाहजहाँपुर जनपद में पूँजी निवेश एवं कार्यरत श्रमिकों को आधार मानते हुए ग्रामीण एवं लघु उद्योगों को परिभाषित किया गया है। समयानुसार एवं क्षेत्रानुसार इन

परिभाषाओं में किंचित संसोधन एवं परिवर्तन भी किये जाते हैं। कुटीर उद्योग वे हैं, जो पूर्णरूपेण अथवा प्रारम्भिक रूप से परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्ण कालिक अथवा अंशकालिक रोजगार के रूप में चलाये जाते हैं। जबकि लघु उद्योग वे हैं, जो कि वैतनिक श्रमिकों द्वारा चलाये जाते हैं। सामान्यत: श्रमिक 10 से 50 की संख्या के बीच होते हैं। स्पष्ट: कुटीर उद्योग पारिवारिक हैं, जबकि लघु उद्योग में पारिश्रमिक देकर श्रमिक लगाये जाते हैं। नगरों में स्थापित और संचालित उद्यमों में जो नगरीय कुटीर व लघु उद्योग तथा ग्रामीण क्षेत्र में संचालित उद्योगों को ग्रामीण लघु उद्योग कहा जाता है। लघु उद्योगों में वे भी उद्योग सम्मिलित है; जिनमें 5 करोड़ रूपये से कम का विनियोजन हो तथा वहाँ 50 से अधिक श्रमिक एवं जहाँशक्ति का उपयोग न होता हो वहाँ 100 से अधिक श्रमिक कार्य न करते हों। इस परिभाषा में पूँजी निवेश एवं शक्ति को आधार बनाया गया है।

लघु उद्योग बोर्ड ने भी इन्ही आधारों पर यही विचार व्यक्त किया है, वे इकाइयाँ या प्रतिष्ठान जहाँ 5 करोड़ से कम का विनियोजन हो एवं जहाँ शक्ति का प्रयोग किया जा रहा हो तब 50 से अधिक श्रमिक कार्य न करते हों। अत: 1960 में लघु उद्योग बोर्ड ने अपनी संस्तुति में कहा,जहाँ पूँजीगत विनियोजन 5 करोड़ रूपये से अधिक न हो चाहे कितनी ही संख्या में श्रमिक कार्य करते हों। इस व्याख्या से लघुता को व्यापकता मिल गई। यहाँ पूँजी विनियोग से आशय भूमि, भवन, मशीन एवं औजारों में निवेश है। लघु उद्योग इकाई यदि किराये के भवन में चलाई जाती रही है, तो उसे 5 लाख रूपये की सीमा में शामिल किया गया, किन्तु श्रमिकों के आवास एवं अन्य श्रम कल्याण सुविधाओं को 5 लाख रूपये की परिधि से बाहर रखा गया। मशीनों का मूल्यांकन उनके मूल्य पर किया जाता है, चाहे वो नई हों या पुरानी मशीने हो।

ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का विकासात्मक परिदृश्य- स्वतंन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कुटीर एवं लघु उद्योगों के महत्व को स्वीकार करते हुए सरकार ने इन उद्योगों के विकास हेतु विशेष बल दिया। यह महसूस किया गया कि ये उद्योग बेरोजगारी और गरीबों को दूर करने एवं असमानताओं को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। 1948 में घोषित देश की प्रथम औद्योगिक नीति में लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

1.विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना- लघु एवं कुटीरउद्योगों के विकास की जिम्मेवारी वहन करते हुए केन्द्रीय सरकार ने इन उद्योगों के विकास के लिए अलग विभाग की स्थापना की है। इस विभाग के निर्देशन और परामर्श के लिए एक अखिल भारतीय कुटीर उद्योग बोर्ड स्थापित किया है। इनमें प्रमुख है:- अखिल भारतीय हथकरघा एवं दस्तकारी बोर्ड, अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, लघु उद्योग विकास बोर्ड, जिला उद्योग केन्द्र आदि।

2.वित्त संबंधी सुविधाएँ- लघु एवं कुटीर उद्योगों की पूँजी को तथा अन्य आर्थिक सहायता प्रदान करने के क्षेत्र में भी सरकार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। राज्य सरकारों ने राज्य उद्योग सहायता अधिनियमों के अन्तर्गत इन उद्योगों के लिए ऋण सुविधाओं को काफी बढ़ा दिया है। अब इन उद्योगों को अपेक्षाकृत अधिक आसान शर्तों पर सहजता से राज्य सरकारों द्वारा ऋण उपलब्ध कराया जाने लगा।

3.विपणन सुविधाएँ- कुटीर एवं लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं के विपणन में भी सरकार सहायता करती है। केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों तथा विशिष्ट निगमों द्वारा निर्मित वस्तुओं की बिक्री के लिए स्थान-स्थान पर शोरूम अथवा इम्पोरियम स्थापित किये गये हैं। इनके माध्यम से देशी एवं विदेशी बाजारों में माल बेचे जाते हैं।

4.तकनीकी सहायता- सरकार द्वारा लघु उद्योगों को पर्याप्त तकनीकी सहायता प्रदान की जाती है। इसके लिए लघु उद्योग विकास संगठन की स्थापना की गई है, जिसके अन्तर्गत 28 लघु उद्योग सेवा संस्थान, 30 शाखा संस्थान तथा 4 क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गये हैं। सरकार द्वारा विदेशों में प्रशिक्षण हेतु उद्यामियों को भेजा जाता है तथा विदेशी विशेषज्ञों को भी भारत में प्रशिक्षण देने के लिए आमंत्रित किया जाता है।

5.करों में रियायत- सरकार द्वारा लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर उत्पादन या इसी तरह के अन्य कर नहीं लगाये जाते है। यदि नहीं लगाये भी जाते हैं तो इनकी दरे अत्यधिक कम रहती हैं।

6.औद्योगिक सहकारी समितियाँ- सरकार और आयोग इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि लघु एवं कुटीर उद्योगों के स्वरूप एवं तीव्र विकास में औद्योगिक सहकारी समितियाँ सिद्ध हो सकती हैं और लघु मुख्यतया इन्हीं के माध्यम से ये उद्योग सहकारी सहायता से लाभ उठा सकते हैं।

7.भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना- 2 अप्रैल, 1990 को भारीय औद्योगिक विकास बैंक की सहायक संस्था के रूप में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना की गयी है। इसका मुख्य कार्य लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इस बैंक की 30 शाखाएँ राज्यों में स्थापित की गयी हैं।

8.लघु उद्योग बोर्ड- जून, 1992 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक लघु उद्योग बोर्ड का गठन किया गया है। इस बोर्ड के 130 सदस्य हैं, जो विभिन्न मंत्रालयों व संगठनों से लिए गये हैं। इस बोर्ड का मुख्य कार्य लघु उद्योगों के विकास के लिए सरकार को सलाह देना है।

9.राष्ट्रीय समता कोष की स्थापना- लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास की दृष्टि से केन्द्र सरकार के राष्ट्रीय समता कोष की स्थापना की है। इस कोष के लि 15 करोड़ रूपये केन्द्र सरकार ने तथा 5 करोड़ रूपये भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने प्रदान किये हैं। इस कोष का प्रबन्ध भारतीय औद्योगिक विकास बैंक करता है।

निर्णय एवं सुझाव- जनपद शाहजहाँपुर की अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों का अपना विशिष्ट महत्व और स्थान है। ये जनपदीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला है। गाँधी जी के शब्दों में, "भारत का मोक्ष उसके कुटीर उद्योगों में निहित है।" कुटीर उद्योग से आशय ऐसे उद्योग से है, जो पूर्णतया परिवार के सदस्यों की सहायता से पूर्णकालिक या अंशकालिक व्यवसाय के रूप में चलाये जाते हैं।

आज देश में पाँच करोड़ से अधिक मध्यम, लघु एवं कुटीर उद्योग हैं। ये उद्योग भारत के निर्माण में 40 प्रतिशत और व्यापारिक निर्यात में अपना महत्वपूर्ण योदान प्रदान करते हैं। स्पष्ट है, कि अर्थव्यवस्था में योगदान न देने के सन्दर्भ में ये उद्योग बड़ी भूमिका निभाते हैं। प्राय: हम देखते हैं, कि लघु और ग्रामीण उद्योगों के योगदान को पर्यावरण पर

डाले जा रहे दुष्प्रभावों के आधार पर उपेक्षित किया जाता है। जबकि वास्तविकता इसके उलट है। भारी उद्योगों की तुलना में लघु और ग्रामीण उद्योग पर्यावरण को कम हानि पहुँचाते हैं।

आज ग्रामीण और लघु उद्योगों पर चर्चा इसलिए भी आवश्यक है कि जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के दौर में उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था और पर्यावरण दोनों के सुरक्षित रख सकते है। यह दु:ख की बात है कि अपने देश में आज तक भारी उद्योगों को ध्यान में रखकर ही नीतियाँ बनायी गई, परिणामत: न सिर्फ हमने पर्यावरण को अकल्पनीय क्षति पहुँचायी, बल्कि लघु और ग्रामीण उद्योगों की क्षमता और महत्व की भी उपेक्षा की। हालांकि समय-समय पर लघु उद्योगों के लिए नीतियाँ बनीं, लेकिन इन उद्योगों के विकास का प्रश्न कभी भी प्राथमिकता में नहीं आ सका। इनके पर्यावरणीय पक्ष को लेकर चर्चा तो सिरे से गायब रही, जबकि विकास की दौड़ में यह बात अपने देश के लिए वरदान हो सकती थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. शिवशंकर एवं शाही, वर्मा, अवस्थापनात्मक तत्व एवं प्रादेशिक विकास
2. यादव, अजीत कुमार, सेवा केन्द्र एवं समन्वित ग्रामीण विकास जनपद गाजीपुर का एक प्रतीक अध्ययन, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, दीन दयाल गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
3. सिंह, आनन्द, भूमि उपयोग, नियोजन एवं शाश्वत ग्रामीण विकास, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका
4. पटेल, रामबरन (1985) ग्रामीण विकास में अवस्थापना तत्वों की भूमिका
5. चौधरी दिव्येन्द, (2017), लघु एवं कुटीर उद्योगों : प्रोत्साहन, योजनायें
6. भारद्वाज, अनिल, (2017), लघुएवं कुटीर उद्योग : वित्त पोषण में चुनौतिया

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

वर्तमान् परिप्रेक्ष्य में भारत की विदेश नीति का एक अध्ययन

• संध्या शुक्ला
•• रश्मि पाण्डेय

सारांश- भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भारत को दुनिया में एक सम्मानित और जिम्मेदार अग्रणी शक्ति बनाने का आहवान किया और अपनी विदेशनीति को फिर से विकसित करने के लिए निर्णय लेने की यह कवायद देश में बढ़ती ताकत के साथ साथ राष्ट्रों की शिष्टता से पहले अपने नये आत्म विश्वास को प्रकट करती है। किस तरह शीर्ष भारतीय राजनीति नेतृत्व देश के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों और वैश्विक मामलों में अपनी निर्णायक भूमिका निभाने की क्षमता की कल्पना करता है।

मुख्य शब्द - विदेश नीति, रणनीति, अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, पड़ोसी चुनौती, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय हित, संगठन

भारत की बदलती विदेश में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की विदेश नीतियों के मुकाबले भारतीय अर्थव्यवस्था के बदलाव के लिहाज से ज्यादा सफल रही है। अपने कार्यकाल में पहले वर्ष में नरेन्द्र मोदी ने 17 देशों में 53 दिन बिताये हैं। ये यात्रायें डॉक्टर मनमोहन सिंह की लगातार यात्रा से बहुत ज्यादा नहीं है, क्योंकि मनमोहन सिंह ने भी यू.पी.ए.-2 के दौरान 12 देशों में 47 दिन की यात्रा की थी। रणनीति मामलों के जानकार इस पर विभाजित दिखते थे, कि एन.डी.ए. कार्यकाल की विदेश नीति बनाम यू.पी.ए. सरकार के दौरान की विदेश नीतियां के बीच कोई प्रस्थान बिन्दु है कि नही। मोदी सरकार मे भारत के प्रभाव क्षेत्र के विस्तार को लेकर प्रधानमंत्री मोदी की दीर्घकालिक विदेश नीतियों के लक्ष्य तथा उनकी राजनीतिक इच्छा शक्ति ने 2014 के मध्य से मजबूती के साथ भारतीय कूटनीति मे असामान्य ऊर्जा भर दी है। हालांकि कि अब भी गणराज्य के उस उषाकाल का निर्माण करता है या नही जो भारत को अपनी इस महात्वाकांक्षा को महसूस कराये किवे नेतृत्वशाली है।

शोध पत्र का उद्देश्य- प्रस्तुत शोध पत्र वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत की विदेश नीति का एक अध्ययन का उददे्श्य निम्नलिखित है।

1. वर्तमान में भारत की विदेश नीति का अध्ययन करना।
2. चीन- पाकिस्तान के मध्य हो समबन्धो मे भारत पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।

• विभागाध्यक्ष,राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंहमहाविद्यालय,रीवा
•• शोधार्थी,राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय,रीवा

3. भारत की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
4. भारत अमेरिका सम्बन्धों का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि-प्रस्तुत शोधपत्र की प्रविधि द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग मे लेकर ऐतिहासिक अनुसंधान प्रविधि अंतर्गत पुस्तकालय अनुसंधान विधि से पूरा किया गया जिसमे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति कि पुस्तको एवं राजनीति विज्ञान की पुस्तकों समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं को अध्ययन का आधार बनाया गया है।

मूल विषय वस्तु-विदेश नीतियों के रणनीतिक उददे्श्य तथा भौगोलिक निर्देश अंतर्राष्ट्रीय संवाद की रूपरेखा को मोटे तौर पर परिभाषित करते है, फिर भी विदेश लगातार बदलती रहती है। उसे घरेलू बाध्यताओं तथा वैश्विक संम्पर्क की संभावनाओं एवं समताओ के अनुसार भी और दुरूस्त किया जाता है ताकि उसके राष्ट्रीय हितों को तत्कालीन सरकार की धारणा के अनुसार सर्वश्रेष्ठ तरीके से साधा जा सके। भारत कीविदेश नीति अपवाद नही है और गुट निरपेक्षता हो या प्रमुख शक्तियों को चुनकर उनके साथ गठबंधनकरना हो राष्ट्रीय हित के मामलों तथा विदेश नीति के मूल उददे्श्य पर आजादी के बाद से अभी तक समूचे राजनीतिक वर्ग का एक समान मत रहा है। छोटे या लंबे समय में संभावित लाभो के मुताबिक परिवर्तन किया गया है। किन्तु मई 2014 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के सत्तासीन होने के बाद से विदेश नीति में विस्तार की शैली, तरीको तथा घटकों में नाटकीय परिवर्तन हुआ है। इसके परिणामो से कुछ लोग असहमत हो सकते है किन्तु परिवर्तन सामने दिख रहें है।

प्रधानमंत्री मोदी ने ‘‘इंडिया फर्स्ट’’ को सारगर्भित तरीके से विदेश नीति का प्रमुख उददे्श्य बना दिया है और अपने शपथ ग्रहण समारोह मे दक्षेस नेताओ को न्योता देकर पड़ोस को प्राथमिकता देते हुए संपर्क आरंभ किया जिसे कई पर्यवेक्षकों ने उत्कृष्ट और असाधारण लेकिन आवश्यक शुरूआत का नाम दिया। 2014 मे तत्कालिक विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज के अनुसार 170 से अधिक विदेश प्रतिनिधियों के साथ बातचीत की गई क्षेत्रीय तथा वैश्विक मामलों में और अधिक प्रभाव डालने की कोशिश कर रहे भारत जैसे देश के लिए अहम है कि उसे पडो़सी देशों से सहयोग मिलता रहें। कोई और रास्ता ही नही है क्योकि कोई भी अपने पड़ोसी चुन नही सकता, वे तो भूगोल तथा इतिहास से उसे मिलते है। हमारे मामले में आतंकवाद को प्रायोजित करने वाले पाकिस्तान के अड़ियल रवैये के बावजूद प्रयास जारी रहा।

विदेश नीति के मामले में भारत मे भारत की सबसे बड़ी चुनौती केवल यह नहीं होगी की अपने पड़ोसियों को किस तरह संभाला जाए बल्कि विश्व की प्रमुख शक्तियॉ अपना-अपना प्रभाव जमाने के लिए होड़ करती रहती है तथा किसी न किसी के जरिये यह काम करना चाहती है जबकि इतने बड़े आकार आर्थिक एवं सैन्य शक्ति मानव संसाधन तथा रणनीतिक लाभ के लाभ के कारण भारत ऐसी भूमिका मे नही आ सकता ऐसी परिस्थितियों मे कोई अपने सिर पर मड़राते सायों से छुटकारा कैसे पाए।

चीन की वैश्विक महत्वाकांक्षाए तो है ही, उसके साथ संबंध बनाए रखना बाकी सभी संबंधों की तुलना में सबसे अधिक कठिन रहा है। चीन ने अपनी वित्तीय एवं सैन्य ताकत के जरिये तथा दरियादिली से खैरात बांटकर भारत के पडो़स मे अपना मजबूत

प्रभाव जमा लिया है, जो हमारी विदेश नीति के उददे्श्यों की राह मे बाधकबन सकता है। चीन की स्ट्रिग ऑफ पर्ल रणनीति उसकी चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा परियोजना और वेल्ट एंड रोड परियोजनाओं के लिए सटीक बैठाती है। वास्तव मे इससे चीन का प्रभाव और भी आगे तक चला जाता है जो रणनीतिक रूप से हमारे लिए असहजता भरा हो सकता है।

जहां तक भारत चीन संबंध है तो प्रत्यक्ष तौर पर सब कुछ सहयोग-प्रतिस्पर्धा का नमूना लग रहा है। लेकिन चीन मौके सकी ताक में भारत की तरफ देख रहा है और रूस जैसे भारत के पारंपरिक साझेदारों को दूर ले जाने की कोशिश भी कर रहा है। रणनीतिक वैश्विक मंच पर जगह पाने के भारत के दावे का चीन द्वारा लगातार किया जा रहा विरोध परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह मे शामिल होने तथा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता पाने के हमारे प्रयासों को विफल करता रहेगा। चीन-पाकिस्तान रूस के बीच कुछ समय पहले हुई बैठके तथा भारतीय सैन्य प्रतिष्ठानों पर आतंकी हमले होने के बावजूद रूस- पाकिस्तान सैन्य अभ्यास इसका उदाहरण है।

भारत अमेरिका संबंधों की बात है, अमेरिका-भारत के साथ रणनीतिक रिश्ते और भी मजबूत करने के लिए दोनो पक्षों का समर्थन है, लेकिन इस प्रशासन की आशक्ति और प्रतिबद्धता 'कोरे पन्ने' की तरह यानी पूर्वाग्रह रहित है और अमेरिका में भारतीय समुदाय का मजबूत प्रभाव तथा राष्ट्रपति ट्रंप की कारोबारी रखने वाली टीम भारत की ओर केन्द्रित रखने में सहायक हो सकती है। रोजगार और विनिर्माण वापस अमेरिका मे लाने तथा ढांचों में प्रस्तावित बदलावों की नीतियों से भारत में अमेरिका वित्तीय निवेश में कमी आने की आशंका तो है जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को कुछ दिक्कत हो सकती है। यहां एक बार फिर वही बात आती है कि प्रतिष्पर्धा भरा तथा दूसरों की तुलना में अधिक फायदे एवं प्रोत्साहन भरा बाजार बने रहना हमारे लिये आवश्यक है और इसके लिये हमे नियमों को पिछली तिथि से लागू करने से बचना होगा। क्योंकि इससे विदेशी निवेशिको के मन में शंकाएंउत्पन्न हो गई है।

निष्कर्ष- प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की विदेशी नीति में भूतपूर्व बदलाव देखने को मिला है। पहले की विदेशी नीति या दूसरे शब्दो में कहें तो नेहरूवादी आम सहमति की गुट निरपेक्ष नीति में एकाएक परिवर्तन कर दिया गया है। पूर्व की हमारी संकुचित और आत्म सीमित नीति जो विश्व को एक जाल की तरह देखती थी, अब उसे अवसर के रूप में देखने लगी है। पूर्व अध्ययन में ज्ञात होता है कि नेहरूवादी विदेशनीति उस समय भी विवादास्पद रही थी। परन्तु इंदिरा गांधी के प्रधानमत्रित्व काल में यह नेहरूवादी ठर्रे पर ही चलती रही। वर्तमान में भारत ने केवलविदेश नीति व के घटनाचक्र में बढ-चढ़कर भागीदार बना हुआ है, बल्कि विदेश नीति की दिशा-परिवर्तन का भी एक हिस्सा बनने के प्रयत्न में है।

मोदी सरकार ने चीन के वेल्ट रोड प्रस्ताव को नामंजूर करके उसकी भारत-विदेशी नीतियों का जबाव देने का प्रयत्न किया है। भारत के इस कदम का विश्व के कई देशों ने स्वागत किया है। इसी प्रकार डोकलाम सीमा विवाद में भारत ने 73 दिनों के गतिरोध का दृढ़ता से सामना किया। चीन की दादागीरी के सामने घुटने नही टेके। विदेश नीति का अधार आर्थिक भूमि होता है। अगर भारत इस मामले में पुनरूत्थानशील रहा

होता, तो विदेश नीति का आधा काम तो अपने आप ही संपन्न हो चुका होता। परन्तु दुखद पक्ष यह है कि वर्तमान सरकार की आर्थिक नीति का ढ़ाचा मजबूत नहीं है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. बीर गौतम 2005, महाशक्तियों की विदेश नीतियां, विश्वभारती पब्लिकेशन्स्, नई दिल्ली, पृ.क्र. 223
2. सिंघल, एस.सी., 2019, भारत की विदेश नीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, पृ. क्र. 147
3. भारद्वाज रामदेव, 2009, भारत और अंतर्राष्ट्रीय संबंध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ. क्र. 237

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

डॉ. भीमराव अम्बेडकर : आधुनिक भारत के निर्माता

• सिद्धार्थ मिश्र

सारांश- भारत के संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा जो संविधान रचा गया, उसने भारत की सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर सामाजिक परिवर्तन हेतु कुछ ऐसे मानकों को स्थापित किया, जिससे भारत की लोकतान्त्रिक व्यवस्था को मजबूत किया जा सके। अम्बेडकर ने प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का विशद अध्ययन कर यह बताने की चेष्टा भी की, कि भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था, जाति-प्रथा तथा अश्पृश्यता का प्रचलन समाज में कालान्तर में आई विकृतियों के कारण उत्पन्न हुई है, न कि यहां के समाज में प्रारम्भ से विद्यमान थी। डॉ. अम्बेडकर समानता को लेकर काफी प्रतिबद्ध थे। उनका कहना था कि समानता का अधिकार धर्म व जाति से ऊपर होना चाहिए। भारतीय संविधान राज्यों के तीनों अंगों के कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका की स्थिति और शक्तियों को परिभाषित करता है। संविधान द्वारा भारतीय समाज के कई ऐसे कमजोर वर्गों के लिए कानूनी प्रावधान किये गये, जो समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना करता हो। अम्बेडकर महिलाओं की उन्नति के प्रबल पक्षधर थे। बाबा साहब मजदूरों की पीड़ा को समझते थे। इसीलिए उन्होंने उनकी आवाज बुलन्द कराने हेतु राजनीतिक हस्तक्षेप का समर्थन किया तथा उन्होंने इस रूप में मजदूरों के पहले राजनीतिक दल इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की भी स्थापना की। भारतीय संविधान ने जिस सपने को देखा था, वह जरूर पूरा हुआ लेकिन इसके पूरा होने में अभी भी भारत के समक्ष बहुत सी चुनौतियां है, जो समय-समय पर उजागर हुई है।

मुख्य शब्द - संविधान निर्माता, विशद, वर्ण-व्यवस्था, अश्पृश्यता, प्रतिबद्ध, कानूनी प्रावधान, इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी, चुनौतियाँ

आजाद भारत के संविधान निर्माता डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर द्वारा जो संविधान रचा गया, उसने भारत की सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर सामाजिक परिवर्तन हेतु कुछ ऐसे मानकों को स्थापित किया। जिससे भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत किया जा सके। इस बीच भारतीय संविधान ही एक ऐसा दस्तावेज साबित हुआ, जिसने भारत के सभी वर्गों, धर्म व जातियों के हितों को ध्यान में रखते हुए सवैधानिक मूल्यों को आत्मसात किया ताकि समाज में समानता, भ्रातृत्व व स्वतंत्रता जैसे मूल्यों की स्थापना हो सके। लेकिन इन सभी मूल्यों के तहत संविधान-निर्माण प्रक्रिया के बीच जो वाद-विवाद

• आयोद्धा,उत्तर प्रदेश

हुआ, उसने यह तय कर दिया कि भारत में प्रतिनिधित्व, समानता, स्वतंत्रता आदि जैसे मूल्य कैसे स्थापित हो। लेकिन इस बीच जिस समय भारत का संविधान बन रहा था उस समय बाबा साहेब आंबेडकर के मस्तिष्क में जातिमुक्त समाज की परिघटना का मानचित्र बन रहा था और जो बाबा साहब द्वारा सकारात्मक कार्यवाही निर्धारित करने हेतु संवैधानिक प्रावधानों के तहत ही संभव हो पाया।

अम्बेडकर का सम्पूर्ण जीवन भारतीय समाज में सुधार के लिए समर्पित था। उन्होंने प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का विशद अध्ययन कर यह बताने की चेष्टा भी की कि भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था, जाति प्रथा और अस्पृश्यता का प्रचलन समाज में कालान्तर में आई विकृतियों के कारण उत्पन्न हुई है, न कि यह यहां के समाज में प्रारम्भ से ही विद्यमान थी। सामाजिक क्षेत्र में उनके द्वारा किए गए प्रयास किसी भी दृष्टिकोण से आधुनिक भारत के निर्माण में भुलाये नहीं जा सकते जिसकी प्रासंगिकता आज तक जीवंत है। अम्बेडकर ने वर्ण व्यवस्था को अवैज्ञानिक, अत्याचारपूर्ण संकीर्ण तथा गरिमाहीन बताते हुए इसकी कटु आलोचना की थी।[1]

डॉ. अम्बेडकर समानता को लेकर काफी प्रतिबद्ध थे। उनका मानना था कि समानता का अधिकार धर्म और जाति से ऊपर होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को विकास के समान अवसर उपलब्ध कराना किसी भी समाज की प्रथम और अंतिम नैतिक जिम्मेदारी होनी चाहिए। अगर समाज इस दायित्व का निर्वहन नहीं कर सके तो उसे बदल देना चाहिए। वे मानते थे कि समाज में यह बदलाव सहज नहीं होता है, इसके लिए कई पद्धतियों को अपनाना पड़ता है। भारत में इस स्थिति की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 14 से 18 में समानता का अधिकार का प्रावधान करते हुए समान अवसरों की बात कही गयी है।

संविधान मुख्यत: राज्य अथवा शासन के प्रति उत्तरदायित्व व स्थायित्व की भावना को स्थापित करता है तथा देश की जनता को इस बात के लिए तैयार करता है कि उन्हें अपना व्यवहार कानून के शासन के अन्तर्गत ही तय करना है न कि उसके विरोध में। यह देश के नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक सुरक्षा प्रदान करता है। इस रूप में यह एक ऐसा आधारभूत दस्तावेज है। यह प्राय: लिखित रूप में होता है। यह वह विधि है जो किसी राष्ट्र के शासन का आधार है। उसके चरित्र व संगठन को निर्धारित करती है तथा उसके प्रयोग विधि प्रक्रिया को बताता है, यह राष्ट्र की परम विधि है तथा विशेष वैधानिक स्थिति का उपभोग करती है सभी प्रचलित कानूनों को अनिवार्य रूप से संविधान की भावना के अनुरूप होना चाहिए यदि वे इसका उल्लंघन करेंगे तो वे असंवैधानिक घोषित कर दिये जाते है। भारतीय संविधान राज्यों के तीनों अंगों के कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका की स्थिति और शक्तियों को परिभाषित करता है। वस्तुत: संविधान का उद्देश्य राज्यों के अंगों का मात्र सृजन करना नहीं है, बल्कि उसके प्राधिकार को सीमित करना है क्योंकि यदि अंग के प्राधिकार पर सीमा नहीं लगाई जाती है तो वह पूर्व निरकुंश होगा। विधायिका किसी भी कानून को बनाने के लिए स्वतंत्र हो, कार्यपालिका कोई भी निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र हो तथा सर्वोच्च न्यायालय कानून की कोई भी व्याख्या करने के लिए स्वतंत्र हो, तो इसकी परिणति अराजकता में

होगी। यह बात बाबा साहब अम्बेडकर ने पूरी ताकत के साथ कही थी।[2]

किसी भी देश का अगर राजनीतिक लोकतंत्र मजबूत करना है तो उसके लिए संसदीय लोकतंत्र की मजबूती पर ध्यान देना पड़ेगा और इस उद्देश्य हेतु जनप्रति निधियों के कर्तव्य व जनभागीदारी को निश्चित करना होगा। इसलिए अम्बेडकर संसदीय लोकतंत्र के काफी पक्षधर थे। अम्बेडकर का कहना था कि लोकतंत्र की आत्मा है एक व्यक्ति, एक वोट के मूल्य का सिद्धान्त। लंदन में गोलमेज सम्मेलन के पूर्ण अधिवे''ान में 20 नवम्बर 1930 को अपने भाषण में उन्होंने कहा, हमें ऐसी सरकार चाहिए जिसमें सत्ता में बैठे व्यक्ति इस बात को समझते हो कि कब सरकार की आज्ञाकारिता समाप्त हो जाती है और प्रतिरोध आरम्भ हो जाता है, फिर वे न्याय और समय की आवश्यकताओं को देखते हुए सामाजिक और आर्थिक जीवन की आचार संहिताओं में परिवर्तन करने में नहीं हिचकिचाएगे। यह काम केवल वहीं सरकार कर सकती है जो जनता की सरकार हो, जनता के लिए हो तथा जनता द्वारा चुनी गयी हो।[3]

25 नवंबर 1949 को संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते हुए अम्बेडकर ने कहा था कि, ''मेरी राय है कि यह मानकर कि हम एक राष्ट्र है, हम एक बड़े भ्रम को संजो रहे है। हजारों जातियों में बंटे लोग एक राष्ट्र कैसे हो सकते है? जातियाँ मूलतः राष्ट्र विरोधी है क्योंकि वे सामाजिक जिंदगी को बांटती है। वे राष्ट्र विरोधी इसलिए भी है क्योंकि उनसे विभिन्न जातियों के बीच ईर्ष्या और विदेष उत्पन्न होता है।[4] बाबा साहब अम्बेडकर ने इस बात को भलीभांति भांप लिया था कि अगर धर्म के आधार पर राष्ट्र बनता है तो यह देश के लिए कितना घातक होगा।

संविधान द्वारा भारतीय समाज के कई ऐसे कमजोर वर्गों के लिए कानूनी प्रावधान किये गए, जो समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना करता हो। समाज में इनके साथ होने वाले भेदभाव, शोषण व अत्याचार की फेहपरिस्त बहुत लम्बी रही है। संविधान के द्वारा इनकी निर्योग्यता को समाप्त कर देने और इन्हें स्वतन्त्रता व समानता का अधिकार प्रदान कर देने मात्र से ही इनकी समस्याओं का पूरी तरह से निदान सम्भव नहीं था। इसलिए संवैधानिक प्रावधानों की बहुत आवश्यकता थी।

संविधान के अनुच्छेद 35(अ) (11) के तहत संसद द्वारा पारित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अपराध अधिनियम सामाजिक न्याय हेतु एक मुख्य कड़ी के रूप में स्थापित हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जातियों के लोगों पर अस्पृश्यता सम्बन्धी किसी निर्योग्यता के आरोपण को अवैधानिक और दण्डनीय करना था। लेकिन इस कानून में कुछ खामियां होने के कारण यह ज्यादा कारगर साबित नहीं हो पाया। अतः इसकी खामियों को दूर करने हेतु तथा इसमें अधिक कसावट लाने की दृष्टि से 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955' के नाम से एक नया कानून बनाया गया। जो 1976 के रूप में स्थापित हुआ।[5]

अम्बेडकर महिलाओं की उन्नति के प्रबल पक्षधर थे। उनका मानना था कि किसी भी समाज का मूल्यांकन इस बात से किया जाता है कि उसमें महिलाओं की क्या स्थिति है? दुनिया की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है, इसलिए जब तक उनका समुचित विकास नहीं होता कोई भी देश चहुंमुखी विकास नहीं कर सकता। डॉ.

अम्बेडकर का कहना था कि यदि महिलाएं एकजुट हो जाएं तो समाज को सुधारने के लिए क्या नहीं कर सकती है? वे लोगों से कहा करते थे कि महिलाओं और अपने बच्चों को शिक्षित कीजिए। उन्हें महत्वाकांक्षी बनाइए। उनके दिमाग में यह बात डालिए कि महान बनना उनकी नियति है। महानता केवल संघर्ष और त्याग से ही प्राप्त हो सकती है। संविधान के अनुच्छेद 14 में यह प्रावधान है कि किसी भी नागरिक के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। आजादी मिलने के साथ ही महिलाओं की स्थिति में सुधार शुरू हुआ। आजाद भारत के पहले कानून मंत्री के रूप में उन्होंने महिला सशक्तीकरण के लिए कई कदम उठाए। सन् 1951 में उन्होंने हिन्दू कोड बिल संसद में पेश लिया।

बाबा साहब मजदूरों की पीड़ा को समझते थे। इसलिए उन्होंने उनकी आवाज बुलन्द कराने हेतु राजनीतिक हस्तक्षेप का समर्थन किया तथा उन्होंने इस रूप में मजदूरों के पहले राजनीतिक दल 'इंडिपेडेंट लेबर पार्टी' की भी स्थापना की। बाबा साहब ट्रेड यूनियन आंदोलन के समर्थक और प्रेणता थे। भारत में ट्रेड यूनियनों की हालत बहुत खराब थी।[6] बाबा साहब कहते है-यदि कोई ऐसा देश है, जहाँ ट्रेड यूनियनवाद की पक्की जरूरत है, तो मेरी राय में, वह भारत है। लेकिन जैसे कि मैने बताया, भारत में ट्रेड यूनियनवाद एक ठहरे हुए और सड़न से भरे तालाब की तरह है। इसकी सारी वजह ट्रेड यूनियन के नेतृत्व का डरपोक, स्वार्थी या बहकावे में आना है।[7]

भारतीय संविधान ने जिस सपने को देखा था, वह जरूर पूरा हुआ है लेकिन इसके पूर्ण होने में अभी भी भारत के समक्ष बहुत सी चुनौतियां है, जो समय-समय पर उजागर हुई है। भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पकार डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर, जिन्होंने उस भविष्य को भांप लिया था जो आज का भारत है। यकीनन यह उनकी दूरदृष्टि थी कि उन्होंने ऐसे संविधान का निर्माण किया। जो अपने आप में भारत के प्रत्येक जनमानस को आत्मसात करता है तथा उनके भविष्य का निर्माण करता है। जिस समय संविधान मसौदा समिति के समक्ष हर एक वह विषय जो भारत को युग-पुरूष के रूप में स्थापित करता। भारतीय संविधान विविधता में एकता को स्थापित करते हुए मौलिक अधिकारों, राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों, देश का संघीय ढांचा, संसदीय गणतांत्रिक व्यवस्था तथा धर्मनिरपेक्ष राज्य के स्वरूप को स्थापित करते हुए विश्व के समक्ष ऐसा प्रतिमान स्थापित करता है। जो अपने आप में सम्पूर्ण राष्ट्र का एक मजबूत स्तम्भ बनकर उभरा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. Dhyeyaias.com/hindi/current-affairs/perfect-7-magazine/dr-br-ambedkar.
2. www.narendramodi.in./hi/pm-Unveils-112-ft-face-of-adiyogi-in-coimbatore-534462
3. श्रीकृष्ण आनन्द (2016), डॉ. अम्बेडकर, सामाजिक न्याय संदेश, अप्रैल, वर्ष 14, अंक-4, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पृ. 20
4. नागेश चौधरी (2016), जब अम्बेडकर ने कहा ब्राम्हणवाद राष्ट्र-विरोधी है, फारवर्ड मैगजीन, दिल्ली
5. अशोक आचार्य (2011), 'सकारात्मक कार्यवाही' में राजीव भार्गव तथा अशोक

आचार्य (सम्पा) राजनीतिक सिद्धांत : एक परिचय डार्लिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा.लि., नई दिल्ली, पृ. 302

6. तेज सिंह (2008) : 'अम्बेडकरवादी विचारधारा और समाज', स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 53।
7. भगवान (2002), 'दस स्पोक अम्बेडकर', द्वितीय संस्करण, दलित टुडे प्रकाशन, लखनऊ, पृ. 45-46।

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

शुक्रनीतिसार के सैन्य प्रशासन संबंधी राजनीतिक विचारों का अध्ययन

•अमरजीत सिंह
•• महेन्द्र कुमार द्विवेदी

सारांश- **शुक्र ने सेना के अंग के रूप में पशुओं के विषय में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। राजनीतिक प्रकृति के इस ग्रन्थ में ऐसा विशद् विवरण बहुत तर्क-संगत प्रतीत नहीं होता है, किन्तु वास्तव में यह सेना सम्बन्धी विषय-सामग्री के अनुरूप ही है और तत्कालीन युद्ध-प्रतिष्ठान के प्रशासन के बारे में एक यथार्थ व ठोस तस्वीर को प्रस्तुत करने के साथ ही जन्तु-जगत के बारे में भारतीयों के विशिष्ट ज्ञान का परिचय भी देता है। शुक्र ने सैन्य बल धारण करने की दृष्टि से एक ऐसा आदर्श सूत्र प्रस्तुत किया है, जिसके आधार पर विभिन्न आय वाले राजा अपनी सेनाओं का संगठन कर सकते हैं। ज्ञातव्य है कि सैन्य शक्ति धारण करने के संदर्भ में ऐसा वृद्धि-सम्मत विवरण अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। शुक्र के इस विवरण से यह भी स्पष्ट है कि उन्होंने इस दृश्य को समझ लिया था कि किसी राज्य की अर्थ-शक्ति और सैन्य शक्ति में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, कोश (अर्थ-शक्ति) तथा सेना एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं।**

मुख्य शब्द - सैन्य प्रशासन, युद्ध-प्रतिष्ठान, प्रशासन, आदर्श सूत्र, अर्थ-शक्ति

प्राचीन भारतीय राजशास्त्र की परम्परा का पालन करते हुए आचार्य शुक्र ने सेना (बल) को सप्तांग राज्य का एक अंग माना है।[1] उन्होंने सेना एवं राज्य के अन्य अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रकाशित करते हुए सेना व कोश को परस्पर आश्रित माना है और दुर्ग को सेना की शक्ति में वृद्धि करने वाला बताया है। शुक्र ने सेना व राजा के पारस्परिक सम्बन्ध को भी निरुपित किया है। शुक्र ने राजा को राज्य का मूल बताते हुए स्पष्ट किया है कि राजा के अभाव में राज्य की सैन्य शक्ति नष्ट हो जाती है। किन्तु अन्यत्र उन्होंने सेना का महत्व प्रतिपादित करते हुये स्पष्ट किया है कि सेना के अभाव में राजा भी अपने दायित्वों की पूर्ति करने में असमर्थ रहता है। सेना के महत्व को अनुभव करते हुए शुक्र ने राजा को परामर्श दिया है कि उसे यत्नपूर्वक शक्तिशाली सेना धारण करनी चाहिए।[2]

शुक्र ने सेना को पारिभाषित करते हुए कहा है, "सेना व्यक्तियों, पशुओं आदि का समूह है, जो अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होती है।" सेना के रक्षण से ही कोष तथा राज्य की

• संकायाध्यक्ष, ग्रामीण विकास एवं व्यवसाय प्रबन्धन संकाय, म.गाँ.चि.ग्रा.वि.वि., चित्रकूट सतना, म.प्र.
•• शोध छात्र, राजनीति विज्ञान, म.गाँ.चि.ग्रा.वि.वि., चित्रकूट, सतना, म.प्र.

समृद्धि होती है[3] और शत्रु का नाश होता है। सेना के अभाव में राज्य, सम्पत्ति तथा पराक्रम तीनों ही नष्ट हो जाते हैं।

शोध पद्धति- प्रस्तुत शोध विषय का अध्ययन विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक पद्धति द्वारा किया गया है। अध्ययन में शुक्र द्वारा प्रणीत पुस्तक शुक्रनीतिसार का गहन अध्ययन ही मूलाधार है। शोध के तथ्यों के संकलन के लिए ऐतिहासिक प्रणाली का उपयोग किया गया है। ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति हमें निर्देशित करती है कि 'अतीत केवल अतीत नहीं है बल्कि वर्तमान को समझने की कुंजी भी है।' ऐतिहासिक विश्लेषण के पश्चात प्राप्त लक्ष्यों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता को भी देखने का प्रयास किया गया है। (वर्णनात्मक विधि- ऐतिहासिक पद्धति के अलावा प्रस्तुत अध्ययन में विवेचनात्मक अथवा वर्णनात्मक विधि को भी अंगीकृत किया गया है। इसके अन्तर्गत द्वितीयक तथ्यों से प्राप्त निष्कर्षों का मूल्य निरपेक्ष विवेचना अथवा विश्लेषण कर निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन द्वितीयक तथ्यों के संकलन एवं विश्लेषण पर आधारित है।

सैन्य प्रशासन- शुक्रनीतिसार में सैन्य शक्ति के महत्व के साथ ही उसका उद्देश्य भी निश्चित है। सैन्य शक्ति का उद्देश्य है राज्य, कोष तथा पराक्रम की रक्षा करना एवं उनकी वृद्धि करना और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सेना शत्रुओं का नाश भी करती है। वस्तुतः सैन्य शक्ति राज्य-व्यवस्था के इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक साधन है, यह स्वयं में साध्य नहीं है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि शुक्र के राज्य का उद्देश्य त्रिवर्ग की सिद्धि है- राजा, प्रजा-सेवक है और उसके आठ प्रमुख कर्तव्य हैं। यथा- प्रजा-पालन, शत्रु-मर्दन, अन्य राजाओं को करदाता बनाना आदि सम्मिलित है। अतः इस बात की पूरी संभावना है कि राजा के अधीन सैन्य शक्ति का प्रयोग भी इन्हीं मर्यादाओं की रक्षा हेतु किया जायेगा। शुक्र ने सेना-रक्षण की तुलना में प्रजा-रक्षण को महत्व दिया है। यह सैन्य शक्ति की उपेक्षा नहीं है, अपितु प्रजा-हित के विरुद्ध सैन्य-शक्ति के प्रयोग का निषेध है।

सेना के प्रकार- आचार्य शुक्र ने सेना के निम्नलिखित चार प्रमुख प्रकार बताये हैं-

1. दैवीय, आसुरी तथा मानवी सेनायें
2. स्वीयं व मित्र बल
3. शत्रु-बल
4. कृत गुल्म, स्वयं गुल्म, दस वाहन

1. दैवीय, आसुरी तथा मानवी सेनायें- शुक्र ने दैवीय, आसुरी तथा मानवी सेनाय को स्पष्ट करते हुए बताया है कि सेनायें दैवीय, आसुरी तथा मानवी हो सकती है और इनमें से भी प्रत्येक स्वगमा (पैदल) अथवा अन्यगमा (गज, अश्व व रथ पर आरूद) हो सकती है। इस प्रकार प्रत्येक सेना दो प्रकार की होने से कुल छह प्रकार की सेनायें संभव होती हैं। उनका मत है कि मानवी सेना से आसुरी सेना और आसुरी सेना से दैवीय सेना अधिक बलशाली होती है। शुक्र ने दैवीय, आसुरी व मानवी सेनाओं की स्पष्ट व्याख्या नहीं की है, किन्तु उन्होंने एक अन्य स्थल पर युद्ध के दैविक, आसुर एवं मानव भेदों पर जो प्रकाश डाला है, उससे प्रतीत होता है कि दैवीय सेना का मुख्य आधार मंत्र-बल है, आसुर सेना का मुख्य आधार अस्त्र-बल (बन्दूक, तोप आदि) है।[4]

2. स्वीयं व मित्र बल- शुक्र ने स्वीयं व मित्र बल के अन्तर्गत सेना के दो प्रमुख रूप

बताये हैं- स्वीयं बल (स्वयं की सेना) तथा मैत्र बल (मित्र राजा की सेना)। इनमें से प्रत्येक सेना दो प्रकार की होती है- मौल तथा साधस्क। पुनः मौल व साधस्क सेनाओं में से प्रत्येक के भी दो-दो भेद होते हैं- सार व असार सेना। शुक्र ने सार एवं असार में से भी प्रत्येक सेना को पुनः निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया है- शिक्षित, अशिक्षित,गुल्मीभूत-अगुल्मक,दत्ताशात्रादि-स्वशस्त्रास्त्र, स्ववाहि-दत्तवासन।[5]

3. शत्रु-बल-शुक्र ने सेना का तृतीय प्रमुख प्रकार शत्रु-बल स्वीकारा है। शत्रु-बल राजा के आधीन सैनिकों का ऐसा समूह है जो अतीत में उसके शत्रु राजा की सेना का अंग रह चुका होता है। शत्रु बल का निर्माण दो प्रकार से संभव है- शत्रु द्वारा अपनी सेना से निकाले गये सैनिकों को अपनी सेना के रूप में संगठित करके, अथवा भेद-नीति द्वारा शत्रु सेना को अपने पक्ष में करके। मानसोल्लास ने जीते गये राजाओं के सैनिकों की भर्ती करके शत्रु-बल (अमित्र सेना) के गठन की बात कही है। शुक्र के अनुसार शत्रु द्वारा स्थल शत्रु-बल को अपनी सेना के समीप नहीं रखना चाहिए और उसे युद्ध में अलग से तथा अपनी सेना से पहले लड़ने के लिए नियुक्त करना चाहिए। वस्तुतः शत्रु-बल के बारे में शुक्र का यह निर्देश पर्याप्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसकी राजभक्ति, निष्ठा तथा अनुशासन सदैव ही विश्वसनीय नहीं होते हैं। राजशास्त्री चण्डेश्वर ने अमित्र बल को अविश्वसनीय माना है।[6]

4. कृत गुल्म, स्वयं गुल्म, दस वाहन-शुक्र ने सेना के चतुर्थ प्रकार के अन्तर्गत सेना के निम्न रूपों का वर्णन किया है। कृतगुल्म, स्वयंगुल्म, दत्त वाहन तथा आरण्यक सेना। कृतगुल्म राज्य द्वारा संगठित सेना है, जबकि स्वयं गुल्म सेना स्वयं सैनिकों द्वारा निर्मित सेना है। इसे निजी प्रकार की सेना माना जा सकता है, जो भाड़े पर उपलब्ध हो सकती है। दत्त वाहन सेना वह है जिसे राज्य वाहन प्रदान प्रदान करता है। अपने तेज (बल) से स्वतंत्र रहने वाली किरातादि (कोल, भील आदि) की सेना को आरण्यक कहा गया है।[7]

मानसोल्लास ने आटविक (आरण्यक) सेना में आर्येत्तर निषाद आदि सैनिक बताये हैं। कामन्दक ने आटविक सेना के दोष बताते हुए इसे अथार्मिक, लोभी, अनार्य व सत्य से दूर रहने वाला बताया है।

शुक्राचार्य ने सेनाओं के जो प्रकार बताये हैं, वे अन्य आचार्यों से पर्याप्त भिन्नता वाले हैं। शुक्र ने सेनाओं के मूलतः चार वर्ग स्वीकारें हैं और इनके अन्तर्गत उन्होंने कुल दस प्रकार की सेनाओं को मान्यता दी है। जबकि कौटिल्य ने सेना के मात्र छह प्रकार स्वीकारें हैं- मील, भृत (भृतक या भृत्य), श्रेणी, मित्र, अमित्र तथा अटवी (आटविक)।

कौटिल्य के समान ही कामन्दकीय नीतिसार, अग्निपुराण तथा मानसोल्लास ने भी सेना के इन छह प्रकारों को मान्यता दी है। ज्ञातव्य है कि महाभारत ने अपने विभिन्न पर्वों में सेना के विभिन्न प्रकार बताये हैं। सभापर्व ने सेना के चार प्रकारों (मौल, भृत, अमित्र तथा अटवी) को स्वीकारा है। सोमदेवसूरि ने सेना के सात प्रकार बताये हैं, जिनमें प्रथम छह मुख्य और सातवां भेद अतिरिक्त है- मील, श्रेणी, मित्र, आरण्यक, भृत्य (निम्न कर्मचारियों से बनी सेना), सेवकों की सेना तथा औत्सासिक सेना। यहाँ यह स्पष्ट करना है कि शुक्र के मतानुसार कौटिल्य, कामन्दक और सोमदेवसूरि ने, युद्ध की दृष्टि से, मोल सेना को श्रेष्ठ माना है।

चतुरंग बल- आचार्य शुक्र ने चतुरंग बल की धारणा को स्वीकारते हुए कहा है कि सेना स्वगमा और अन्यगमा होती है; पैदल सेना स्वगमा होती है और रथ सेना, अश्वसेना तथा गजसेना को अन्यगमा कहते हैं। अन्यत्र शुक्र ने सेना के विभिन्न अंगों की संख्या के संदर्भ में बैलों, ऊंटों एंव बैलगाड़ियों का भी उल्लेख किया है, जो सेना के मुख्य अंग नहीं हैं, अपितु सहायक कार्य (भार वाहन, रसद आपूर्ति आदि) करने वाले अंग हैं। इस प्रकार उन्होंने मूलतः चतुरंग बल की परम्परागत धारणा को ही मान्यता दी है। कौटिल्य ने भी चतुरंग बल को धारणा को स्वीकारा है।[8]

आचार्य शुक्र ने पैदल सेना व वाहनयुक्त सेना से सम्बन्धित अनेक पदाधिकारियों का उल्लेख किया है। सेना का सर्वोच्च अधिकारी सचिव है, जो मंत्रिपरिषद् का भी सदस्य है। इस पद पर अनेक गुणों से सम्पन्न व्यक्ति की नियुक्ति की जाती थी। आचार्य कौटिल्य, वृहस्पति, मनु, सोमदेवसूरि आदि ने सेना का सर्वोच्च अधिकारी सेनापति बताया है और उसकी योग्यताओं पर प्रकाश डाला है।[9]

चतुरंग बल में पैदल सेना के बाद गजसेना, रथ सेना व अश्वसेना का स्थान होता है। आचार्य शुक्र ने गजसेना पर विस्तार से लिखा है। उन्होंने चार प्रकार के गज स्वीकारें हैं- भद्र, मन्द्र, भृग तथा मिश्र; और इनमें से प्रत्येक के अंगों के माप तथा उनके विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख किया है।[10] इसके अतिरिक्त सर्वोत्तम गज के लक्षण भी बताये हैं। शुक्राचार्य द्वारा प्रस्तुत इस विस्तृत विवरण को आधार मानकर प्रो. सरकार ने मत व्यक्त किया है कि, ''भारत में गजों से सम्बन्धित शास्त्र (विज्ञान) अत्यधिक विकसित रहा है।''

शुक्रनीतिसार ने रथ-सेना का अति संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में मात्र राजा के रथ का विवरण मिलता है। शुक्र एवं कौटिल्य ने यह स्वीकारा है कि रथाध्यक्ष को अश्वाध्यक्ष की तरह ही अश्वों से सम्बन्धित ज्ञान से युक्त होना चाहिए और रथाध्यक्ष के रूप में उसे रथों से सम्बन्धित विशिष्ट ज्ञान भी होना चाहिए। आचार्य शुक्र ने चतुरंग बल में अश्व सेना को पर्याप्त महत्व प्रदान किया है। उन्होंने अश्वों के विभिन्न प्रकारों, चिन्हों व लक्षणों पर विस्तृत प्रकाश डाला है। अश्व-शिक्षक की योग्यताओं तथा उससे सम्बन्धित निर्देशों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त अश्वों के विभिन्न भोजन और उनके प्रभाव के साथ ही अश्वों की विभिन्न गतियों का विवरण प्रस्तुत किया है। शुक्र ने अश्व सेना के अन्तर्गत अश्व सवार, अश्व शिक्षक तथा अश्व सेवक के पद भी स्वीकारे हैं और उनके कार्यों पर प्रकाश डाला है। शुक्र ने अश्वसेना को अति तीव्र गतिवाला मानकर उसे दूरस्थ शत्रुगणों के समीप जाकर आक्रमण करने का उत्तम साधन बताया है।[11]

आचार्य वृहस्पति ने अश्वसेना के सर्वोच्च अधिकारी अश्वाध्यक्ष की योग्यताओं का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने अश्वाध्यक्ष के साथ ही अश्वसेना के अन्य अधिकारियों व कर्मचारियों का भी उल्लेख किया है और अश्वों को जातियों, भोजन, चिकित्सा, गतियों, प्रशिक्षण आदि पर पर्याप्त लिखा है।

चतुरंग बल के सहायक अंग वृष तथा ऊष्ट्र हैं। शुक्र ने उनके लक्षणों पर प्रकाश डाला है, किन्तु यह विवरण अश्वों की तुलना में बहुत सीमित है। उन्होंने गज व अश्व के साथ ही ऊष्ट्र व वृष की अधिकतम आयु 25 वर्ष, बाल्यावस्था 05 वर्ष, मध्यावस्था 16 वर्ष व वृद्धावस्था का उल्लेख किया है[12] इनके नियंत्रण के उपाय बताये हैं और उनके

अनुकूल जलवायु वाले निवास-स्थान सुझाये हैं। तत्कालीन परिस्थितियों में सेना की रसद आदि की पूर्ति की दृष्टि से इन पशुओं का विशिष्ट महत्व था। इस दृष्टि से शुक्र का मत है कि भार-वाहन हेतु गज, उष्ट्र, वृष तथा अश्व में उत्तरवर्ती की तुलना में पूर्ववर्ती श्रेष्ठ होता है। किन्तु वर्षाकाल के अतिरिक्त अन्य कालों में भार-वाहन हेतु सर्वश्रेष्ठ साधन गाड़ी (बैलगाड़ी) होती है।[13]

सेना की कुल संख्या व उसके विभिन्न अंगों में अनुपात- प्राचीन भारत के साहित्य, राजनीति एवं इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजा एवं सम्राट विशाल सेनायें रखते थे। जहां तक शुक्रनीतिसार का सम्बन्ध है, इस ग्रन्थ ने स्पष्टतः यह नहीं बताया है कि राजा को सेना की कुल संस्था कितनी रखनी चाहिए, किन्तु इस ग्रन्थ ने इस विषय में ऐसा बुद्धि-संगत सूत्र अवश्य दिया है, जिसके प्रकाश में कोई राजा अपनी अर्थ-शक्ति के अनुरूप अपनी सेना की कुल संख्या तथा उसके विभिन्न अंगों के अनुपात को स्वयं ही निश्चित कर सकता है।

शुक्रनीतिसार में उपलब्ध विवरण के क्रम को ध्यान में रखते हुए सर्वप्रथम हम इस विषय पर विचार करेंगे कि शुक्र के अनुसार सेना के विभिन्न अंगों में पारस्परिक आदर्श अनुपात क्या होना चाहिए। इस दृष्टि से शुक्र ने अश्व सेना को आधारभूत इकाई मानते हुए अन्य सेनाओं का अनुपात बताया है-

1. अश्व सेना से चार गुनी पैदल सेना होनी चाहिए।
2. अश्व सेना का 1/5 भाग वृषभों की संख्या होनी चाहिए।
3. अश्व सेना का 1/8 भाग ऊष्ट्र होने चाहिए।
4. अश्व सेना का 1/32 भाग गज सेना होनी चाहिए। यह उष्ट्र का 1/4 भाग होगी।
5. अश्व सेना का 1/64 भाग रथ होने चाहिए। इस प्रकार यह गज का 1/2 भाग होंगे।
6. अश्व सेना का 1/32 भाग वृहन्ननाल (तोपें) होनी चाहिए। इस प्रकार वृहन्ननाल की संख्या रथ से दुगनी होगी।[14]

विभिन्न सेनाओं के उपरोक्त अनुपात का सरलीकरण करते हुए शुक्र ने कहा है, "राजा सेना में पैदल सेना के आधिक्य को बनाये रखे, अश्वों की मध्यम मात्रा रखे, गज शक्ति की न्यून मात्रा रखे, वृष तथा उष्ट्र की सामान्य संख्या रखे, किन्तु गज की अधिकता कदापि नहीं रखे।" इस विवरण से स्पष्ट है कि उन्होंने विभिन्न सेनाओं की मात्रा की दृष्टि से प्रथम स्थान पैदल सेना को, द्वितीय स्थान अश्व सेना को, तृतीय स्थान वृष व उष्ट्र सेना को और चतुर्थ स्थान गज सेना को दिया है। संभवतः शुक्र ने अपने युगानुसार ही सेना के विभिन्न अंगों को महत्व दिया है, किन्तु इस विवरण में यह दोष भी निहित है कि शुक्र ने रथ सेना और तोप खाने का उल्लेख ही नहीं किया है।[15]

शुक्र ने अपने उपरोक्त विवरण को अधिक स्पष्ट करते हुए बताया है कि एक लाख कर्ज वार्षिक आय वाले राजा को कुल कितनी सैन्य शक्ति धारण करनी चाहिए। वस्तुतः शुक्र का यह विवरण सेना के विभिन्न अंगों की संख्या के साथ ही उसकी कुल मात्रा को भी प्रकाशित करता है। किन्तु यह विवरण 'एक लाख कर्ज वार्षिक आय' को आधार बनाकर सूत्र-रूप में प्रस्तुत किया गया है, अतः यह सुनिश्चित है कि विभिन्न आय वाले राज्यों की सैन्य शक्ति भी विभिन्न होगी।

निष्कर्ष- अध्ययन से स्पष्ट है कि शुक्र ने सेना के अंग के रूप में पशुओं के विषय में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। राजनीतिक प्रकृति के इस ग्रन्थ में ऐसा विशद् विवरण बहुत तर्क-संगत प्रतीत नहीं होता है, किन्तु वास्तव में यह सेना सम्बन्धी विषय-सामग्री के अनुरूप ही है और तत्कालीन युद्ध-प्रतिष्ठान के प्रशासन के बारे में एक यथार्थ व ठोस तस्वीर को प्रस्तुत करने के साथ ही जन्तु-जगत के बारे में भारतीयों के विशिष्ट ज्ञान का परिचय भी देता है। शुक्र ने सैन्य बल धारण करने की दृष्टि से एक ऐसा आदर्श सूत्र प्रस्तुत किया है, जिसके आधार पर विभिन्न आय वाले राजा अपनी सेनाओं का संगठन कर सकते हैं। ज्ञातव्य है कि सैन्य शक्ति धारण करने के संदर्भ में ऐसा वृद्धि-सम्मत विवरण अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। शुक्र के इस विवरण से यह भी स्पष्ट है कि उन्होंने इस दृश्य को समझ लिया था कि किसी राज्य की अर्थ-शक्ति और सैन्य शक्ति में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, कोश (अर्थ-शक्ति) तथा सेना एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. शुक्र 1, श्लोक 62, पे.10
2. शुक्र 4, श्लोक 4, पे.327
3. शुक्र 4, श्लोक 63, पे.236
4. शुक्र 4, श्लोक 2, पे.327
5. शुक्र 4, श्लोक 10-11, पे.328
6. शुक्र 4, श्लोक 15, पे.329
7. शुक्र 4, श्लोक 114, पे.329
8. शुक्र 4, श्लोक 3, पे.327
9. शुक्र 2, श्लोक 84, पे.69
10. शुक्र 4, श्लोक 34, पे.332
11. शुक्र 4, श्लोक 130-31, पे.76
12. शुक्र 4, श्लोक 155-56, पे.350
13. शुक्र 4, श्लोक 176, पे.354
14. शुक्र 4, श्लोक 21-22, पे.330
15. शुक्र 4, श्लोक 23, पे.330

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

सारण जिला में सब्जी उत्पादन एवं विकास की संभावनाएँ : एक भौगोलिक विश्लेषण

• संजय कुमार

सारांश- विश्व के लगभग प्रत्येक देश में सब्जी का उत्पादन किया जाता है, सब्जियों का हमारे दैनिक भोजन विशेषकर शाकाहारी जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। ये हमारे भोजन को स्वादिष्ट, पौष्टिक और संतुलित बनाती है। वर्तमान समय कृषि आधरित अर्थव्यवस्था में सब्जी की खेती का महत्वपूर्ण स्थान है। सारण जिला के कुल गाँव के क्षेत्रफल 653232.82 है, इसके कुल क्षेत्रफल के 4.3 प्रतिशत भूमि पर सब्जी की खेती होती है। इसकी खेती से किसानों के आय में वृद्धिके साथ रोजगार के अवसर में भी बढ़ोत्तरी होती है।

मुख्य शब्द - सब्जी उत्पादन, कुपोषण, भूमि, जलवायु, आलू, प्याज, मटर

वर्तमान समय में विश्व जनसंख्या में तेजी से वृद्वि हो रही है, एक अनुमान के मुताबिक पूरे विश्व में लगभग 200 मिलियन लोग कुपोषण के किसी-न-किसी रूप से ग्रसित है, इसके लिए आवश्यक है नियमित रूप से शरीर को पौष्टिक आहार मिले, इस संदर्भ में सब्जी की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, सब्जियाँ न केवल आहार की गुणवत्ता बढ़ाती है बल्कि शरीर को आवश्यक पोषक तत्व एवं प्रोटीन की भी प्राप्ति होती है। भारत एक सब्जी उत्पादक देश है और यहाँ सब्जी का उत्पादन प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। सारण जिला की अवस्थिति मैदान क्षेत्रमें है और यहाँ विभिन्न सब्जियों की खेती के लिए उपर्युक्त भूमि, जलवायु, खाद, उर्वरक, सिंचाई की सुविध की उपलब्धता है, हालांकि फिर भी यह जिला सब्जियों के उत्पादन में काफी पिछड़ा है। वर्तमान समय में सारण जिला में सब्जी की खेती जीवन-निर्वाह के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि व्यापार दृष्टिकोण की ओर अग्रसर है।

उद्देश्य-

1. सारण जिला के प्रमुख सब्जियों के उत्पादन का आँकड़ना प्रस्तुत करना।
2. सारण जिला में सब्जियां के उत्पादन से संबंध्ति समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत करना।
3. सारण जिला के विभिन्न प्रखण्डों में सब्जी की खेती के अंतर्गत संलग्न भूमि का विवरण प्रस्तुत करना है।
4. सारण जिला के अंतर्गत सब्जी की खेती के विकास के संभावनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करना।

• **विभागाध्यक्ष भूगोल विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा**

अनुसंधान-प्रस्तुत शोध में द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है साथ ही अनुभवात्मक तथा विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए इंटरनेट की भी मदद ली गई है।

परिकल्पना-

1. भूमि, जलवायु, सिंचाई, साधनों का सब्जी के खेती पर प्रभाव पड़ता है।
2. परिवहन एवं विपणन व्यवस्था शीत भंडारण की उपलब्ध्ता से सब्जी 'उत्पादन' को प्रोत्साहन मिलता है।
3. सारण जिला में सब्जी के अंतर्गत संलग्न भूमि के वितरण में असमानता है।

अध्ययन क्षेत्र में सब्जी की खेती से संलग्न भूमि- सारण जिला में कुल 20 प्रखंड है और सभी प्रखंडों सब्जी उत्पादन हेतु अनुकूल परिस्थिति पाई जाती है, अर्थात् सभी प्रखण्डों में सब्जी की खेती की जाती है। नीचे तालिका में सारण जिले के प्रत्येक प्रखंडों के गाँवों का क्षेत्रफल और सब्जियों के अंतर्गत संलग्न भूमि का विवरण स्पष्ट है।

तालिका संख्या -01

सारण जिला : प्रखण्डवार सब्जियों के खेती में संलग्न भूमि का विस्तार, 2011-12

क्र.स.	प्रखण्ड	गाँवों का क्षेत्रफल (एकड़ में)	सब्जियों की खेती में संलग्न भूमि	
			एकड़ में	प्रतिशत में
1.	सदर छपरा	52523.33	1518.44	2.9
2.	रिविलगंज	31198.51	778.62	2.5
3.	माँझी	50442.20	572.01	1.1
4.	एकमा	36642.52	890.26	2.4
5.	बनियापुर	41838.83	1327.02	3.2
6.	लहलादपुर	13259.82	2511.75	18.9
7.	जलालपुर	31877.40	1162.60	3.6
8.	मशरख	33054.00	829.00	2.5
9.	पानापुर	25806.33	669.60	2.6
10.	गरखा	42047.75	1335.65	3.2
11.	नगरा	12943.05	1141.09	8.8
12.	मढ़ौरा	37688.00	2038.65	5.4
13.	अमनौर	30151.96	2152.84	7.1
14.	तरैया	24564.33	2069.18	8.4
15.	इसुआपुर	24704.77	1053.02	4.3
16.	परसा	25943.49	772.15	3.0
17.	मकेर	18250.91	462.10	2.5
18.	दरियापुर	53084.17	2220.33	4.2
19.	दिघवारा	22147.09	2558.13	11.6
20.	सोनपुर	45064.36	1898.67	4.2
	कुल	653232.82	27964.11	4.3

स्त्रोत : सारण जिला सांख्यिकी पदाधिकारी, अपर समाहर्ता सारण

उपरोक्त तालिका को देखने से स्पष्ट होता है कि सारण जिला के अंतर्गत आने वाले गाँवों का क्षेत्रफल 653232.82 एकड़ है, इसमें से 27964.11 एकड़ क्षेत्र में सब्जी की खेती होती है, अर्थात् कुल 4.3 प्रतिशत भूमि पर सब्जी की खेती होती है।

सारण जिला में सबसे अधिक सब्जी की खेती करने वाले प्रथम प्रखण्ड लहलादपुर 18.9 प्रतिशत भूमि पर, दिघवारा 11.6 प्रतिशत भूमि पर, नगरा 8.8 प्रतिशत

भूमि पर, तरैया 8.4 प्रतिशत भूमि पर, अमनौर 7.1 प्रतिशत भूमि पर क्रमशः है। यहाँ अध्कि सब्जी की खेती होने का मुख्य कारण है।

परिवहन के मार्गो द्वारा सारण जिला मुख्यालय, पटना, सिवान आदि क्षेत्रों से जुड़ा होना, उत्पादित क्षेत्रके नजदीक क्रय-विक्रय के लिए बाजार की अवस्थिति, सघन बसा क्षेत्रा होने के कारण सब्जी की माँग अधिक है।

मांझी 1.1 प्रतिशत भूमि पर, एकमा 2.4 प्रतिशत भूमि पर, रिविलगंज, मशरख, मकेर 2.5 प्रतिशत भूमि पर, पानापुर 2.6 प्रतिशत भूमि पर, सदर छपरा 2.9 प्रतिशत भूमि पर, सारण जिले में सबसे कम सब्जी की खेती क्रमशः की जाती है। इन प्रखंडों में सब्जी की खेती कम भूमि पर की जाती है, इसके कई कारण है, इन क्षेत्रों में वृहद भूमि पर खाद्यान्न फसलों का उत्पादन होता है, बाढ़ से इन क्षेत्रों की बड़ी भूमि प्रभावित होती है, पानापुर, मांझी, मकेर, रिविलगंज के तो कई क्षेत्रसालभर जलमग्न रहते है। पुनः पानापुरः मकेर जैसे क्षेत्रा सारण जिला मुख्यालय से सुदुरवर्ती क्षेत्र है।

सारण जिला में सब्जी का उत्पादन (2017-2018)

सब्जियों का किस्म	क्षेत्रापफल (हेक्टेयर में)	उत्पादन(टन में)
आलू	13602	353244
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	4	3
बैंगन	1814	38789
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	11	10
गोभी	2914	38173
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	6	9
टमाटर	1613	33550
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	8	11
भिंडी	2104	25038
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	7	10
लौकी	1011	20220
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	10	9
पत्तागोभी	915	18401
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	12	12
प्याज	1014	18252
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	21	28
हरी मिर्च	1214	13451
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	2	3
मूली	501	7515
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	1	1
मटर	413	2581
सारण जिले का बिहार राज्य में रैंक	1	1

Source : Bihar District Fact bookTN Saran District

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि सारण जिला में विभिन्न प्रकार के सब्जी का उत्पादन होता है, जिसमें सबसे अधिक आलू का उत्पादन होता है। आलू उत्पादन में सारण जिला का बिहार में तीसरा स्थान है, इसी प्रकार अन्य सब्जियां का उत्पादन क्रमशः बैंगन 38783 टन, गोभी 38173 टन, टमाटर 3350 टन, भिंडी 25038 टन, लौकी 20220 टन, पत्तागोभी 1840 टन, प्याज 18252 टन, हरी मिर्च 13451 टन, मूली 7515 टन उत्पादन होता है। मूली और मटर के उत्पादन में सारण जिला का पूरे बिहार में प्रथम स्थान है, तथा हरीमिर्च के उत्पादन में दूसरा स्थान है।

2017-18 में सारण जिला के अंतर्गत 13602 हेक्टेयर क्षेत्रफल में आलू की खेती खेती की गई, जबकि पूरे बिहार में 304780 हेक्टेयर भूमि पर आलू की खेती की गई। इस प्रकार बिहार में आलू के अंतर्गत की जाने वाली संलग्न भूमि में सारण जिला का चौथा स्थान था। सारण जिला में मूली और मटर के अंतर्गत पूरे बिहार में सबसे अधिक संलग्न भूमि है। 2017-18 हरी मिर्च की खेती भी सारण जिला में 1214 हेक्टेयर क्षेत्रा में की गई जो पूरे बिहार में दूसरा स्थान है।

सारण जिला में सब्जी के उत्पादन की समस्याएँ-

1. अध्ययन क्षेत्रमें सब्जी की खेती के अंतर्गत जोतों का आकार निरंतर घटता जा रहा है, क्योंकि भूमि से संबंधित प्रचलित उत्तराधिकार के वंशानुगत कानून के कारण सारण जिले में जोतों के आकार का निरंतर विभाजन हो रहा है।
2. अध्ययन क्षेत्र में अधिकतरछोटे और सीमांत किसान है, सब्जी की खेती के लिए कृषि यंत्र, उत्तम खाद, बीज कीटनाशक दवाएं आदि में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। यहाँ अधिकांश कृषकों के पास पूँजी की कमी है, इसका परिणाम सब्जी के उत्पादन एवं उत्पादकता पर दिखता है।
3. सारण जिले में वातावरण के अनुसार सब्जियों की उन्नत प्रौद्योगिकी को उन्नत बनाने के लिए बहुत कम शोध कार्य किया गया है।
4. अध्ययन क्षेत्र में बिचौलियों की अधिकता एवं सब्जी क्रय-विक्रय सहकारी समितियों का अभाव दिखता है।
5. अध्ययन क्षेत्र के किसानों की सबसे बड़ी समस्या है, मौसमी सब्जियों के उत्पादन की अधिकता फलतः मंडियों में सब्जियों की अधिक उपलब्धता रहने से मूल्यों में कापफी गिरावट होती है और कृषकों को कापफी नुकसान उठाना पड़ता है।

विकास की संभावनाएँ- सारण जिला में सब्जी का उत्पादन प्राचीन काल से ही हो रहा है, इसकी अवस्थितिकी मध्य गंगा मैदान में उपजाउ क्षेत्र में है, लेकिन जिस मात्रा में सब्जी का उत्पादन होना चाहिए उस मात्रा में नहीं हो पा रहा है। सारण जिला में सब्जी उत्पादन की असीम संभावनाएँ है, आबादी सघन है और सब्जी की माँग भी अधिक है। सब्जी की फसल एक नकदी फसल है, यहाँके किसान सब्जी उत्पादन की गुणवत्ता एवं खाद के कारण बाजार में अच्छा मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।

किसी भी फसल के उत्पादन के लिए भूमि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, सारण जिले में कृषि से संलग्न भूमि 653232.82 एकड़ है। इसमें से 27964.11 एकड़ क्षेत्र (4.3 प्रतिशत में) भूमि पर सब्जी की खेती होती है, जरूरत है इस क्षेत्र में सब्जी के अंतर्गत और अधिक भूमि का विस्तार किया जाय तो इसका परिणाम बेहतर मिल सकता है और इस क्षेत्र में जलोढ़ मिट्टी का विस्तार है, इस मिट्टी पर विभिन्न प्रकार की सब्जियों का उत्पादन किया जाता है।

अध्ययन क्षेत्र की जलवायु भी सब्जी उत्पादन हेतु अनुकूल है, यहाँ ग्रीष्म, वर्षा और शीत तीनों ऋतुओं में सब्जी का उत्पादन किया जाता है। यहाँ ग्रीष्म ऋतु में खीरा, ककड़ी, भिंडी, लौकी, परवल आदि सब्जियाँ वर्षा ऋतु में तरोई, नेनुआ, लौकी आदि

सब्जियाँ तथा शीत ऋतु में पालक, मूली, आलु, प्याज, पफुलगोभी आदि सब्जियाँ बोयी जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मौसम और तापमान के अनुसार यहाँ विभिन्न प्रकार की सब्जियों का उत्पादन होता है।

अध्ययन क्षेत्र में किसानों द्वारा रासायनिक खाद व जैविक खाद में सम्मिलित प्रयोग द्वारा खेती की जा रही है। सारण जिले में कुल पशुओं की संख्या 226710 है, अतः यहाँ गोबर से बने जैविक खाद का बेहतर विकल्प मौजूद है। बिहार सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण 2021-21 के अनुसार सारण जिला के किसानों द्वारा 2018-19 में यूरिया, DAP, अमोनिया सल्पफेट, म्यूरिएट ऑफ पोटाश का 92.5 हजार टन तथा नाइट्रोजन फास्फोरस, पोटाश का 45.9 हजार टन खपत किया गया। ये आँकड़े बताते है सारण जिला के किसानों द्वारा कृषि के लिए मृदा को पोषक तत्व (रासायनिक खाद और जैविक खाद) संतुलित और सुलभ रूप मं उपलब्ध कराया जा रहा है। अतः यहाँ सब्जी के उत्पादन और विकास की संभावनाएँ है।

सब्जी के पौधें के विकास के लिए जल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, नमी के अभाव में सब्जी फसल की उत्पादन एवं उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, इस संदर्भ में पौधें को आवश्यक जलापूर्ति सुनिश्चित करने के लिए सिंचाई आवश्यक हो जाती है। 2018-19 में सारण जिला में कुल सकल सिंचित क्षेत्र 131.94 हजार हेक्टेयर क्षेत्र था, जिसमें नहर के अंतर्गत 29.3 हजार हेक्टेयर, तालाब के अंतर्गत 0.38 हजार हेक्टेयर नलकूप 101.99 हजार हेक्टेयर तथा अन्य स्त्रोतों के अंतर्गत 0.55 हजार हेक्टेयर क्षेत्र सिंचित था। इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि सारण जिला में सिंचाई की सुविधा प्राप्त जिला है। अतः यहाँ सब्जी उत्पादन एवं विकास की असीम संभावनाएँ मौजूद है।

सब्जियों के कुछ प्रजाति को छोड़कर अधिकांश सब्जियाँ शीघ्र ही नष्ट होने वाली वस्तुएंहै, इन्हें शीघ्रता से माँग वाले क्षेत्रों में पहुंचाना आवश्यक होता है। सारण में विभिन्न प्रकार के यातायात के मार्गो का समुचित विकास हुआ है। सड़क, रेलमार्ग, जलमार्ग से यहाँ के किसान अपने सब्जी उत्पादन को सब्जी माँग वाले क्षेत्रों में आसानी से पहुंचाते है। जैसे-NH संख्या-19, (हाजीपुर, छपरा, मांझी, उत्तर प्रदेश), NH संख्या-85 (छपरा, एकमा, पचरूखी, सीवान), NH संख्या-101 (छपरा, बनियापुर, महम्मदपुर), NH संख्या-102 (छपरा, रेखाघाट, मुजफ्फरपुर सारण जिला से गुजरती है और इन राष्ट्रीय राजमार्गो से कई राज्य स्तरीय राजमार्ग और ग्रामीण स्तरीय मार्ग भी जुड़ी है, इन्हीं मार्गो द्वारा अध्ययन क्षेत्र के किसान अपने समीपवर्ती माँग आधारित क्षेत्रों मेंअपने विभिन्न प्रकार के सब्जियों को आसानी से पहुंचाते है।

सारण जिला के अंतर्गत गंगा, गंडक, घाघरा जैसे नदियाँ प्रवाहित होती है, वर्तमान समय में ये नदियाँ नौकागम्य है और इनसे स्थानीय यातायात और आवागमन होता है। अध्ययन क्षेत्र के किसानों द्वारा इन जलमार्गो से सब्जियों का आयात-निर्यात किया जाता है। जैसे- गंगा, नदी द्वारा सोनपुर, दिघवारा, डोरीगंज, डुमरी आदि क्षेत्राों में सब्जियों का व्यापार होता है। अतः उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि यातायात के विभिन्न मार्गो द्वारा अध्ययन क्षेत्र के किसानों द्वारा सब्जियों का व्यापार होता है। अतः यहाँ

सब्जी उत्पादन का भविष्य उज्जवल है।

अध्ययन क्षेत्र के किसानों को समीपवर्ती क्षेत्रों में बाजार की सुविधा की भी उपलब्धता है जैसे- सारण जिला के अंतर्गत छपरा शहर मुख्य बाजार है, प्रखंड मुख्यालयों के अंतर्गत मढ़ौरा, रिविलगंज, सोनपुर, बनियापुर आदि क्षेत्रों में बाजार की उपलब्धता है इसके अतिरिक्त मैदानी क्षेत्र में अवस्थिति के कारण आबादी सघन है। फलतः किसानों को ग्रामीण क्षेत्रों में भी लघु बाजार की उपलब्ध हो जाती है। अतः किसानों द्वारा सब्जियों को तोड़कर इन मंडियों में सीध क्रय-विक्रय किया जाता है।

अध्ययन क्षेत्र के किसानों को बिहार सरकार के कृषि रोडमैप-3 (2017-22) के अंतर्गत मुख्यमंत्री तीव्र विस्तार योजना के तहत सब्जी की खेती के लिए सस्ते दामों पर उन्नत किस्म के बीज उपलब्ध कराया जा रहा है, इससे किसानों को अध्कि सब्जी उत्पादन के साथ ज्यादा लाभ मिलेगा।

सारण जिला के विभिन्न क्षेत्रों जैसे- नयागाँव, मढ़ौरा, गड़खा, बनियापुर, सोनपुर, एकमा, मशरख आदि क्षेत्रों में शीत भंडारण (कोल्ड स्टोरेज) की अवस्थिति है, इन भंडारणों में शीघ्र नष्ट होने वाली सब्जियों को लंबी अवधि तक सुरक्षित रखा जा सकता है, जब किसी विशेष सब्जी उत्पादन का मौसम नहीं रहने की स्थिति में उस सब्जी को बाजार में उपभोक्ताओं के पास बेचकर अच्छा मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार शीत भंडारण की उपलब्ध्ता से अध्ययन क्षेत्र में सब्जी उत्पादन की संभावना प्रबल दिखती है।

निष्कर्ष- निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि सारण जिला में सब्जी उत्पादन हेतु वे सभी भौगोलिक परिस्थितियाँ भूमि, जलवायु, परिवहन, बाजार आदिउपलब्ध है। जरूरत इस बात की है कि राज्य सरकार द्वारा अध्ययन क्षेत्र में वैज्ञानिक तरीकों से सब्जी उत्पादन को प्रोत्साहन दिया जाए, जिससे इसका बेहतर परिणाम निकलेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. बिहार डिस्ट्रिक्ट फैक्ट बुक सारण डिस्ट्रिक्ट, पृ-स- 102
2. बिहार आर्थिक सर्वेक्षण 2020-21, पृ-स- 133, 135,138
3. कुरूक्षेत्रा पत्रिका, 2013, ग्रामीण विकास मंत्रालय, पृ-स-33-36
4. कुरूक्षेत्रपत्रिका जून 2012, प्याज का उत्पादन ग्रामीण विकास मंत्राालय, नई दिल्ली, पृ-स- 47
5. भारतीय कृषि का अर्थतंत्र मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, पृ-स-535

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

वर्तमान कला में भारतीय कला की सार्थकता एवं महत्व

• शोभित कुमार गंगवार

सारांश- भारतीय कला की विकास यात्रा उन आदिम गुफाओं से प्रारम्भ होता है क्योंकि मानव के मनोभावों का मूर्त रूप हैं कला। ये दोनों एक दूसरे के पूरक है यही कारण है कि कला इतिहास मानव सभ्यता एवं विविध कला रूप आपस में जुड़े हुए हैं कि इन्हे अलग करके देखना असम्भव है। कला मानव सभ्यता को संजोने समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इक्कीसवीं सदी तक मनुष्य की यात्रा में सृजन के अनेकों कला रूप सामने आते रहे हैं। कलाकार अपने मनोभावों को अभिव्यक्ति करने हेतु नित-नवीन तकनीकों को स्वीकार करते हुए कला यात्रा को आगे बढाने में अपना सत्त योगदान दे रहा है। वर्तमान समय में कलाकार एक विशेष किस्म के मानव के रूप में जाना जाता है जबकि लोकसमाज में इससे उलट हर मानव एक विशेष किस्म का कलाकार हुआ करता है। लोक संस्कृति को तीन प्राथमिक गुणों से पहचाना जा सकता है जीवन शक्ति या जीवन्तता, प्रामाणिकता और अनामिता। भारतीय कला क्षणिक आनन्द तक सीमित नहीं है वह तो परमानन्द की प्राप्ति का साधन है। भारतीय कलाकारों के अन्तर्गत धार्मिक, नैतिक तथा आदर्शवादी विचार धाराओं का पूर्ण विधान निश्चित है। कला की अनवरत यात्रा आदिम गुफाओं से प्रारम्भ होकर आज के कलाकार के व्यक्तित्व विकसित स्टूडियों तक की यात्रा है जिसमें अनेक प्रकार की नित-नवीन तकनीकों का प्रयोग व उत्थान एवं पतन के इतिहास को समाहित करते हुए, भारतीय कला अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सृजन के स्वरूप में कुछ नयापन लाने के साथ ही विश्व मान्य होने की आंकाक्षा, आधुनिकवादी कला के विश्वभाषा का दर्जा देना, भारतीय कला को सार्वभौम बनाता है यही भारतीय कला की सार्थकता एवं महत्व है।

मुख्य शब्द - भारतीय कला, लोक-कला, कलाकार, कला में नये प्रयोग, कला का महत्व एवं सार्थकता

कलाकार के मनोभावों की मूर्त रूप हैं कला। दोनों एक दूसरे के पूरक है यही कारण है कि कला इतिहास मानव सभ्यता एवं विविध कला रूप आपस में इतने जुड़े हुए हैं कि इन्हे अलग करके देखना असम्भव है। कला मानव सभ्यता को संजोने समझने का एक

• **प्रवक्ता, व्यवहारिक कला विभाग, स्कूल ऑफ फाईन आर्ट्स एण्ड परफार्मिंग आर्ट्स छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर**

महत्वपूर्ण माध्यम है। इसे सुव्यवस्थित रखने का दायित्व मानव का स्वयं है। इक्कीसवीं सदी तक मनुष्य की यात्रा में सृजन के अनेकों कला रूप सामने आते रहे हैं। आज भी कलाकार अपनी अभिव्यक्ति हेतु नित-नवीन तकनीकों को स्वीकार करते हुए कला यात्रा को आगे बढाने में अपना सतत् योगदान दे रहा है। आधुनिक समाज में कलाकार एक अलग व्यक्ति, एक विशेष किस्म के आदमी के रूप में जाना जाता है जबकि लोकसमाज में इससे उलट हर आदमी एक विशेष किस्म का कलाकार हुआ करता है। लोक संस्कृति को तीन प्राथमिक गुणों से पहचाना जा सकता है जीवन शक्ति या जीवन्तता, प्रामाणिकता और अनामिता। वह जीवन की लय के स्पन्दन को व्यक्त करता है और चूंकि वह जीवन के गहरे बोध पर आधारित होता है इसलिए वह एक दिमागी फार्मूला या नुस्खा भर नहीं होता और इसलिए उसमें जादुई सरलता और प्रमाणिकता भी होती है तथा वह काफी मिथ्या गूंज पैदा नहीं करता। वह कभी क्षीण नहीं होता, भारतीय कला की अनवरत यात्रा उन आदिम गुफाओं से प्रारम्भ होकर आज के कलाकार के व्यक्तित्व विकसित स्टूडियों तक की यात्रा है जिसमें अनेक उत्थान एवं पतन के इतिहास समाहित है।[1]

मौजूदा कला को किन्हीं भी निर्णीत मान्यताओं की कसौटी पर नहीं परखा जा सकता। अब तक जिन मंजिलों को तैर करती हुई कला आगे बढ़ी है, नवजागरण के मुख्य सोपान उसके क्रमिक विकास में प्रतिफलित दृष्टिगोचर होते हैं। यह सही है कि अतीत में से उभरते अजस्त्र कलास्रोत का सुराग मिल चुका है और उससे अनुप्रेरणा भी मिलती है, तथापित आज के कलाकार की पैनी, सजग दृष्टि सब कुछ समेटना चाह कर भी किसी एक ही तथ्य पर टिक नहीं पाती भारतीय हो या विदेशी, कल्पनीय हो कि अकल्पनीय, गहरी अनुभूतिशीलता से प्रेरित हो चाहे छिछली उच्छि व शक्तिवादी वृत्ति से, वह कुछ भी अच्छा-बुरा व्यक्त करने से नहीं हिचकता। नित नये प्रयोगों का आवेश और ख्वाहिश उसमें जग गई हैं। भले ही उसमें चित्रण समता नगण्य हो, पर वह कुछ नया खोजने व पाने को उत्सुक है, एक अपरितृप्ति और बेचैनी की भावना उसे आगे बरबस ढकेल रही है। परन्तु यदि हम पुरानी कला वृत्ति पर नजर डाले तो पाते है पहले की कला यानी परम्परागत एवं प्रतीकात्मक कला समझने में एक आनन्द, सौन्दर्य, सुखदता एवं रस प्रदान करने में वर्तमान कला का कोई सानी नही है।

भारतीय कला का ही एक अंग 'लोक कला' जनसामान्य की कला कहलाती है। लोक कला एक ऐसी कला है, जिसे न तो किसी की नकल करके ओर न ही किसी से प्रेरणा लेकर निर्मित किया जा सकता है, वरन यह तो मनुष्य की अन्दर की अपनी सृजनात्मक कला प्रवृत्ति की प्रेरणा से उत्पन्न हुई है। जब मनुष्य पशुओं की भांति गुफाओं में रहता था तब भी लोक कला का प्रचलन था, किन्तु आज जब मनुष्य आधुनिक हो गया है तब भी कला प्रचलित है। इस कला ने अपने आस-पास की वस्तुओं को सुन्दर ढंग से सुसज्जित करना शुरू कर दिया तथा सुन्दरता का जीवन से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। लोक कला भी इसलिये एक जीवन्त कला है, क्योंकि इसमें सुन्दरता का समावेश सदैव रहता है। भारत की लोककलाएं उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी यहाँ की सभ्यता है।

परम्पराओं पर आधारित यह कला शैली भारत के प्रत्येक घर आँगन में जन्मी है। लोककला को भारतीय स्त्रियों ने जीवित रखा है तथा कला बिना किसी प्रोत्साहन के ही

विकसित हुई है। इस लोक कला शैली को हमारे सामाजिक तथा धार्मिक जनजीवन के रूप में व्याप्त हो जाने का गौरव यह प्राप्त है तथा इस लोक कला शैली में सदैव सीधी–सादी कला का प्रकटीकरण होता है। लोक कलायें हमारी सांस्कृतिक परम्परा का हिस्सा है लोक कलायें संस्कृति का श्रृंगार करती हैं। वे मानव के जीवन को प्राणों के रस से आलम्बित करती हैं तथा चुनौतियों से जूझते हुये समाज को लोक कला ऊर्जा एवं चेतना प्रदान करती है।[2]

भारतीय लोक कला आज कलाकारों के आकर्षण का केन्द्र बन गई है। भारत के लोक कलाकारों ने सुघट्य एकता प्राप्त करने की खातिर इनका बड़ी कुशलता से प्रयोग किया है पश्चिम की तरह, भारत में भी लोक कलाओं के प्रति आर्कषण बढ़ रहा है, इसे भारत में सभी युगों की लोक कलाओं से प्रशंसा मिली, बिना इस बात की परवाह किये कि इसके सृजनकर्ता का उद्देश्य या इसे बनाने के पीछे उसकी बौद्विक मंशा क्या है सन् 1950 के दशक में लोककला भारतीय कलाकारों के आर्कषण का केन्द्र बन गई। क्योंकि वे अपनी कृतियों में निजी अस्मिता या फिर भारतीयता को दर्शाने के आकांक्षी थे।[3]

कला जीवन में गति व पूर्णता प्रदान करती है कला न हो जीवन निरसत्व सा लगने लगता है। "जीवन में प्रकृति लाना कला का धर्म है।"[4] भारतीय सभ्यता में कला का तात्पर्य केवल मनोविनोद अथवा भोग विलास नहीं रहा है कलात्मक आवरणों में तत्वाद, कलात्मक विस्तार और ऐतिहासिक परम्परा का प्रच्छन्न प्राधान्य ही पाया जाता है। ऑगल और तन्त्र ग्रन्थों में कला का दार्शनिक अर्थ ही महत्वपूर्ण माना गया है । चित्रकला में अन्तर्निहित त तत्ववाद को भारतीय चित्रकारों ने सदैव समझा और उसे चित्रण में प्रयोग किया है। जिसकी विश्रान्ति योग मे है, वहाँ कला बन्धन है परन्तु जिसका संकेत परमतत्व की ओर ले जाता है वही वास्तव में शुद्ध कला है।[5] भारतीय कला क्षणिक आनन्द तक सीमित नहीं है वह तो परमानन्द की प्राप्ति का साधन है।[6] भारतीय कलाकारों के अन्तर्गत धार्मिक, नैतिक तथा आदर्शवादी विचार धाराओं का पूर्ण विधान निश्चित है।[7]

भारतीय कला की सरलता इसी बात का प्रतीक है कि उसका स्वरूप संतुलित व्यवहार में निखरा है भारतीय कला में कलाकार की अनियमित सौन्दर्योकरण भावनाओं को सैद्धान्तिक परम्परा ने ही नियंत्रित किया है कलाकार भावना को परम्परा के माध्यम से किस प्रकार अंगीकार करता है यही उसकी सृजना का आधार बनता है।

भाव से रस की सारणी उसके संकलन का आधार है।[8] कला अतीत की उपलब्धियों का अनुकरण मात्र नही है। कला एक परम्परा है जिसका विकास नये भौतिक तत्वों से शुरू होता है लेकिन यह तो सत्य है कि कला अतीत की परम्परा को अपने साथ सदैव विद्यमान रखती है भारतीय कला का एक आदर्श रहा है। उसके सदैव सामाजिक व्यवस्था को मजबूत करने के लिये ही कार्य किया है।[9]

कलाकृतियाँ समझने के लिए नही होती हैं वे महसूस करने के लिए होती हैं, बौद्विकता उनका आवरण होता है और हार्दिकता उनकी आत्मा होती है। उन्हें सही मायने में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है। शब्दों में बाँधकर हम जो उनकी आलोचना विवेचना करते हैं, उनकी पहुँच केवल मस्तिष्क तक होती है जो किसी भी भाषा को समझता ही नहीं केवल भाव को महसूस करता है। अतः आदमी किसी भी कलाकृति को

तभी समझ पाता है जब उसका कलाकार के साथ भाव का साम्य हो जाता है।[10]

आज के समय में भारत के बहुत सारे कलाकारो ने पश्चिम की शैली अपनाई है। एक कलाकार होने के नाते मैं समझता हूँ कि उनका उद्देश्य पश्चिम की नकल करना नही हो सकता है। सृजन के स्वरूप में कुछ नयापन लाने के साथ ही विश्व मान्य होने की आंकाक्षा, आधुनिकवादी कला के विश्वभाषा का दर्जा देना, कला को सार्वभौम बनाना आदि इसके मूल में हो सकती हैं। कहीं-कहीं हम अति की सीमा को टूटता हुआ भी देखते हैं। कला समीक्षकों का दृष्टिकोण भी पश्चिमोन्मुखी होता दिखाई दे रहा है। सही बात यह है कि आम आदमी को इस विश्वभाषा की संज्ञा से परहेज नहीं है फिर भी वह इन कलाकृतियों में स्वंय को तो अवश्य ही ढूंढता है और अपने दिल का लगाव भी तलाशता है।

कलाकार समग्रता के साथ अपनी सरलता और कला की मौलिकता, पारिवारिकता तथा सामाजिकता एवं अपनी जीवन शैली से सराबोर रहा है बीच-बीच में ज्ञानार्जन और आजीविका के कारण वह यदा-कदा अपनी परिधि को लाँघ जाता है, तब भी उसके भीतर की एक दहलीज को अपनी और अवश्य ही खुला रखता है जिससे झाँक कर वह अपनी परम्परा और अपने समाज से मानसिक रूप से जुड़ता है और जीने के लिए थोड़ी सी प्राणवायु प्राप्त कर लेता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. श्री वाचस्पति गैरोला, कला अंक सम्मेलन पत्रिका पृ. संख्या 135
2. डॉ. शुकदेव श्रोत्रिय, कला विचार, चित्रायन प्रकाशन, मुजफ्फरनगर, संस्करण 1967 पृ. 118
3. प्राण नाथ मागो, भारत की समकालीन कला, एक परिप्रेक्ष्य, निदेशक सौमित्र मोहन, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, पृ० - संख्या 68
4. डॉ. जी.के. अग्रवाल, कला सौन्दर्य और समीक्षा शास्त्र, संजय पब्लिकेशन, आगरा, पृ. संख्या 46
5. कला अंक, वाराणसी, सम्पादकीय, पृ. संख्या 1
6. ए.के. कुमारस्वामी, भारतीय कला का इतिहास, पृ. संख्या 21
7. Sellitta Kramach, The Art of Indian through the Ages, Page 36
8. प्रोफेसर रणवीर सक्सेना, कला सौन्दर्य और जीवन, पृ. संख्या 6
9. Dr. R.K. Mukherjee, Social Fiction of Art, Page 60
10. कला दीर्घा, अप्रैल,2006 अंक 12 लखनऊ से प्रकाशित पृ. संख्या 15

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

उत्तर प्रदेश की लोक कला का संक्षिप्त विवरण

• शिवांगी कनौजिया

सारांश- लोक कला जन मानस की सहज अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। लोक मानस अपने अनेक भावो को लोक रूपों में व्यक्त करता है। इन रचनाओं में समाज की अनेक की गूढ़ बातें बड़े सहज ढंग से व्यक्त की जाती हैं। लोक कला की सरलता सहजता और स्वाभाविकता लोक मानस के गुणों का प्रतिनिधित्व करती है।लोक कला की सर्व प्रमुख विशेषता उसकी सार्वभौमिकता है। उत्तर प्रदेश भारत का एक विशाल, समृद्ध एवं गौरवशाली देश है। जिसमें भिन्न-भिन्न परंपराओं वाले क्षेत्र है। उत्तर प्रदेश की लोक कला से सामान्य जनमानस की विचारधारा उसके आत्म चिंतन का एक सशक्त माध्यम रही है। जहां समयानुसार परिवर्तन आते रहते हैं, वही लोक कला अपने उसी सहज और स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्ति का माध्यम बनी रही है।लोक कला की अभिव्यक्ति मे हिंदू समाज के तीज त्योहारों, संस्कारों, व्रतों एवं जनमानस में प्रचलित लोक कथाओं व लोकगीतों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आज भी लोक कला लोक कथाओं व लोकगीतो के विविध आयाम वर्तमान व्रतों, त्योहारों, उत्सवो तथा संस्कारों के अवसर पर देखने को मिलते हैं। जिसकी प्रस्तुति में महिलाओं का विशेष योगदान होता है, विशेषत: ग्रामीण महिला समाज का। अत: लोक कलाएं मानव जीवन के मांगल्य से भरी होती है। लोक कलाएं धार्मिक आस्थाओ और परंपराओं से जुड़ी हुई है। इसी कारण आज के आधुनिक युग में विचारों में कितनी भी आधुनिकता आ गई हो फिर भी तीज त्योहारों व पूजा पाठ मे यह संस्कृति सदैव विद्यमान रही है और यह कला आगे भी प्रचलित रहे, इसके लिए सदैव मानव प्रयासरत रहा है।

मुख्य शब्द - लोक कला, अभिव्यक्ति, माध्यम, लोक मानस, सरलता, सहजता, स्वाभाविकता

भारत संपूर्ण विश्व में अपनी लोक कला और लोक संस्कृति के कारण एक विशेष स्थान रखता है यहां की लोक संस्कृति अत्यधिक प्राचीन है जिसकी निर्मल धारा कालांतरो से बहती चली आ रही है किंतु इसका जन्म कैसे और कब हुआ, यह कहना अत्यधिक कठिन है किंतु आज आधुनिक युग के क्रम में जिन कलाओं को देखते या सुनते हैं उनका जन्म लोक कलाओं से हुआ है।

• **प्रवक्ता, चित्रकला विभाग, स्कूल ऑफ फाईन आर्ट्स एण्ड परफार्मिंग आर्ट्स छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश**

भारत एक विशाल देश है और यहां विभिन्न लोक कलाओं का भंडार है। जिनमें लोक उत्सव, लोकनाटच, लोक गायन, लोक कला व अन्य विधाये है, जिसकी अपनी विशेषताएं है, जिसके द्वारा देश और समाज की पहचान बनती है। लोक विधाओं में लोक कल्याण की भावना निहित होती है। जो हमारे समाज मे तीज- त्योहारों, रीति-रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों व संस्कारों के माध्यम से परंपरागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती रहती है।[1] यहां पर हम भारत की लोक कला के भूमि चित्रांकन के विषय में जानने का प्रयास करेंगे। भूमि चित्रांकन का अभिप्राय भूमि पर बनाई जाने वाली लोक कला से है, इस लोक कला को भारत के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। उड़ीसा में झुनती, राजस्थान व मध्य प्रदेश में मांडना, गुजरात में साथिया, महाराष्ट्र में रंगोली, बिहार में अरिपन, बंगाल व असम में अल्पना, आंध्र प्रदेश में मुगलू, हिमाचल प्रदेश में लिखनू, दक्षिण में कोलम, उत्तर प्रदेश में चौक पूरना तथा उत्तरांचल में ऐपण के नाम से जानी जाती है।

इन सभी लोक कलाओं के नाम विभिन्नता है लेकिन यह लोक कलाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई है, सभी में एक दूसरे के गुण परिलक्षित होते हैं। यह सभी लोक कलाएं भूमि व दीवारों पर बनाई जाती है और सभी में ज्यामितीय आकारों फूल पत्तियों की आकृतियों का समावेश होता है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रयुक्त होने वाली सामग्री भी एक समान है। इन सभी लोक कलाओं का चित्रांकन घर की महिलाओं द्वारा ही किया जाता था किंतु अब इसे मांगलिक अवसरों व त्योहारों में किया जाता है, सबसे महत्वपूर्ण बात इनमें निहित मांगल्य की कामना है। इन सभी लोक कलाओं में यदि इसका भी अध्ययन किया जाए तो अन्य सभी के बारे में समझना आसान हो जाता है। ''चौक पूरना'' उत्तर प्रदेश की लोक कला है।[2] उत्तर प्रदेश भारत का सबसे अधिक क्षेत्रफल वाला राज्य है साथ ही हिंदू धर्म प्रधान जनसंख्या वाला राज्य है हिंदू धर्म प्रधान राज्य होने के कारण यहां सभी पर्व तथा उत्सव हिंदी तिथियों के अनुसार ही मनाए जाते हैं। हिंदुओं द्वारा बनाए जाने वाले प्रमुख पर्व है: चैत्र की नवरात्रि, रामनवमी, नाग पंचमी, रक्षाबंधन,कृष्ण जन्माष्टमी, लक्ष्मी पूजा, विजयदशमी, करवा चौथ, गोवर्धन पूजा, होली इत्यादि।

प्रमुख संस्कार है: शिशु के जन्म, संस्कार, छठी, मुंडन, अन्नप्राशन, कर्ण छेदन, जन्म की वर्षगांठ तथा विवाह आदि। इन सभी पर्वो एवं संस्कारों के उत्सव पर घर की महिलाओं द्वारा चौक पूरने का महत्व है। यह परंपरा अत्यधिक प्राचीन मानी जाती है, जिसका संबंध भारत में आए आर्यों से जोड़ा जाता है क्योंकि आर्यों के आगमन से पूर्व की कला के बारे में, प्रागैतिहासिक काल की कला को छोड़कर अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है पर आर्यों के आगमन के पश्चात की कला की कुछ प्रतियां हमको आज भी दिखाई देती हैं। आर्य लोग अग्नि पूजक थे और वे सूर्य, इंद्र, वरुण के उपासक थे, वे समय-समय पर इन देवताओं की दया व आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए तथा उन को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ एवं हवन करते थे, बलि भी चढ़ाते थे, यज्ञ वेदियो को बिंदु, रेखाओं, त्रिकोण, वृत, आयत, वर्ग आदि ज्यामितीय आकारों से विभिन्न प्रकार के डिजाइन बनाकर सजाते थे और उस को सजाने के लिए विभिन्न अनाज, हल्दी, कुमकुम, फूल-पत्ती आदि का प्रयोग करते थे। इन ज्यामितीय आकारों से विभिन्न प्रकार के डिजाइन बनाकर सजाते थे। इनकी

मंत्रोच्चार के साथ विधिवत पूजा की जाती थी। धीरे-धीरे वैदिक धर्म का भी उदय होता गया और विभिन्न देवी देवताओ की भी आकारों के साथ पूजा की जाने लगी, दैनिक जीवन में अधिकांश प्रयोग आने वाली वस्तुएं तथा अत्यधिक उपयोगी पशु पक्षियों की पूजा कर करने की प्रथा चल पड़ी तथा भित्ति एवं भूमि मानव उल्लास व खुशी के साथ अलंकृत करने लगा। वास्तव में उस समय का मानव उनको भूमि या भित्तियों पर आलेखित कर पूजा करता था और इस तरह उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता था।

इस सौंदर्य के भाव से की जाने वाली यह कला धीरे-धीरे हिंदू समाज के जीवन का अभिन्न अंग बन गई और धार्मिकता के साथ वह पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती रही। जिसका उदाहरण हिंदू धर्म की धार्मिक पुस्तक श्रीरामचरितमानस के अयोध्या कांड के सातवें दोहे की चौपाई "चौके चारू सुमित्रापुरी" में भी प्राप्त है। जिससे हमें ज्ञात होता है के इस कला का महत्व त्रेता युग में भी था। जो आज तक हमारे बीच विद्यमान है।

उत्तर प्रदेश में अधिकांश अवसरों तथा व्रत आदि में मुख्य रूप से पूरी जाने वाली "चौक"। सरल सी दिखने वाली यह चौक संपूर्ण ब्रह्मंड को अपने आंचल में समेटे हुए हैं और इसे किसी भी दिशा से देखें तो यह एक समान दिखाई देती है। यह सदैव शुभ अवसरों का आभास कराती है, इसलिए इसमें समाहित आकारों के महत्व को समझना अपेक्षणीय है। चौक का शुभारंभ बिंदु से किया जाता है इसलिए चौक में बिंदु के महत्व से आरंभ कर अन्य आकारों को जानेंगे।

बिंदु (.) सूर्य का प्रतीक होता है जो जीवन देने वाला सृष्टि के रचयिता है। बिंदु सृष्टि के साथ आरंभ साकार ब्रह्म का आदि रूप है। स्वास्तिक भूमि चित्रांकन में स्वास्तिक का निर्माण मुख्य रूप से होता है। बिंदु के ऊपर एक आड़ी (–) और दूसरी खड़ी (।) रेखा एक दूसरे को काटती हुई चार रेखाओं को जन्म देती है। आड़ी रेखा स्त्री तथा खड़ी रेखा पुरुष का प्रतीक होती है तथा चार अन्य रेखाएं चार दिशाओं की सूचक होती है। वर्ग चार रेखाओं द्वारा बनाया जाता है यह प्रथ्वी का सूचक होता है और स्वास्तिक को चारों तरफ से घेरता है इसकी चारों रेखाएं चारो आश्रमों (ब्रम्हचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास) का तथा प्रत्येक भुजा की चार रेखाएं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का प्रतीक मानी जाती है। वर्गाकार आकृति पूर्ण कुंभ का प्रतीक मानी गई है, जो सुख, संपत्ति और जीवन की पूर्णता का परिचायक, है चारों कोनों के मध्य में दोहरी रेखाओ से त्रिकोण का निर्माण किया जाता है यह त्रिकोण शिव, शक्ति या नारी और पुरुष का प्रतीक है त्रिकोण के ऊपर बनी दो आड़ी रेखाएं स्थिरता का प्रतीक तथा तीन रेखाएं त्रिशूल का प्रतीक है। त्रिशूल सत्व, तमस, रजस गुणों को व्यक्त करता है, जो उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का प्रतीक माना जाता है।[3]

अत: लोक कलाएं मानव जीवन को मांगल्य से भरने वाली होती है। लोक कलाएं धार्मिक आस्थाओं और परंपराओं से जुड़ी हुई है, इसी कारण आज के युग में विचारों में कितनी भी आधुनिकता आ गई हो तीज त्योहारों, उत्सवो तथा धार्मिक पूजा-पाठ के अवसरों पर हमारी पुनीत संस्कृति विद्यमान है, जो हमारे जीवन की मूल अनुभूति और संस्कार है, लोक कला वह निर्मल धारा है जो युगों-युगों से लगातार बहती चली आ रही है और आज तक इसका महत्त्व विद्यमान है। इसी तरह आगे भी भविष्य के आंचल में इसका महत्व बना रहे, इसके लिए हमे सदैव प्रयासरत रहना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. डॉ. विमला वर्मा – उत्तर प्रदेश की लोककला, पृष्ठ सं. 14
2. प्रभापवार – आलेखन
3. योगेश प्रवीण – अवध की लोककला

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

ओरछा के भित्ति चित्रों का तुलनात्मक मूल्याँकन

•बृजेश स्वरूप कटियार

सारांश- बुन्देलखण्ड के चित्रों को देखकर ऐसा आभास होता है कि यहाँ के चित्रों में अजन्ता के समान रेखाओं का अंकन किया गया है तथा रेखाओं में स्वभाविकता लाने का प्रयास करता हुआ चित्रकार दिखाई पड़ता है। एक चश्म चेहरों के अंकन के साथ रंगों की सजावट पूर्णतः समतल तथा अलंकृत है। साथ ही आकृतियों के चित्रण में चित्रकार ने शारीरिक अनुपात का पूर्ण ध्यान रखा है, परन्तु फिर भी कुछ आकृतियाँ छोटे कद में चित्रित की गई है। इन प्रतिष्ठानों के कमरों एवं दालानों में जो चित्र बने हैं उनके रंगों में विशेषकर सिन्दूरी, गहरा बादमी, नीला और लाल रंग का अधिक प्रयोग किया गया है। आकाश को हल्के सपाट नीले रंग में दर्शाया गया है प्रकृति का रंग भी नीला है जिससे समस्त चित्रों की रंगावली कुछ चटकीली प्रतीत होती है। इन चित्रों के आधार पर ओरछा के भित्तिचित्र बुन्देलखण्ड चित्रशैली में एक विशिष्ट पक्ष प्रस्तुत करते हैं। पशु - पक्षियों आदि के अंकन में भी चित्रकार ने बड़ी कुशलता के साथ अपनी तूलिका को चलाया है। रंगों को हल्का व गहरा प्रदर्शित करने के लिये प्रकाश व छाया दर्शाने की मांति रंगों में शैडिंग प्रक्रिया को अपनाया है जिससे चित्रों में सजीवता उभर आती है। इस प्रकार के चित्रों को ओरछा शैली के ही चित्र कहें तो गलत न होगा क्योंकि यह चित्र बुन्देलखण्ड की प्राचीन शैली के प्रतीक हैं।

मुख्य शब्द - चित्रकार, भित्तिचित्र, चित्रशैली, तूलिका, सजीवता

कला मानव सभ्यता के साथ – साथ प्रकाश में आयी। पुरातनकाल से ही मनुष्य अपने हृदय की भावनाओं को रंग और रेखा के माध्यम द्वारा चित्रों के रूप में उन्हें साकार करता रहा है। इस प्रकार मानवजाति के इतिहास की पृष्ठ भूमि में कलाओं का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। आदिकाल से आज तक इस चारा का श्रोत बहता चला आया है जिससे किसी भी देश की कला, संस्कृति एवं सभ्यता के दर्शन इसी के माध्यम से हो पाते हैं।[1]

प्रत्येक जाति का गौरव इसके इतिहास में छिपा रहता है तथा इस गौरव की रक्षा करना प्रत्येक मानव जाति का पुनीत कर्तव्य है। भारत के किसी अन्य प्रदेश का इतिहास बुन्देलखण्ड के साथ तुलना नहीं कर सकता है। वैदिक कालीन संस्कृति, साहित्य और इतिहास से लेकर पौराणिक, बौद्ध, जैन, मौर्य, हूण, चन्देल तथा आधुनिक साहित्य व इतिहास में इसके नागरिकों और क्रिया कलापों व उनकी परम्पराओं का वर्णन मिलता है।

यहाँ की लाल माटी अमर शहीदों, साहित्यकारों, कलाकारों एवं संगीतज्ञों की

• निदेशक, स्कूल ऑफ फाईन आर्ट्स एण्ड परफार्मिंग आर्ट्स, सी.एस.जे.एम. विश्वविद्यालय, कानपुर

कर्मभूमि है। यही कारण है कि भारत का हृदय बुन्देलखण्ड अपनी वीरता, पराक्रम एवं शौर्य के कारण विश्व में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहाँ के बुन्देले शासक अपने देश, जाति व जनता के सुख के लिये अपने सुख और वैभव का परित्याग करते हुये प्रजा-भक्ति का परिचय देते रहे हैं।[2] इस क्षेत्र को प्राचीन काल में 'दशान' तथा 'चन्देली' राज्य कहा जाता था। चन्देल वंश के अन्तिम राजा परिमल चन्देल ने बुन्देलखण्ड में आठ किलों का यशकीर्ति पताका फहराकर इसके गौरव को बढ़ाया। **महाराजा रूद्र प्रताप, मधुकरशाह, वीर सिंह देव, चम्पतराय, छत्रसाल-** वैरोचित लीलाओं के इतिहास की रंगभूमि का यह प्रदेश, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के वीरगाथाओं से ओत-प्रोत है। उपर्युक्त बुन्देले शासक अपनी न्यायप्रियता, बुद्धि कौशल तथा वीरता के लिये बहुत प्रसिद्ध तो थे ही, साथ ही इन्हीं लोगों के शासनकाल में शिल्प, संगीत, चित्रकला तथा साहित्य एवं व्यापार अपने पूर्ण यौवन पर था। अतः बुन्देलखण्ड का यह युग स्वर्ण युग कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। बुन्देलखण्ड में अनेक ऐसे ठिकाने हैं जो उपर्युक्त परम्पराओं की जन्मस्थली है, जिसमें कलाओं का समुचित विकास हुआ है।

बुन्देलखण्ड की स्थापना के साथ - साथ यहाँ के शासक स्थापत्य मूर्ति शिल्प तथा चित्रकला के प्रति सदैव जागरूक रहे। यहाँ के महलों, मंदिरों, किलो, स्मारकों तथा अनेक भवनों में चित्रित कला का स्वरूप इतना भव्य व सुन्दर तथा अनुपम है जिससे इस क्षेत्र का गौरव बढ़ जाता है।

प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में बुन्देलखण्ड को विन्ध्यपर्वतमाला की मान्यता एवं ऐतिहासिक महत्व में इसे भारतवर्ष का वक्षस्थल माना गया है। इस क्षेत्र के विकास में इनका सहयोग पूर्ण सहायक सिद्ध हुआ है, जिससे यहाँ की संस्कृति में परिपक्वता आ गई है। कलात्मक अभिरुचि का स्वरूप भित्ति चित्रों के साथ ही साथ लघुचित्रों में इतना उभर का सामने आया है कि इससे बुन्देलखण्ड शैली का अस्तित्व स्वतंत्र शैली के रूप में दृष्टिगोचर होता है। बुन्देलखण्ड के प्रमुख ठिकाने ओरछा का किला और लक्ष्मी नारायण मन्दिर के भित्तिचित्रों में चित्रकला के अनुपम उदाहरण है। इनमें राजा-राणी के व्यक्ति-चित्र, लोक कथा व कथानकों से सम्बन्धित चित्र, दरबारी चित्र तथा युद्ध व शिकार आदि के चित्रों के साथ ओरछा के राजमहल में भी बुन्देलखण्ड शैली की कला वीथियाँ हैं, इनमें चित्रकारों ने विभिन्न विषयों पर चित्रण किया है।[3] इन चित्रों में चित्रशैली का स्वरूप भाव - भंगिमाओं के अनुसार मुखाकृति का चित्रण चित्रकार की अपनी विशेषता है जिनको देखते ही दर्शक ओरछा में स्थित मानव स्वरूप की स्पष्ट झलक देख लेता है।

बुन्देलखण्ड के चित्रों को देखकर ऐसा आभास होता है कि यहाँ के चित्रों में अजन्ता के समान रेखाओं का अंकन किया गया है तथा रेखाओं में स्वभाविकता लाने का प्रयास करता हुआ चित्रकार दिखाई पड़ता है। एक चश्म चेहरों के अंकन के साथ रंगों की सजावट पूर्णतः समतल तथा अलंकृत है। साथ ही आकृतियों के चित्रण में चित्रकार ने शारीरिक अनुपात का पूर्ण ध्यान रखा है, परन्तु फिर भी कुछ आकृतियाँ छोटे कद में चित्रित की गई है। इन प्रतिष्ठानों के कमरों एवं दालानों में जो चित्र बने हैं, उनके रंगों में विशेषकर सिन्दूरी, गहरा बादमी, नीला और लाल रंग का अधिक प्रयोग किया गया है।

आकाश को हल्के सपाट नीले रंग में दर्शाया गया है प्रकृति का रंग भी नीला है जिससे समस्त चित्रों की रंगावली कुछ चटकीली प्रतीत होती है। इन चित्रों के आधार पर ओरछा के भित्तिचित्र बुन्देलखण्ड चित्रशैली में एक विशिष्ट पक्ष प्रस्तुत करते हैं। पशु – पक्षियों आदि के अंकन में भी चित्रकार ने बड़ी कुशलता के साथ अपनी तूलिका को चलाया है। रंगों को हल्का व गहरा प्रदर्शित करने के लिये प्रकाश व छाया दर्शाने की मांति रंगों में शैडिंग प्रक्रिया को अपनाया है जिससे चित्रों में सजीवता उभर आती है। इस प्रकार के चित्रों को ओरछा शैली के ही चित्र कहें तो गलत न होगा क्योंकि यह चित्र बुन्देलखण्ड की प्राचीन शैली के प्रतीक हैं।

इसी प्रकार ओरछा के लक्ष्मी नारायण मन्दिर में आयरिश प्रणाली पर आधारित भित्ति चित्र बने हैं। जिनमें श्रृंगार करती स्त्री व सामने दूसरी स्त्री दर्पण लिये है। युवतियों की वेश-भूषा और आभूषण क्षेत्रीय विशेषताओं से परिपूर्ण है, साथ ही नायिका को आभूषणों से सुसज्जित कर चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्तकृष्ण-लीला, रामकथा, राज दरबार, फिरंगियों पर हमला तथा कुछ चित्र अपने मौलिक वैभव के अंकित किये गये हैं। विषयवस्तु के अनुसार साज – सज्जा एवं गणवेश पर पूरा ध्यान यहाँ के चित्रकारों ने दिया है।

कुछ चित्रों के विषय ऐसे हैं, जैसे फिरंगियों के डेरों में मदिरा पान, नाच-गाना आदि का चित्रण तत्कालीन परिस्थिति से अवगत कराता है, परन्तु इन चित्रों में इससे पूर्व के चित्रों की भाँति कलाका वह रूप तो नहीं है पर तत्कालीन परिस्थितियों पर आधारित चित्रों के चित्रण में चित्रकार सफल रहा है। इसके अतिरिक्त शाही सवारी व शिकार आदि के चित्रों का भी अंकन है जिसमें तत्कालीन शाही वैभव, चित्रों में अंकित वेश-भूषा, गणवेश साज-सज्जा के माध्यम से यथार्थ स्थिति प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। साधू-सन्यासी और प्राकृतिक दृश्य भी चित्रकार की तूलिका के विषय रहे है।[4] राम और कृष्ण की लीलाओं के चित्रण में चित्रकार पीछे नहीं रहा वरन् इस प्रकार की विषयवस्तुओं को महत्व देकर अन्य विषयों को गौण रूप देकर स्थानों को भर दिया है।

ओरछा के बाद बुन्देलखण्ड का दूसरा प्रमुख प्रतिष्ठान दतिया महत्वपूर्ण है। जहाँ पर दतिया चित्रशैली के रूप में यहाँ की चित्रशैली ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त किया है। दतिया के महाराजा वीर सिंह जूदेव के राजमहल और मकबरों के चित्र इतने अच्छे बने हैं कि उसमें ओरछा के चित्रों से हटकर नयापन व रंग-रेखाओं की सुन्दरता व कुशलता का आभास होता है। यहाँ के चित्रों के रेखांकन में बारीकी अधिक है, जिस पर मुगल व राजपूत कला का प्रभाव प्रदर्शित होता है। यहाँ के चित्रों में स्थापत्य का स्वरूप भी अच्छा बनाया गया है, जिसमें सफेद रंग की अधिकता है।

दतिया के चित्रकारों ने भित्तियों के अलंकरण में सफेद, लाल, हरे, पीले, रंगो के द्वारा बारीक रेखाओं व ज्यामितीय आकारों के द्वारा सौन्दर्य पूर्ण चित्रण किया है। जिसमें सफेद रंग के द्वारा तेज व सत्यता को प्रकट किया है वही लाल रंग से साहस और वीरता के साथ ही पीले रंग से दिव्यता व हरे रंगों के द्वारा यौवन को भी प्रदर्शित किया है जिनको देखकर ऐसा आभास होता है कि यहाँ के चित्रकार ने विभिन्न शैलियों को आत्मसात कर रागमाला, बारहमासा, पहलवानी, उत्सव, संगीत एवं अन्य अलंकारिक विषयों को बड़े

अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। यहाँ के चित्रों की आकृतियों में चेहरा लम्बा, आँखें कमल जैसी, नासिका नुकीली तथा रंग-रूप में चाकलेटी रंग का प्रयोग अपनी विशिष्टता प्रस्तुत करता है। जिसे राजपूत और मुगल कला दोनों से हटकर अलग से पहचाना जा सकता है। कविवर मतिराम, बिहारी आदि प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थों से प्रेरित साहित्यिक प्रेरणा इन चित्रों में समा गई है।

जिस प्रकार पहाड़ी शैली में महाराजा संसार चन्द्र व सिख शैली में महाराजा रणजीतसिंह का स्थान है उसी प्रकार यहाँ की कला के विकास हेतु दतिया के महाराजा बीर सिंह देव तथा ओरछा के महाराजा पारिक्षित का है। इनके प्रयासों से कला का परिपूर्ण विकास हुआ है। इस शैली के प्रसिद्ध चित्रकारों में टीकमगढ़ के रहने वाले ''रामदयाल खेला और सुखदेव'' का नाम विख्यात है। दतिया की शैली ओरछा से अधिक साहित्यिक, अलंकारिक व परिष्कृत है। क्योंकि इसमें लोकतत्वों के साथ - साथ साहित्य को अधिक आधार मिला।

दतिया चित्रशैली में आरम्भिक प्रभाव किसी न किसी रूप में चीनी यात्री के आने के कारण पड़ा है परन्तु यह इसकी विशेषता है कि उसे दतिया शैली का रूप देकर चित्रकार ने अपनी सिद्ध हस्त कला का उदाहरण एवं प्रमाण प्रस्तुत किया है। दतिया में रचित बहुत से ग्रन्थ जिनमें रसराज, बिहारी सतसई, भागवत, रसिक प्रिया आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें नायक-नायिकाओं के स्वरूपों, क्रिया-कलापों एवं भावनाओं का सफल अंकन है। साथ ही मौसमानुकूल विषयवस्तु को प्रमुखता प्रदान कर अधिक कल्पनाशील बना दिया गया है। मुगधा, प्रौढ़ा, स्वकीया, परिकीया नायिका, अष्टयाम चित्रावली में कहानी कहती हुई प्रतीत होती है। चित्रण से उनके ह्रदय की भावनाओं को चेहरे की भंगिमाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। आभूषणों के रूप में करधनी, कंगन, बिछुये एवं लच्छे आदि का चित्रण किया गया है।

टीकमगढ़ी तथा कालपी के बादमी कागजों पर चित्रों में नीति के दोहों पर आधारित भक्ति व प्रकृति के अंकन को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है जो अन्य शैलियों में कम ही दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार दतिया चित्रशैली का स्वरूप व अस्तित्व पूर्ण स्वतंत्र है। उस पर विभिन्न प्रभावों के साथ-साथ अपना निजस्व भी पूर्ण विकसित पाया जाता है।[5] इस शैली के बहुत से चित्र व्यक्तिगत संग्रहों व राजकीय संग्रहालयों में बिखरे पड़े है। जिनके प्राप्त होने पर शैली की प्रमुखता और भी बढ़ जायेगी। जिसको यहाँ के कलाकारों ने अनुपम कौशल प्रस्तुत करके इसके अस्तित्व को प्रमाणित कर दिया है।

बुन्देलखण्ड के अन्य केन्द्रों में टीकमगढ़ व वानपुर दो ऐसे उपकेन्द्र हैं जिन पर दतिया चित्रशैली का प्रभाव झलकता है वहाँ के व्यक्तिचित्रों व रंग-रेखाओं का समन्वय दतिया शैली की भाँति दर्शक को देखने को नहीं मिलता, जिस प्रकार दतिया के चित्रों में झलकता है। इसी प्रकार बुन्देलखण्ड की अठकड़ियाँ जहाँ पर बुन्देले शासकों ने अपनी वीरता एवं शौर्य के साथ-साथ संस्कृति व साहित्य के प्रति भी अपना प्रेम व अनुराग प्रदर्शित किया है। यह आठ स्थान हैं-

1. टहरौली
2. चिरगाँव

3. कर्री
4. दुरबई
5. विजना
6. बंका पहाड़ी
7. दोडी फतेहपुर एवं
8. पसरई

इन स्थानों में से कुछ में संस्कृति व चित्रकला के अनुपम उदाहरण आज भी उनके दुर्गों, महलों व मंदिरों में देखने को मिलता है। टहरीली के किले में दाउ आजू (दउवाजू) के मन्दिर में श्री ठाकुर रामजी विराजमान है व अन्दर राम व कृष्ण लीलाओं, शिकार व शाही सेना आदि का अच्छा चित्रण है। इसी प्रकार विजना के किले के अन्दर बने मन्दिर में शिव - बारात एवं हाथियों का सुन्दर चित्रण है।

टोडी फतेहपुर के किले के एक सिरे पर बने तीन मंजिले मन्दिर के ऊपरी दोनों खण्डों पर रामायण पर आधारित विविध चित्र तथा कृष्ण लीला के चित्र एवं धार्मिक स्थलों के साथ-साथ ऋषि-मुनियों का भी चित्रण किया गया है। इस प्रकार इन अठकड़ियों में भी अधिकतर चित्रण धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत है। रंग गहरे स्लेटी, कत्थई, लाल एवं कहीं-कहीं नीले-पीले रंगों का भी प्रयोग किया गया है। रेखायें बारीक तथा अधिकतर चेहरे एक चश्मी अंकित किये गये है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. किशोरीलाल वैद्य व ओमचन्द्र हांडा, पहाड़ी चित्रकला, पृ. 106
2. ईस्टर्न स्टेट्स (बुन्देलखण्ड) गजेटियर पृ. 16-20
3. अम्बिका प्रसाद दिव्य, ओरछा की चित्रकारी, पृ.66,70
4. मध्य प्रदेश गजेटियर, दतिया, पृ. 267
5. ब्रासिलगे, राजपूत पेन्टिंग, पृ. 2-4

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

मानव जीवन के विकास में कला की भूमिका

• अजय कुमार

सारांश- कला मानव जीवन के हर क्षेत्र में रची बसी हुई है। कलाओं के द्वारा ही मनुष्य शांति और सुख का अनुभव करता है और उसकी सहायता से हम अपने जीवन को प्रफुल्लित और कलामय बनाते हैं। सौंदर्य के बिना ललित कलाओं का कोई अस्तित्व नहीं होता। जिससे दर्शक भाव विभोर हो उठता और उसको आनंद की अनुभूति होती है और वह उसके प्रति जुड़ाव महसूस करता है और अपनेस्व को भूलकर केवल आनंद में डूब जाता है। भारतीय आचार्य ने कला के जिस उच्च स्वरूप की परिकल्पना की है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है जैसे, ''लियते परमानंदे ययात्मा सा परा कला।'' कला जो आनंद की अनुभूति कराती है। वही कला श्रेष्ठ और कल्याणकारी है, कला के रसास्वादन से मनुष्य की चेतना का सकारात्मक विकास होता है। इसीलिए शिक्षा में कला का स्थान अनिवार्य रूप से मान लिया गया है और बाल्यकाल से ही कला की शिक्षा दी जाती है। यह मानव जीवन के लिए अत्यंत कल्याणकारी है और आधुनिक युग के बिगड़े हुए आध्यात्मिक स्वास्थ्य को सुधार सकती है क्योंकि कला मे एक नैसर्गिक मांगलिक शक्ति रहती है।आज मानव अनेक प्रकार के मनोविकार से ग्रसित होता जा रहा है।जिसको कला के द्वारा ही सुधारा जा सकता है।कला किसी भी प्रकार की हो उससे मनुष्य को आनन्द की प्राप्तिहोती है और वह सकारात्मकता की ओर बढ़ने लगता है। कलाकार अपने भावों को कलाकृतियों के द्वारा समाज के सामने समाज की स्थिति को है। जिससे दर्शक को समाज की गतिविधियों का पता चलता है और वह जागरूक होता है और जीवन के विविध भावों को सूत्रबद्ध कर पाता है। कलाकार का यह दायित्वपूर्ण कार्य है कि कला का उद्देश्य क्या होना चाहिए और कलाकृति के माध्यम से समाज में क्या प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि कलाएं तनाव को दूर करती हैं और आनंद के संसार में ले जाती हैं। इसी प्रकार कला जीवंत रहती है और प्रेरणा देती है और मनुष्य का मानसिक विकास, बौद्धिक विकास , आध्यात्मिक विकास , और जिससेआत्मनिर्णय की दक्षता का विकास होता है।

मुख्य शब्द - कलाकार, कला, अनुभूति, आनंद, सौंदर्य

प्राचीन काल से आधुनिक वैज्ञानिक युग तक कला का महत्व निर्विवाद रूप से सत्य है। कला मानव जीवन के हर एक क्षेत्र में रच-बस गई है। कलाओं के द्वारा ही मनुष्य

• **प्रवक्ता, मूर्तिकला विभाग, स्कूल ऑफ फाईन आर्ट्स एण्ड परफार्मिंग आर्ट्स, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर**

शांति व सुख का अनुभव करता है और उसकी सहायता से हम अपने जीवन को सजाते-संवारते और कलामय बनाते है। ललित कलाओं के साथ सौन्दर्य आवश्यक रूप से जुड़ा हुआ है। किसी अच्छी कलाकृति को देखते ही मनुष्य स्वतः ही भाव विभोर हो उठता है और उस कलाकृति के रसास्वादन में लीन हो जाता है। यह परमानन्द की चरम स्थिति होती है। जहाँ मनुष्य अपने स्व को भूलकर केवल आनन्दानुभूति में डूब जाता है। भारतीय आचार्यों ने कला के जिस उच्च स्वरूप की परिकल्पना की है, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जैसे, ''लीयते परमानन्दे ययाऽत्मा सा परा कला।''

उपरोक्त चितंन में यह स्पष्ट किया गया है कि जो कला परम आनंद प्रदान करती है. वही सच्ची व श्रेष्ठ कला है और ऐसी कला ही कल्याणकारी भी होती है। कला के रसास्वादन से मनुष्यतः की चेतना का गुणात्मक विकास होता है। कला मानवता के स्वरूप को ही बदल देती है। वह मनुष्य की नई प्रतिमा गढ़ देती है। इसीलिये शिक्षा में भी कला का स्थान अनिवार्य रूप से मान लिया गया है और बाल्यकाल से ही कला की शिक्षा दी जाती है। अतः कला का मानव जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है और मानव जीवन के लिये वह निश्चित रूप से कल्याणकारी है। डॉ. कुमार विमल कहते हैं कि, मेरा दृढ़ विश्वास है कि कला ही आधुनिक युग में सांस्कृतिक स्वर्णोदय को ला सकती है और आधुनिक युग के बिगड़े हुए 'आध्यात्मिक स्वास्थ्य' को सुधार सकती है, क्योंकि कला में एक नैसर्गिक मांगलिक शक्ति रहती है।''

प्लेटो ने कहा है कि, ''कलायें, मानव को शिक्षित व सुसंस्कृत बनाती है सुकरात के अनुसार कलाओं को परमार्थ शास्त्र करते है। संवर्धन करती है। इनसे भावों का संशोधन चिन्तन की गहनता और चरित्र निर्माण होता है। दृढ विश्वास और कल्पनाशीलता का विकास होता है। इस प्रकार कलायें मानव को परिपूर्णता प्रदान करती है। ये विश्व में विनाशकारी कार्यों को प्रस्फुटित होने से रोकती है।, और विश्व की रक्षा करती है। कला मानव जीवन को उपयोगिता प्रदान करती है इसलिये भविष्य में भी इसका विकास रुकेगा नहीं। सभ्यता के इस विकसित दौर में भी मनुष्य कला के बिना जीवित नहीं रह सकता, भले ही उसके माध्यम और प्रकारों में अंतर आ जाये।अतः ललित कलाओं का महत्व इतना वृहदाकार है कि उनकी समुचित अभियाकृति अनुपस्थिति में भी उनकी सार्थकता कम नहीं होती।

कलाओं की प्रेरणा के स्रोत मुख्यतः जीवन के विभिन्न भाव धर्म तथा राष्ट्रीयता रहे है। मानव में अनेक प्रकार के हर्ष विषाद, आशा, निराशा, उल्लास, अवसाद, उत्साह और शिथिलता के अवसर आते है। इनसे सम्बन्धित विभिन्न मनोविकार ही कलाओं की मुख्य भाव-सम्पदा बनते हैं। व्यक्ति-व्यक्तिका सम्बंध व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध परस्पर प्रेम, घृणा, आकर्षण हिंसा विद्रोह, क्रोध, दया, शोक, आदि की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करता है और ये प्रतिक्रियाएँ ही मन में धीनभूत होकर कलाओं को जन्म देती है। यद्यपि कलाओं की सृष्टि काल्पनिक होती है तथापि इस मिथ्या सृष्टि के सहारे ही कलाकार समाज के अन्य सदस्यों के मन में छिपे भावों को अभिव्यका प्रदान कर उनका संस्कार करता हो कॉडवेल का कथन है कि समस्त कला व्यक्तिगत और भावात्मक है तथापि उसका सम्बन्ध हमारे जन्मजात स्वरूप से है। इस स्वरूप की दो विशेषताएँ हैं- एक यह

कि यह सब में एक सामान्य रूप में होता है। दूसरी यह कि सामान्य होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ विशेषता अथवा भिन्नता रहती है। कला की सामाजिकता और नवीनता इन दोनों बातों पर निर्भर होती है। इस प्रकार जीवन के विभिन्न भादों और परस्पर दुख दर्द में कलाएँ अभिन्न रूप से हम सबसे ही नहीं जुटी रहती वरन उनमें आपस में भी एक सूत्रता स्थापित हो जाती है। सहभागी और सहयोगी होने के कारण कलाओं में परस्पर सहानुभूति के तत्व भी उत्पन्न हो जाते है।

जीवन के विविध भावों को विश्लेषित और सूत्रबद्ध करने में संस्कृत के शास्त्रकार अग्रणी रहे है। सम्पूर्ण दृश्य-श्रव्य जगत की प्रतिक्रिया स्वरूप मन में उत्पन्न होने वाले भावों और मानवीय चेष्टाओं को "रस सिद्धान्त में निहित कर दिया गया है कि मनुष्य अपने भावों का प्रकाशन दूसरे मनुष्यों के लिये ही करता है अतः अभिव्यंजना का माध्यम चाहे कोई भी हो, उसका क्षेत्र मानवीय प्रदत्न ही है। इसीलिये कलाएँ भी मानवीय प्रयत्न के अंतर्गत आती है। कलाओं में प्रस्तुत किये जाने वाले समस्त क्रियाकलापों का मुख्य नायक मनुष्य ही है। समस्त कलाओं में मानवीय व्यापार और चेष्टाएँ प्रधान रूप से महत्वपूर्ण हैं। इनके आधार पर शास्त्रकारों ने जिन रसों और भावों का विश्लेषण किया वह केवल साहित्य काव्य से ही सम्बन्धित नहीं था संसार की यह कर्मस्थली कलाओं में एक छोटे से दृश्य मद अथवा नाटक का रूप ले लेती है और इस रूप में भावों का व्यापक विवेचन सभी देशों के शास्त्रकारों ने किया है। यह विवेचन चित्र मूर्ति नृत्य, संगीत नाटक और कविता सभी में समान रूप से व्यवहार्य है। इतना अवश्य स्वीकार किया जाता है कि इसमें जितनी विशदता, गम्भीरता और व्यापकता नाटक के माध्यम से आ सकती है उतनी अन्य माध्यमों में नहीं नाटक केवल दृश्य ही नहीं है, श्रव्य भी है, गद्य ही नहीं पद्य भी है संवाद भी है और गायन भी है अभिनय भी है और नृत्य भी है. स्थूल भी है और सूक्ष्म भी है और साथ भी इसमें समस्त कलाओं का समाहार भी है। इस प्रकार जीवन के विविध भावों से प्रेरणा लेने और उनके प्रकाशन की विधियों में सभी कलाएँ आन्तरिक रूप में परस्पर सम्बन्धित हैं।

कलाकार एक सामाजिक प्राणी है। अन्य प्राणियों की भाँति उसे भी अपने समुदाय में रहना और सामुदायिक हितों के प्रति उत्तरदायी होना पड़ता है। वह जो कलाकृतियों अंकित करता है वे यदि समाज के लिए उपयोगी न हो तो कलाकार का जीवन-यापन भी सम्भव नहीं हो पाता। इसीलिए कलाकार को ऐसी कलाकृतियों बनानी होती हैं जिनक कार्य अथवा लक्ष्य समाज के लिए उपयोगी होता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार का लक्ष्य प्रायः कलात्मक नहीं होता। इस प्रकार कला के कार्यों को दो भागों में बांटा जा सकता है, कलात्मक तथा अकलात्मक। किन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अकलात्मक लक्ष्य केवल विषयों आदि से ही संबन्धित सृजन-प्रक्रिया से नहीं दूसरी बात यह है कि अकलात्मक लक्ष्यों के सहारे ही कलाकार अपने कलात्मक लक्ष्यों की पूर्ति कर लेता है। ये सभी मिलकर कला के कार्य कहें जाते हैं।

कलाओं को प्रायः सुन्दर किन्तु निरुपयोगी कायम में गिना जाता है। पर ऐसा सोचने वाले लोग सत्य और इतिहास दोनों को ही अनदेखा कर देते हैं। कला-सृष्टि और कलास्वदन के इतने अधिक पक्ष है कि जब किसी कृति की रचना होती है जो निरुपयोगी

दिखाई दे तो सामाजिकता की दुहाई देने वाले विचारक इस प्रकार की कला की निन्दा में प्रवृत्त हो जाते है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप कलाकार का अहम् भी जागृत हो जाता है और वह कला सृष्टि को समाज निरपेक्ष, स्वतंत्र तथा नियति (प्रकृति) के नियमों से रहित घोषित कर देता है। किन्तु वास्तव में कला के कार्यों में विशुद्ध सौंदर्य के आस्वादन से लेकर सामाजिक और आर्थिक ही नहीं वरन् पारलौकिक पक्ष भी सम्मिलित है। इस विषय में कला के अलोचकों ने श्रेष्ठ कलाकृत्तियों के जो आदर्श स्थापित किये है, केवल वे ही नहीं बल्कि सारे संसार की अगणित कलातियों के उदाहरण दिये जा सकते है।

जीवन का उद्देश्य यदि कला साधना व किसी कला में निपुणता प्राप्त करना है तो कला का उद्देश्य क्या होना चाहिये यह सोचना भी कलाकार का एक दायित्वपूर्ण कार्य है क्योंकि कलाकृति निर्जीव होकर भी सजीव रहती है और सदा ही समाज को उपना संदेश प्रकाश व मार्गदर्शन देती रहती है। उदाहरणार्थ, कोई शांति-स्तूप अपने समग्र वातावरण को सहज व शांत बनाये रखता हैं, वहाँ आने वालों को बहुत चैन व शांति प्रतीत होती है। कोई प्रतिमा किसी व्यक्तित्व के जीवन मूल्यों को आलोकित करती रहती है तथा-गौतम बुद्ध की प्रतिमा उनके अतज्ञान के तेज को दर्शाती रहती है।

प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण प्रेक्षकों को आनन्दित करता है। इसी प्रकार चित्र किसी पात्र या चरित्र के स्वभाव, मन स्थिति को दर्शाता है, किसी कहानी की झाँकी भी दर्शाता है। इस तरह अपनी ही छटा बिखेरता है और पढ़ने सुनने वालों को आनंद प्रदान करता रहता है अथवा मार्गदर्शन भी कर सकता है। महान कवियों की रचनाएँ इसका सशक्त उदाहरण हैं। संगीत तो मधुर ध्वनियों की झंकार से बौद्धिका मानसिक और आत्मिक आनंद देने में सक्षम होता ही है।

सभी कलाएँ तनाव को दूर करती है और आनंद के संसार में ले जाती हैं। इसी प्रकार कला जीवंत रहती है उसका कार्य चलता रहता है। बहुत सी बीमारियों का कारण तनाव ही होता है। कलाओं के संपर्क में रहने से तनाव दूर होता है अत: कलाएं बीमारियों को रोकने मेंसहायक होती हैं। प्राकृतिक और वैज्ञानिक दोनों ही कसौटी पर संगीत खरा उतरता है। संगीत मनुष्य के साथ-साथ अन्य प्राणियों और वनस्पति को भी प्रभावित व प्रसन्न करता है। संगीत को लेकर कलाकारों और वैज्ञानिकों ने बहुत से प्रयोग किए हैं। जिनके संबंध में पत्र-पत्रिकाओं में भी विवेचन प्रकाशित होते रहते हैं जैसे कि रक्तचाप के रोगी व्यक्ति को संगीत से राहत मिलती है, रक्तचाप को संयंत्रों से मापा भी जाता है और संगीत सुनते समय जो परिवर्तन आते हैं उसका अंतर स्पष्ट देखा जा सकता है। पेड़-पौधे संगीत सुनकर अधिक फल फूल देते हैं, गाय संगीत सुनकर अधिक दूध देती हैं, शिशु संगीत सुनकर रुदन छोड़कर शांत हो जाता है।

ललित कलाएं मनुष्य के मानसिक विकास, बौद्धिक विकास, आध्यात्मिक विकास, व्यक्तित्व विकास, भावनात्मक विकास, सांस्कृतिक व नैतिक विकास की दिशा में कार्यरत रहती है, इसमें कल्पनाशक्ति, निरीक्षण शक्ति, स्वतंत्र चिंतन, तुलनात्मक प्रवृत्ति आत्म प्रकाशनऔर आत्म निर्णय की दक्षता का विकास होता है। अत: ललित कलाएं अत्यंत महत्वाकांक्षी वह मानव के लिए अत्यंत कल्याणकारी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. ललित कला के आधारभूतसिद्धांत-मीनाक्षीकासलीवाल'भारती'
2. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल
3. कला दर्शन, डॉ.शचीरानी गुट्
4. ललित कलाओं का सौन्दर्य-विधान, डॉ. मधुर लता भटनागर
5. कला का वर्गीकरण, समालोचक सौन्दर्यशास्त्र,विशेषांक
6. कलासौन्दर्यऔरसमीक्षा शास्त्र, अशोक

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

सृजनात्मक प्रक्रिया में कलाकार की आंतरिक मनोवैज्ञानिक स्थिति

• शालिनी श्रीवास्तव

सारांश- इस वर्ण वैविध्य जगत में मानव जिन वस्तुओं की कल्पना करता है, या देखता है, उसके भाव कलाकार के मास्तिष्क में तुरंत अंकित हो जाते है, यह भाव बाहरी जगत के रूप रंग से कोई सम्बन्ध नही रखते है, बल्कि भय, विस्मय, शोक, दु:ख आदि के समन्वय से शब्दों, स्वरो, रंग, रेखाओं, आकृति के द्वारा आकर्षक रूप लेकर प्रकट होते है। अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार कलाकार के मस्तिष्क में जो उत्साह, शोक या ओज रहता है, वही उसे सृजनात्मकता में प्रवक्त होने के लिए प्रेरित करता है, इसी के फलस्वरूप एक जीवंत चित्र या मूर्ति का निर्माण सम्भव होता है।

मुख्य शब्द - कल्पना, भाव, अंकित, सृजनात्मकतों

एक कलाकार अपने मन की स्थिति को चित्र में नवीन रूपों के द्वारा परिभाषित करने का प्रयास करता है। यह सृजनात्मक प्रक्रिया उसकी आंतरिक स्थिति को दर्शकों के समक्ष व्यक्त करती हैं। कला की श्रेष्ठता कलाकार की जीवन प्रवक्ति कल्पना और अनुभव या स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो उसकी विश्व, दृष्टि पर निर्भर करती है।

एक कलाकार अपने काम से ही पहचाना जाता है, उसकी शैली और उसके चुने हुए विषय उसे बाकी सबसे अलग करते हैं, उसमें कलाकार की अपनी विशिष्ट शैली के अनुरूप ही विषयों को चुनने की समझ होती है, किंतु जब वह किसी विशिष्ट शैली में बंधकर विषयों का चुनाव करता है, तो उसके निर्धारक के रूप में मानसिक प्रतिक्रियाएं अहम भूमिका निभाती हैं। आधुनिक कला के मर्म को मनोवैज्ञानिक स्तर पर ही समझा जा सकता है। हीगेल का कहना है ''वह स्वच्छंदतावादी विचार प्रधान है, इन्द्रिय स्तर से उसका रसास्वादन असंभव है, वह हमारे मन को प्रभावित करती है, किन्तु संसार की अन्य वस्तुओं की भिन्न पद्धति से।[1] अतः कला के मर्म को मनोवैज्ञानिक स्तर पर ही समझा जा सकता है।

मनुष्य की सृजनात्मक इच्छा के अतिरिक्त कला और क्या है? जिसे वह लयात्मक रेखा, रंग आयतन, प्रकाश कोणों की चेष्टाओं व गति के जरिए रूप प्रदान करते हैं, इस कारण हम यह कह सकते है, कि मानव जीवन की प्रवत्ति का सबसे महत्वपूर्ण तत्व सृजनशीलता है, जिसके द्वारा कलाकार की चेतना जो चंचल व गत्यात्मक है, वह

• **प्रवक्ता, चित्रकला विभाग, स्कूल ऑफ फाईन आर्ट्स एण्ड परफार्मिंग आर्ट्स छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर**

किसी नवीन परिस्थिति में स्वयं को ढालने का प्रयत्न करती है। चेतना का जन्म तभी होता है, जब कलाकार सृजन करता है, उस समय अन्य किसी भी वाह्य वस्तु से कलाकार का सम्बन्ध नहीं होता है, जिस वस्तु के लिए मन में चेतना होती है, सिर्फ उस वस्तु का ही पूर्ण ज्ञान होता है। अतः कलाकार के चेतन मन का प्रभाव उसके व्यवहार पर नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा यह स्पष्टीकरण दिया गया है, कि मनुष्य के अंतःकरण में कल्पना का जितना संघर्षपूर्ण पुट रहता है, उसको कलाकार उतनी ही दक्षता से प्रकट करने में सफल होता है, साथ ही व्यक्ति के विश्वास पर उसके मस्तिष्क को प्रभावित करने वाला वातावरण भी सहयोगी होता है, इसी अनुभूति से कला साहित्य मे सृजन के प्रति प्रेरणा जन्म लेती है।

कलाकार की मानसिक स्थिति शारीरिक स्थिति से भिन्न होती है। प्रत्येक कलाकृति को समझने के लिए उसका वैज्ञानिक विश्लेषण करने की आवश्यकता होती है, इससे कला के जिस दर्शन का या जिस कला विज्ञान का उदय होता है, वह इतिहास धर्म एवं रूप विज्ञान के स्थान पर क्रमशः मनोविज्ञान एवं भाषा विज्ञान को प्रश्रय देता है। आज जब कला समकालीन चित्रकारों की गतिविधियों से प्रेरित है, चाहे वह पेरिस हो जर्मनी हो या न्यूयार्क, अलग-अगल दिशाओं में बिखरी हुई है। बिना किसी सोच विचार के चित्रकार की तूलिका और रंग अनायास ही जो कुछ भी अंकित कर दे वही कला है। आधुनिक कला के मर्म को मनोवैज्ञानिक स्तर पर ही समझा जा सकता है।

यह सत्य है कि मानव जीवन में एकरूपता से ऊबने लगता है और नवीनता के लिए विकल हो उठता है, मूलतः इसी भावना से उत्प्रेरित होकर नवीन दर्शन को अपनी सृजनात्मक प्रतिभा द्वारा प्रेक्षक के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। रूओल्ड के अनुसार "कलाकार प्रत्यक्ष जगत का अनुभव करते हुए समय-समय पर आंखे मूंद कर इन अनुभवों को व्यवस्थित और विकसित करता रहता है।[2] आज का कलाकार प्रकृति के सुरम्य वातावरण में राजा-महाराजाओं की आलीशान महलों की चमक दमक में, धर्म के कठोर नियमों में, शाश्वत नैतिक मूल्यों में सृजनात्मकता की खोज करके उसके सृष्टि के लिए नवीन सिद्धान्तों की खोज में संलग्न है।

शरीर कार्य करता है, परंतु मन कार्य नहीं करता है, मन के भाव प्रतीकात्मक रूप में प्रकट होते हैं, जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव दर्शक पर पड़ता है। कलाकार द्वारा किया गया यह चिंतन उसका व्यक्तित्व प्रदर्शित करता है, यही जीवन परिचय उसका अस्तित्व है। आंतरिक दृष्टि से देखी गई प्रत्येक कृति कलाकार व दर्शक दोनो के बीच परस्पर संबंध स्थापित कर देती है।

मनुष्य की सृजनशील प्रकृति का सबसे ज्यादा प्रमाण उसकी कल्पना शक्ति के द्वारा निर्मित कृति से मिलता है। विभिन्न स्थापनाओं, सैद्धांतिक परिकल्पनाओं और योजनाओं एवं आदर्शों में सृजनशील कल्पना अपनी अभिव्यक्ति स्वयं करती है, जिस प्रकार नाटक में अभिन्य करते समय कलाकार अपना अनुमान प्रयोग नहीं करता है, बल्कि उस पात्र के अलौकित गुणों को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है, जो उसके अंर्तज्ञान का परिणाम होता है। कल्पना, प्रतीकात्मकता, नाटकीयकरण, ये सभी मन की

विभिन्न अवस्थाएँ हैं, इन्हीं अनुभवों के कारण अपनी कल्पनाशीलता से वह पूर्णतः परिचित होता है। माइकेलएंजिलो ने एक बार कहा था, कि कलाकार कला का सृजन अपने हाथों से नही बल्कि अपने मस्तिष्क से करता है। अतः जब वह सृजन करता है, तब अपनी रूचि के अनुसार लाल अथवा हरा रंग प्रयोग करके देखता है, यह लाल रंग उसकी शारीरिक पुष्टि व हरा रंग उसकी मानसिक विशेषता का सूचक है।[3] इस संबंध मे लियोनार्दो दा विंची के बारे में कहा जाता है, कि "लास्ट सपर" चित्र की रचना के समय उसके समक्ष कई दिन तक बिना तूलिका उठाए टकटकी लगाए देखते हुए खड़े रहे, वह गिरिजा के पादरी के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए, ऐसी स्थिति में कलाकार वाह्य कार्य की अपेक्षा आंतरिक कार्य अधिक करता है, इसी कारण वह कलाकार होता है, क्योंकि वह किसी भी विषय का आंतरिक रहस्योद्घाटन कर सकता है, जिसे एक साधारण व्यक्ति के लिए समझना कठिन है।

आधुनिक युग में विश्वबोध की वैज्ञानिक समझ के साथ सृजनात्मकता और सौंदर्यबोध के नए क्षितिज उद्घाटित हो रहे हैं। जटिल विचार पद्धतियों का निर्माण सृजनशीलता के द्वारा ही सम्भव होता है ड्रेवहल के अनुसार "सृजनात्मकता वह मानवीय योग्यता है, जिसके द्वारा कलाकार किसी नवीन रचना अथवा विचार को प्रस्तुत करता है।[4] कलाकार की बुद्धि व कल्पना उसे कलाकार दृष्टि और वैज्ञानिक तथा दर्शनिक चिंतन की सृजनात्मक क्रियाओं में लगा देती है। अतः कलाकार का सृजन के साथ गहन सम्बन्ध ही उसकी आत्मा को उत्थान प्रदान करता है और वह सत्य की खोज करता है जो अंतर्ज्ञान का सूचक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. अशोक, कला सौंदर्य और समीक्षाशास्त्र, पृष्ठ सं. 247
2. जगदीश बहादुर चौधरी/क्रिएटीविटी एण्ड कन्टेम्पोरेरी आर्ट्स
3. इरविन एडमैन, ललित कलाएं और मनुष्य, पृष्ठ सं- 88
4. डॉ- राजनाथ शर्मा, समकालीन दर्शन, पृष्ठ सं. 521

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

बसोहली शैली में चित्रित गीतगोविन्द

• लोकेश्वर सिंह

सारांश- बसोहली शैली में चित्रित गीत गोविन्द के लघु चित्रों के सम्बन्ध में समय-समय पर एम. एस. रंधावा, डब्लू. जी. आर्चर, एफ. एस. अज्जुद्दीन, एन. पी. चक्रवर्ती, अजीत घोष, एन. पी. मेहता, कृष्णदेव, वासित ग्रे. वीनर, वी. एन. गोस्वामी आदि कला मनीषियों ने अपने ज्ञान को यत्र-तत्र बिखेरा है।ये सम्पूर्ण चित्र 'मानकू' द्वारा रानी मालिनी के आदेश से सन् 1730 ई. में चित्रित किये गये थे।बसोहली चित्रमाला पर अंकित संस्कृत श्लोक की विभिन्न व्याख्याओं के कारण यह श्लोक काफी विवाद का विषय रहा है। विवाद के अनेक विषयों में यह भी है कि मानकू चित्रमाला की संरक्षिका का नाम है या सृजन कार का और मानकू स्त्री है या पुरुष लेकिन इस विवाद पर विचार किया जाना इसलिए जरूरी नहीं है कि इस श्लोक का चाहे जो भी अर्थ हो, वर्तमान चित्रमाला के संदर्भ मे कोई भी समीपता नहीं है, क्योंकि यह चित्रमाला 1730 ई. की बसोहली चित्रमाला का अनुकरण मात्र है।

मुख्य शब्द - अग्रगण्य, चित्र, छाप, रेखातियों

बसोहली कलम के पोषकों में राजा मेदनीपाल और अमृतपाल का नाम कला की दृष्टि से अग्रगण्य है। बसोहली में ही रानी मालिनी के संरक्षण में गीतगोविन्द विषय के अनेक चित्र अंकित हुए जो कला की दृष्टि से उच्च कोटि के हैं। रानी मालिनी की चित्रकला के प्रति अनुराग ने उन्हें एक अच्छा कला परखी भी बना दिया था। वह भगवान विष्णु की उपासिका थी और उसी की प्रेरणा से मानकू तथा अन्य कलाकारों ने गीत गोविन्द का चित्रण प्रस्तुत किया।[1]

केवल अपने अन्तिम चरण के कुछ चित्रों के अतिरिक्त बसोहली कलम पर मुगल प्रभाव नजर नहीं आता, लेकिन भारतीय कला के आदि स्रोत अजंता की छाप का आभास जरूर होता है। अजित घोस के शब्दों में बसोहली कलम के श्रेष्ठतम् काल सम्भवत: सत्रहवीं शताब्दी में सुन्दरतम् चित्रों के कतिपय चित्र बंगाल के अमर कवि जय देव लिखित गीत गोविन्द के दृष्टान्त रूप में उभरे हैं ये चित्र अपनी सुन्दर रेखातियों, बढ़िया रंगों और प्रकाश के लिए समान रूप से अद्भुत है।[2]

बसोहली शैली में चित्रित गीत गोविन्द के लघु चित्रों के सम्बन्ध में समय-समय पर एम. एस. रंधावा, डब्लू. जी. आर्चर, एफ. एस. अज्जुद्दीन, एन. पी. चक्रवर्ती, अजीत घोष, एन. पी. मेहता, कृष्णदेव, वासित ग्रे. वीनर, वी. एन. गोस्वामी आदि कला मनीषियों

• स्कूल ऑफ फाईन आर्ट्स एण्ड परफार्मिंग आर्ट्स, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

ने अपने ज्ञान को यत्र-तत्र बिखेरा है। ये सम्पूर्ण चित्र 'मानकू' द्वारा रानी मालिनी के आदेश से सन् 1730 ई. में चित्रित किये गये थे।ये सम्पूर्ण चित्र 'मानकू' द्वारा रानी मालिनी के आदेश से सन् 1730 ई. में चित्रित किये गये थे।

गीत गोविन्द काव्य के आधार पर चित्रित राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में भी बसोहली शैली का चित्र समूह प्राप्त होता है। ये चित्र मानकू द्वारा चित्रित 1730 ई. के हैं, इनकी माप 122''×8.4' हैं इन चित्रों की पृष्ठभूमि के लिए हल्के भूरे रंग, लाल रंग तथा हरे रंग की पृष्ठभूमि का प्रयोग किया गया है। ये चित्र काँगड़ा शैली के चित्रों के काफी निकट है। इन चित्रों में सपाट की जगह पर उतार-चढ़ाव रंगों के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। आकृतियाँ चण्डीगढ़ वाले गीतगोवन्द के चित्रों की अपेक्षा कुछ बड़ी है व उनके वस्त्रों में सिकुड़न आदि को छाया-प्रकाश के माध्यम से दिखाने की पूर्ण कोशिश की गई है। राधा के पारदर्शी कपड़े बड़े ही मनोहारी दृष्टि से बनाये गये है, जिससे राधा का सौन्दर्य काफी निखरा हुआ नजर आता है। राधा के चेहरे पर लज्जा, उत्सुकता तथा व्यग्रता के भाव को यत्र-तत्र प्रकट करने की पूर्ण कोशिश की गई है इस चित्र में पहले की तरह आँखें लम्बी तो हैं लेकिन ज्यादा गोलाई लिए हुए नहीं हैं। रंगों का सामंजस्य मीठापन लिए हुए हैं। पेड़ों के अलंकरण चण्डीगढ़ व लाहौर, संग्रहालय में स्थित गीत गोविन्द के चित्रों की भाँति न होकर उससे कुछ विविधता व उतार-चढ़ाव ज्यादा है। जमीन को पीला लिए हुए धानी रंगों से दिखाया गया है एवं उसमें उतार-चढ़ाव के लिए गहरे धानी रंगों का प्रयोग किया गया है। नदी और उसके किनारों को अलग-अलग करने के लिए तेज सफेद रंग की घास के छोट-छोटे पौधों को बनाकर अलग-अलग चित्रित किया गया है।कृष्ण के चेहरे को परदाज करके उभार दिखाने का प्रयास किया गया है, पर काँगड़ा जैसी सुकुमारता नहीं आ पायी है। अलंकरण में बहुत बारीकी से काम नहीं किया गया है एवं उसमे विविधता भी नहीं है। वृक्षों को एक ही पंक्ति में बनाया गया है लेकिन दूरी या गहराई दिखाने के लिए उनमें किसी-किसी को थोड़ा पीछे हटाकर बनाया गया है। गीत गोविन्द के इन चित्रों का उल्लेख एम. एस. रन्धावा ने अपने पुस्तक, बसोहली पेंटिंग में भी किया है। जिसमें कहीं वियोगकृष्ण, विरहणी राधा औरकृष्ण का बसन्त के दिनों में गोपियों के साथ रास-लीला, बसन्त ऋतु का प्रदर्शन कृष्ण का बिरह गोपों के साथ, कृष्ण की विचार गोष्ठी आदि दृश्यों का प्रदर्शन किया गया है।[3]

भारत कला भवन, वाराणसी में बसोहली शैली में गीत गोविन्द काव्य के आधार पर चित्रित दो चित्र हैं जो मानकू द्वारा चित्रित सन् 1730 ई. के महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह चित्र चण्डीगढ़ संग्रहालय में चित्रित गीतगोविन्द के चित्रों से काफी मेल खाता है। अन्तर सिर्फ इतना है कि इसमें राधा और कृष्ण की मुखाकृति कुछ लम्बापन लिए हुए है जबकि चण्डीगढ़ वाले गीत गोविन्द के चित्रों में राधा और कृष्ण की मुखाकृति कुछ भारी तथा गोल है। चण्डीगढ़ वाले कृष्ण के लिए गाढ़े नीले रंग का प्रयोग किया गया है तथा वे लम्बे घुटनों तक हार धारण किये हैं जबकि भारत कला भवन वाले गीत गोविन्द के चित्र में कृष्ण का शरीर हल्का तथा गले में एक छोटा मोतियों का हार धारण किये हैं।[4]

अठारहवीं शताब्दी के पश्चात् पहाड़ी चित्रकला की बसोहली शैली में गीत गोविन्द पर आधारित अनेक चित्र मालाएँ तैयार की गयीं हैं काँगड़ा शैली में कलात्मक

अभिव्यक्ति का चरमोत्कर्ष नि:सन्देह उस चित्रमाला में है जो टिहरी और गढ़वाल के महाराजा के कला संग्रह में हैं और जिसके चित्र के पीछे इस गीतिकाव्य की वे पंक्तियाँ भी अंकित की गयी हैं जिन पर वह आधारित हैं इसके साथ यह बात भी उल्लेखनीय है कि इस चित्रमाला के उद्‌गम स्थल और काल के बारे में विद्वानों में मतभेद है।

इस चित्रमाला को सबसे पहले प्रकाश में लाने का श्रेय एन. सी. मेहता को है। उन्होने बम्बई से 1926 ई. में प्रकाशित अपने "ग्रन्थ स्टडीज इन इण्डियन पेंटिंग" में पृष्ठ सं. 49 में इस पर विचार करते हुए लिखा कि यह चित्र माला टिहरी-गढ़वाल शैली की है। लेकिन खण्डेलवाल ने बम्बई से 1958 ई. में प्रकाशित "पहाड़ी मिनिएचर पेटिंग" में पृष्ठ 83 पर विचार व्यक्त किया है कि शैली की दृष्टि से इस चित्रमाला का गढ़वाल शैली से कोई सम्बन्ध नहीं है और इस बात की पूरी संभावना है कि कलाकार मानकू ने गुलेर में इनका सृजन किया है। ऐसा लगता है कि बाद में मानकू काँगड़ा के संसार चन्द (1775-1823 ई.) की सेवा में आ गये थे, लेकिन इस चित्रमाला का सृजन गुलेर में हुआ था या काँगड़ा में यह विवादास्पद विषय ही है।[5]

इस चित्रमाला का सृजन काल भी विवादास्पद है विभिन्न विद्वान इसे सन 1730 ई. के बीच का स्वीकार करते हैं जबकि अधिकर लेखकों ने इसे सन् 1760 से 1790 ई. के बीच की रचना माना है।

चित्रकला की एक पेंटिंग के ऊपरी भाग पर मौजूद संस्कृत का एक श्लोक बसोहली शैली में चित्रित गीत गोविन्द के एक चित्र पर अंकित श्लोक का अनुकरण है। बसोहली चित्रमाला के श्लोकों के अनुसार इनका सृजन 1730 ई. तक पूरा कर लिया गया था और उसमें किसी एक मानकू का उल्लेख भी है। बसोहली चित्रमाला पर अंकित संस्कृत श्लोक की विभिन्न व्याख्याओं के कारण यह श्लोक काफी विवाद का विषय रहा है। विवाद के अनेक विषयों में यह भी है कि मानकू चित्रमाला की संरक्षिका का नाम है या सृजन कार का और मानकू स्त्री है या पुरुष लेकिन इस विवाद पर विचार किया जाना इसलिए जरूरी नहीं है कि इस श्लोक का चाहे जो भी अर्थ हो, वर्तमान चित्रमाला के संदर्भ मे कोई भी समीपता नहीं है, क्योंकि यह चित्रमाला 1730 ई. की बसोहली चित्रमाला का अनुकरण मात्र है। बसोहली चित्रमाला के 1730 ई. के श्लोक के अनुकरण के कारण हो सकते हैं, लेकिन एक बात स्पष्ट है कि वर्तमान चित्रमाला का सृजनकाल उसके काफी बाद का है।[6]

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. जे.सी. फ्रेंच, हिमालयन आर्ट, संस्करण1932, पृ.सं. 43
2. अजीत घोस, रूपम जनवरी, 1929 ई. सं. 37, पृ.सं. 5
3. एम.एस. रंधावा, बसोहली पेंटिंग, पृ.सं. 33-34
4. डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी, पहाड़ी लघु चित्रों में गीतगोविन्द-5-संस्करण1988 पृ.सं. 27
5. एल.सी. मेहता, स्टडीज इन इण्डियन पेंटिंग, संस्करण 1926 पृं.सं. 49
6. कार्ल खण्डेलवाल, पहाड़ी मिनिएचर पेंटिंग, संस्करण 1956, पृ.सं. 83

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

राजस्थानी चित्रकला में पशु-पक्षियों का महत्व

• प्रहलाद सिंह

सारांश- समस्त राजस्थानी चित्रशैलियों का विकास प्राय: राजाओं, सामन्तों के संरक्षण में हुआ और इनके द्वारा तत्कालीन विकास को आसानी से समझा जा सकता है। इनके हृदय में राम-कृष्ण तथा शैव मत पूर्ण रूप से व्याप्त था और प्रत्येक नर-नारी के हृदय में इसके प्रति भावना व्याप्त थी, जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को लेकर यहां की स्थानीय लोककलाओं में दिखाया गया है। आज हम इन चित्रों से प्रेरणा लेकर इनमें व्याप्त संरचनाओं को आसानी से समझ सकते हैं। प्रत्येक पशु-पक्षी भगवान के द्वारा दी गई विशेषताओं को भी उनमें समझा जा सकता है, जो कि मानव के जीवन विकास का प्रमुख आधार मानी जा सकती हैं।

मुख्य शब्द - मनोभावों, संस्कृति, चित्रण, चित्रों, भित्तियों

आरम्भ से वर्तमान तक निरन्तर से चले आ रहे मानव के सामाजिक सांस्कृतिक तथा धार्मिक गतिविधयों में जो भी विकासक्रम रहा, उसमें देश की प्राकृतिक छटा,गतिविधियाँ, भौगोलिक स्थिति व प्रत्येक क्षेत्र का अपना-अपना अलग महत्व रखता है। राजस्थान में प्रत्येक क्षेत्र का अपना अलग महत्व है। वहाँ की लोक-कला से जुड़ी विशेषताऐं, जिसमें चित्रों के माध्यम से अपने मनोभावों तथा लोक संस्कृति को दर्शाया गया है। राजस्थान में अलवर, जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, किशनगढ़ नाथ द्वारा मेवाड़, मारवाड़, उनियास एवं पाली आदि स्थानों में प्राय: राजघरानों की हवेलियों, छतरियों, महलों, मन्दिरों में आज ये चित्रों के माध्यम से दर्शाये गये, जिसमें मानव के साथ-साथ पशु-पक्षियों को बखूबी से दर्शाया गया है, जिसमें हाथी, घोड़े, गाय, बैल, ऊँट, शेर, चीता, हिरन, बन्दर आदि जानवरों को दर्शाया गया है। इसी प्रकार से पक्षियों में मोर, बगुला, चकोर, हंस, तोता, कबूतर, कौआ आदि चित्रकारी की आँखों से ओझल नहीं हो सकते। कहीं न कहीं इसी प्रकार से चित्रण अवश्य मिलता है। कलाकारों ने प्राय: चित्रों ,भित्तियों में इनको दर्शाया है। मानव सदैव से प्रागैतिहासिक काल से ही इन पशु-पक्षियों के साथ रहता आया है, जिनका शिकार करने के साथ-साथ उनका इन से सम्बन्ध स्थापित हुआ, जिनको पशुपालन के रूप में मानव की प्रवृत्तियाँ बदली। जयपुर, अलवर, जोधपुर, किशनगढ़ इत्यादि स्थानों पर जाकर देखा तो प्राय: उपरोक्त धारणा सभी चित्रों में किसी न किसी रूप में दर्शायी गयी है। आज के कलाकारों में राम गोपाल

• सहायक प्राध्यापक, स्कूल ऑफ फाईन आर्ट्स एण्ड परफार्मिंग आर्ट्स, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

विजयवर्गीय, श्री कुंवर संग्राम सिंह (नवलगढ़) के व्यक्तिगत संग्रहालयों में इसी प्रकार के चित्र देखने को मिले। राजस्थानी शैली अत्यन्त प्राचीन भी मानी जाती है। मैने वहाँ स्वयं जाकर पशु-पक्षियों का झुण्ड जब समीप आता और इसी प्रकार मानव के संदिग्ध में उनके क्रियाकलाप देखने को मिलते हैं। यहाँ के कलाकरों ने भगवान श्री कृष्ण के लीलाओं से सम्बन्धित भी चित्र बनाये, जिसमें मोर, गाय तथा अन्य पशुओं को दर्शाया गया। यह सांस्कृतिक महत्व को दर्शाते हैं और इनके द्वारा मानव की क्रियाकलापों को जोड़ा गया है।

जब एक कलाकार राग-रागिनयों का चित्र बनाता है, तो एक संगीत के माध्यम से उस पशु के द्वारा मानव के अपनी अभिव्यक्ति करने की चेष्टा करता है। कलाकारों प्राय: सभी पशुओं को अलग-अलग महत्व एवं उपयोगिता के अनुसार चित्रों में दर्शाया है। कहीं कहीं पर नानाप्रकार की क्रीड़ाओं के माध्यम से मानव ने अपनी व्यथा तथा मनोभावों को दर्शाया है। आज हम प्राचनी मंदिरों में अजन्ता, एलोरा आदि गुफाओं में मानव तथा पशु-पक्षियों के सम्बन्ध को अत्यन्त भावुकता के साथ दर्शाया गया है। हमारे ग्रन्थों में वर्णित भगवान शिव की क्रियाकलापों को कहीं न कहीं पशुओं के माध्यम से दर्शाया गया है, जिसमें एक बार पार्वती जी जंगल में अकेले चली जातीं हैं, जिसमें शिव जी मना करते हैं तभी एक बन्दर उनको खदेड़ लेता है और पार्वती जी भागकर शिव जी से लिपट जाती हैं, तभी शिव जी एक छड़ी के माध्यम से उस बन्दर को उसी जगह रोक देते हैं (कहने का तात्पर्य शिव जी बंदर को वहीं पर रोककर और पार्वती जी अपने सानिध्य में में लिये रहें)। यह अत्यन्त मार्मिक वर्णन चित्रों तथा मूर्तियों में अक्सर देखने को मिल जाता है। आज हम राजस्थानी रीति-रिवाज तथा मौलिक परंपरा सांस्कृतिक स्वरूपों में इनको किसी न किसी स्वरूप में चित्रों में देख सकते हैं। शैली तथा भारतीय स्परूपों को अलग-अलग शैलियों में इनके माध्यम से बनाया गया।

आज भी राजस्थानी चित्रकार अपनी परंपराओं मे बधे हुए हैं, कोई भी यूरोपीय प्रभाव देखने को नहीं मिलता। जयपुर के समीप वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली में चित्रकला विभाग के श्री देवकीनंदन शर्मा जी की कलाकृतियाँ देखने को सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनको समीप से बनाते हुए भी देखा, जिनमें पक्षियों को मेरे सामने ही बड़े मार्मिक ढ़ंग से चित्रित किया। इनका प्रत्येक चित्र में अपना अलग-अलग महत्व है। किशनगढ़ की शैली में छरहरे बदन की नायिकायें तो कोटा बूंदी की चित्रों में प्राय: छाटे कद की महिलाऐं जिनको अधिकतर शिकार करते हुए दर्शाया गया है। जोधपुर में नौका-बिहार बीकानेर के चित्रों में स्थानीय पशुओं के साथ मानव की आकृतियों को दर्शाया गया है। ऊँट तथा हाथियों को ऐश्वर्य के प्रतीक की भाँति राजाओं के साथ दर्शाया गया है। आज भी राजस्थान में प्रत्येक घरों के बाहर दरवाजे के दोने तरफ हाथी तथा घोड़े के चित्र बनाये जाते हैं। यह समस्त चित्र अपना-अपना अलग प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें वहाँ की परंपरा को दर्शाया गया है। घोड़े को सर्वश्रेष्ठ तथा हाथी एवं ऊँट को अधिक प्रयोग किया गया है। ऊँट को राजस्थान का जहाज भी कहा जाता है, जो कि कई दिनों तक बिना पानी पिये रह सकता है। घोड़े को सबसे वफादार और गति के रूप में माना जाता है। राजस्थान के बाद मुगल के समय भी इनका लड़ाई आदि में भरपूर प्रयोग किया गया। हमारे पुराणों में

भी हाथियों को गणेश के रूप में माना गया, जो कि पृथ्वी के अन्दर तथा अन्य पशुओं से अलग इसके महत्व के बारे में बताया गया है। आज भी हम इनको किसी न किसी रूप में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। आज भी ये राजस्थानी शैली मौलिक एवं धर्म प्रधान मानी जाती है, जो कि अपनी प्राचीनतम परंपराओं को समेटे हुए है। मध्य काल के आते आते जैत तथा बौद्ध धर्म ने अत्यधिक जोर पकड़ा, लेकिन इनके धर्मों के अनुसार भी पशुओं को किसी न किसी रूप में बौद्ध के साथ दर्शाया गया। जैसेहंस-जातक एवं हस्ति-जातक। यह सब वहाँ की स्थानीय संस्कृति तथा कला वैभव को दर्शाते हैं। धर्म से कला को कला से धर्म को एक दूसरे के पयार्य होते हुए भी इन पशु-पक्षियों ने भी एक दूसरे के पर्याय की भूमिका निभायी है।[1] पौराणिक दृष्टि से हमारे यहाँ वेदों में भी इनका महत्व दिया गया है। जैसे प्रत्येक देवता को किसी न किसी वाहन चाहे व पशु हो या पक्षी उस पर बैठा अथवा उसके साथ दर्शाया गया है। जैसे लक्ष्मी को उल्लू, भगवान विष्णु का गरूण, दुर्गा का शेर किसी न किसी देवता को बिना वाहन के नहीं दर्शाया गया है। इन वाहनों की सार्थकता एवं सात्विकता आज हम भूलते जा रहे हैं। कभी-कभी दीपावली जैसे त्योहारों पर इनका प्रयोग लोग अज्ञानता वश करते हैं। जैसे- इस दिन उल्लू की बलि चढ़ाने का प्रचलन लोग अपनाते हैं। राजपूतों के व्यक्ति चित्रों में उननी साज-सज्जा, पोषाकें, पगड़ी और पुरूषों की की दाढ़ी -मूछे, रंग-विधान रेखांकन अलग-अलग स्वरूपों को दर्शाती है[2] इसीलिए राजस्थान को राजपूताना या आन-बान-शान वाला प्रदेश भी कहा जाता है। यहाँ के शान शौकत में आज भी छतरियाँ, महलों एवं बावड़ी तथा उनकी आन्तरिक साज-सज्जा जिसमें कांच, हीरे, मोती एवं असली सोने का कार्य देखने को मिलता है।

राजस्थानी शैली में प्रेम कथाओं, रामायण, महाभारत, हीर-रांझा, ढ़ोलामारू तथा स्थानीय किवदंतियों पर आधारित भी चित्र बनाये गये। राजस्थानी चित्रों में पशु-पक्षियों को प्रायः लघु-चित्र, तीज-त्योहार, रीति-रिवाज के साथ-साथ भित्ति चित्रों में भी चित्रित किया गया है। पशुओं के शिकार करते चित्र शान-सौकत, वीरता का प्रदर्शन माना गया है। कहीं कही पर चित्रों में छोटे बच्चे (राजा) को शेरनी का दुग्धपान करते भी दर्शाया गया है। इन राजाओं का जीवन सौर्य एवं विलासतापूर्ण माना जाता था, जिसमें नारियों के लालित्य एवं श्रेष्ठता को दर्शाया गया है।[3] धार्मिक अनुष्ठानों में भी विधिपूर्वक तत्कालीन पौराणिक, धार्मिक विषयों को लेकर चित्रण हुआ है। भित्ति चित्रों की परंपरा को अनेक प्रकार से दिखाया गया है। लघु-चित्रों में ताड़-पत्र, भोज-पत्र इत्यादि पर भी चित्रण किया गया है। तकनीकि दृष्टि से कई जगह चावल तथा अन्य प्रकार के खाद्य सामग्री पर भी चित्रण किया गया है, जोकि अत्यन्त कठिन माना जाता है। तकनीकि दृष्टि से इसमें सोने चांदी का भी भरपूर प्रयोग किया गया है, जोकि मुगल काल तक चलता रहा। इनके पोषाकों में भी सोने के धागे का प्रयोग किया गया है, जिनमें कई जगह रत्न जड़े जाते थे। जेवरों के साथ-साथ नारी के महत्व प्रधानता के साथ-साथ सुकमारता, वीरता, साहस को भी दर्शाया गया है। युद्धों में ये रानियां अपना वेशभूषा बदलकर राजाओं के साथ युद्ध बड़ी चालाकी से करती थीं। उनके क्रियाकलापों मे वनस्पतियां, लताओं इत्यादि को उसके शीर्षक के अनुसार दर्शाया गया है। इसी प्रकार से पशु-पक्षियों के जीवन से सम्बन्ध स्थापित करके इनके चित्रों में संजोया है[4] जिससे यहां के प्रकृति

का प्रेम भी दिखाई पड़ता है। तत्कालीन राजस्थानी चित्रों में जीवन के वास्तविक सार्थकता को इन पशु-पक्षियों के माध्यम से दर्शाया गया है, जिसमें सौन्दर्य के साथ-साथ उनके वैभव एवं भावों को व्यक्त किया गया है।[5] पशु-पक्षियों को राग-रागिनी, बारहमासा ऋतुओं से सम्बन्ध स्थापित करके बनाया गया है। धरातल के पीछे प्रकृति को दर्शाकर उसकी वास्तवकिता दर्शायी गयी है।

समस्त राजस्थानी चित्रशैलियों का विकास प्रायः इन राजाओं, सामन्तों के संरक्षण में हुआ और इनके द्वारा तत्कालीन विकास को आसानी से समझा जा सकता है। इनके हृदय में राम-कृष्ण तथा शैव मत पूर्ण रूप से व्याप्त था और प्रत्येक नर-नारी के हृदय में इसके प्रति भावना व्याप्त थी, जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को लेकर यहां की स्थानीय लोककलाओं में दिखाया गया है। आज हम इन चित्रों से प्रेरणा लेकर इनमें व्याप्त संरचनाओं को आसानी से समझ सकते हैं। प्रत्येक पशु-पक्षी भगवान के द्वारा दी गई विशेषताओं को भी उनमें समझा जा सकता है, जो कि मानव के जीवन विकास का प्रमुख आधार मानी जा सकती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. डॉ. राम कंवर, शोध प्रबन्ध अलवर चित्र शैली - एक अध्ययन
2. वाचस्पति गैरोला भारतीय चित्रकला, पृष्ठ सं. 165
3. वाचस्पति गैरोला भारतीय चित्रकला, पृष्ठ सं. 165
4. डॉ. गुप्ता विद्यारानी प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृष्ठ सं. 150
5. डॉ. राम कंवर, शोध प्रबन्ध अलवर चित्र शैली - एक अध्ययन

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

भारतीय समकालीन कला का न्यू मीडिया (वर्तमान परिप्रेक्ष्य में)

• सहदेव सिंह मरकाम

सारांश- आज की स्थिति सुखद है वह जो कला के लिए ही जीते हैं, जिनकी अन्तरात्मा में केवल कला है, वही कला कर्म कर रहे हैं। हमें स्वागत करना चाहिए उन कलाकारों का, उनके प्रयोगों का जो समाज को, देश को कुछ नया देना चाहते हैं। उनकी विधायें माध्यम कोई भी हों, तकनीक कोई भी हो ''समय का प्रतिनिधित्व करती हुई रचनाओं की सार्थक अभिव्यक्ति'' को महत्व देना चाहिए। इसी तरह न्यू मीडिया विज्ञान और अभियान्त्रिकी से जुड़े होने के कारण रचनात्मकता के नए द्वार खोल सकती है और समयानुकूल विषयों की अभिव्यक्ति का माध्यम इसे बनाया जा सके तो हम कला को और समृद्ध कर सकते हैं। कुछ अपवादों को छोड़ दे तो देश में अनेक कलाकार न्यू मीडिया के क्षेत्र में अच्छा काम कर रहे हैं। उनके प्रयोगों से न कि सिर्फ देश ही बल्कि वैश्विक स्तर पर कला जगत समृद्ध हुआ है और कला प्रयोगों पर सोचने विचार करने को एक नई दिशा मिली है।

मुख्य शब्द - मीडिया, कला, विधायें, विज्ञान, अभियान्त्रिकी

कलाकार दृश्यमान जगत में अपने चारों ओर जो कुछ देखता व महसूस करता है उसी को कला के किसी भी माध्यम से अभिव्यक्त करता है। समकालीन जीवन शैली पूर्णतः विज्ञान का युग है। घर से बाहर तक सभी क्षेत्रों में विज्ञान ने सुख-सुविधाएं उपलब्ध कराने का अपूर्व कार्य किया है। कलाएं भी विज्ञान के प्रभाव से मुक्त नहीं रही हैं। समसामयिक कला में यह परिर्वतन निरन्तर विद्यमान है। 'नई मीडिया कला' कला का ही एक रूप हैं जिसमें उभरते हुए मीडिया तकनीकों का उपयोग करते हैं और उनकी सांस्कृतिक, राजनीतिक और सौंदर्य संभावनाएं तलाशती हैं। यह कलात्मक अभिव्यक्तियों की एक विस्तृत श्रृंखला को शामिल करता है- इन्स्टॉलेशन आर्ट, डिजिटल आर्ट, वीडियों आर्ट, प्रिन्टमेकिंग, मिश्रित माध्यम आदि समकालीन कला का यह नया रूप है, जिसे न्यू मीडिया कहा जा रहा है। इस प्रकार के प्रयोग वर्तमान कला जगत को प्रतिबिम्बित कर रही हैं।

फिलहाल न्यू मीडिया के पहले चरण में इंस्टालेशन आर्ट (संस्थापन कला)। इंस्टालेशन दरअसल एक तरह की समग्र कला है। इसे वातावरण कला भी कह सकते हैं। कलाकार किसी जगह विशेष में कला का एक माहौल पैदा करता है। इस माहौल में

• सहायक प्राध्यापक, चित्रकला विभाग, शा.म.ल.बा.कन्या महाविद्यालय भोपाल (म.प्र.)

उसकी खुद की हिस्सेदारी भी हो सकती है, वह पहले से मौजूद सामग्री का भी नए ढंग से इस्तेमाल कर सकता है, और उसमें वह जोड़ या घटा भी सकता है। अनुपयोगी या कम उपयोगी सामग्रियों को प्रयोग कर एक 'कृति' की रचना करते हैं। अनुपयोगी सामग्रियों को भी पुनः एक जीवन देते हैं। यानी सब कुछ आर्टिस्ट के उद्देश्य और कॉन्सेप्ट पर निर्भर करता है। यह कला पुनरावि'कृत होने के कारण यह व्यावहारिक जीवन के अति निकट का अनुभव कराती हैं।

इंस्टालेशन के अनेक रूप समकालीन कला प्रयोगों के संदर्भ में देखने को मिलते हैं। जिसमें सुबोध गुप्ता का नाम प्रमुख है, इन्होने रसोईघर की स्टेनलेस स्टील के बर्तनों से पेड़ की आकृतियां जिसका शीर्षक 'दादा' है, तीन साइकिल पर बंधे दूध के डिब्बे-जिसका शीर्षक 'तीन गाय' है, बालटियों के विराट ढेरों और बड़ी संख्या में टंगे डिश रैकों से लेकर अंतरिक्षयान, परमाणु बम विस्फोट से उठता धुएं का गुबार, लावा के समान उफनता प्रवाह और दैत्याकार मानव खोपड़ियां आदि सैकड़ों इंस्टालेशन बनाकर अपने आपको एक विश्वविख्यात इंस्टालेशन आर्टिस्ट के तौर पर स्थापित किया। अनीश कपूर के मेघद्वार जैसा प्रयोग, विवान सुन्दरम-दा ग्रेट इण्डिया बाजार, बाबरी मस्जिद के ध्वंस और मुंबई के सांप्रदायिक दंगों से जुड़े इंस्टालेशन के कारण चर्चित रहे। विवान सुन्दरम वर्तमान में डिजिटल तकनीक से अपने अतीत को एक नया अर्थ देने की कोशिश कर रहे है। स्व. भूपेन खक्खर ने जर्मनी की बहुचर्चित अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी 'डॉक्यूमेंटा' में एक बार भारतीय पान की दुकान को ही इंस्टॉलेशन आर्ट के रूप में प्रदर्शित कर दिया था। ये कलाकार 1970 के दशक में अपनी ईजल पेंटिंग के लिए मशहूर थे, अब वे अपने कैनवास को भूल चुके हैं, नई यंत्र विधि ने उन्हें इंस्टॉलेशन आर्ट की दुनिया में नए जोखिम उठाने के अवसर दिए है।

इन उल्लेखनीय कलाकारों के अतिरिक्त भारत वर्ष में अनेक कलाकार विभिन्न प्रकार के प्रयोग कर रहे हैं, कहीं मानव शरीर पर टैटू, बॉडी आर्ट, अपने शरीर का प्लास्टर या मेटल मोल्ड, गुब्बारे, रोबोट, शोरूम में रखे जाने वाले बच्चों व स्त्री-पुरूष के पुतले, मानव कंकाल, कंकाल के रूप में मोटरों के ढांचे, पेड़ों और बड़ी-छोटी झाड़ियों का प्रतिरूप, मछली घरों का प्रतिरूप, इलेक्ट्रानिक प्रजेन्टेशन, बन्दूक नुमा गमलें में गेंहू का उपजाना, बड़ी-बड़ी होर्डिंग पर कुछ स्क्रिप्ट एवं अन्य तरह का विजुअल और नित-नए आयाम सामने ला रहे हैं। यह प्रश्न अलग है कि इस ट्रेंड का भविष्य क्या होगा पर यह न्यू मीडिया के विकास का पहला चरण कहा जा सकता है।

इसका दूसरा चरण पूरी तरह डिजिटल प्रजेंटेशन पर आधारित है। देश में कई कला वीथिकाएं आज न्यू मीडिया- वीडियो आर्ट, विडियों इंस्टालेशन को प्रोत्साहित कर रही है। इसके अंतर्गत आने वाले कला रूप है- कांसेश्चुअल आर्ट, डिजिटल आर्ट, एनीमेशन, मल्टी मीडिया आर्ट, एवोल्यूशनटी आर्ट, रोबोटिक आर्ट, वीडियो टेप्स, सीडी रोम्स, वेबसाइट, इंटरनेट, यू ट्यूब, फेसबुक, आरकुट इत्यादि। यह सभी कमोवेश तकनीकी और यांत्रिक विधाएं हैं और कम्प्यूटर उनका आधार है। यह कला कम इसे यान्त्रिक अधिक मानतें हैं। युवा कलाकार जो विज्ञान और नई तकनीकों से सहज हैं और शिल्पगत दक्षता के साथ ही नए विचारों, नई खोजों से अपने को सहज कर पाए हैं और

इसके प्रदर्शन का अवसर भी उन्हें प्राप्त हुआ है वही इस ओर प्रयोगोन्मुखी हैं। दूसरे चरण के न्यू मीडिया में काम करने वाले कलाकारों में नलिनी मलानी का इंस्टालेशन 'गेम पीसेज' वीडियो और शैडो प्ले की तकनीक का इसमें सुंदर इस्तेमाल है, छह चित्रित सिलिंडर घूम रहे हैं जिन पर हिंदू देवी-देवता पहचाने जा सकते हैं (कालीघाट की चित्रशैली में), दूसरी ओर वीडियो में पश्चिम के आणविक बम से जुड़ी सामग्री को खास तरह से दिखाया गया है, कुमार गंधर्व की आवाज भी पृष्ठभूमि में पहचानी जा सकती है, हिंसा और युद्ध पर सोचने का सामान मौजूद है, साथ ही कला का एक सम्पूर्ण अनुभव भी मिल जाता है। शीबा छाछी- नीलकंण: पॉजन, नेक्टर 260 अल्युमिनिय टावरों, प्रकाश, फोटोग्राफ, ट्रांस्लाइड और वीडियो, विभा गहलोत्रा का वह इंस्टालेशन जो बढ़ते अपार्टमेंट कल्चर और उसके ढह जाने को इंगित करता है, उल्लेखनीय उदाहरण है। विभा का प्रदूषण पर आधारित वीडियो इंस्टालेशन भी महत्वपूर्ण है, जिसमें सभी किरदार पिग-मास्क लगाकर दिखाए गए हैं। यूरोपीय देशों में इस तरह के प्रयोग लगभग पांच दशक पूर्व से हो रहे हैं। इसका प्रचार-प्रसार भी मीडिया -इंटरनेट पर काफी होता रहा है। एक बार तो इसके पक्ष और पारंपरिक ढंग से होती आ रही कला के विपक्ष में ऐसा वातावरण भी बनने लगा था कि कैनवास, मूर्तियों की जगह अब न्यू मीडिया ले लेगा। इसके साथ ही जी. आर. इरन्ना, अनीश कपूर, सुनयना आनन्द, बैजू पारथन, हीटेन पटेल, सुरेखां, अतुल डोडिया, सुबोध केलकर, स्वर्णजीत सबी, भारती खेर, टागरा एण्ड ठुकरल, चिन्तन उपाध्याय, अबीर करमाकर, विभा गहलोत्रा आदि मुख्य रूप से प्रकाश-वृत में हैं। ये कलाकार आज भारतवर्ष में न्यू मीडिया को लोकप्रिय बनाने के लिए अनेकानेक प्रयोग कर रहे हैं और अपनी विधा को विकसित, प्रसारित करने के लिए विश्व के कोने-कोने में या कहें विभिन्न नगरों मे जाकर लोगों से विचारों का विनिमय भी कर रहे है। इनमें अधिकांश कलाकार ऐसे हैं जो स्वयं डिजिटल स्टूडियो बनाकर या टेक्नीशियन की सहायता से अपने विचारों को साकार कर रहे हैं। वीडियो आर्ट बनाम कैनवास जैसे विषयों पर चर्चा भी हो गई पर आर्थिक मंदी के पैर पसारते ही परिस्थितियां कुछ बदलीं और कला की समस्त विधाएं यथोचित महत्व पाते हुए समानान्तर रूप से फलती-फूलती रहीं। आज जहॉ न्यू मीडिया का स्वागत है, उचित प्रोत्साहन है वहीं कैनवास को नकारा भी नहीं जा रहा है।

न्यू मीडिया समकालीन कला के पर्याय बनते जा रहे है। इस पर गम्भीर एवं सघन विचार पूर्वक ही आगे आना चाहिए। यह कहीं एक फैशन का रूप मात्र न ग्रहण कर पाएं। निःसंदेह आधुनिक कला में अच्छे प्रयोगधर्मी कलाकारों ने नयी रचनाएं स्थापित की है। यहां तक कि युवा कलाकारों का कार्य कम सराहनीय नहीं है। उनमें भी सृजन की अपार लालसा एवं गाभ्मीरर्य विद्यमान है। प्रत्येक युग की कला में आज प्रयोग विकास के पोषक होते है। आज की समकालीन कला में आज के प्रयोग पुराने पड़कर भविष्य की कला को नयी प्रेरणा अवश्य प्रदान करेंगे। यह सतत् चलने वाली प्रक्रिया है जिसका सदैव महत्व बना रहेगा।

आज की स्थिति सुखद है वह जो कला के लिए ही जीते हैं, जिनकी अन्तरात्मा में केवल कला है, वही कला कर्म कर रहे हैं। हमें स्वागत करना चाहिए उन कलाकारों का,

उनके प्रायोगों का जो समाज को, देश को कुछ नया देना चाहते हैं। उनकी विधायें माध्यम कोई भी हों, तकनीक कोई भी हो "समय का प्रतिनिधित्व करती हुई रचनाओं की सार्थक अभिव्यक्ति" को महत्व देना चाहिए। इसी तरह न्यू मीडिया विज्ञान और अभियान्त्रिकी से जुड़े होने के कारण रचनात्मता के नए द्वार खोल सकती है और समयानुकूल विषयों की अभिव्यक्ति का माध्यम इसे बनाया जा सके तो हम कला को और समृद्ध कर सकते हैं। कुछ अपवादों को छोड़ दे तो देश में अनेक कलाकार न्यू मीडिया के क्षेत्र में अच्छा काम कर रहे हैं। उनके प्रयोगों से न कि सिर्फ देश ही बल्कि वैश्विक स्तर पर कला जगत समृद्ध हुआ है और कला प्रयोगों पर सोचने विचार करने को एक नई दिशा मिली है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. विनोद भारद्वाज, बृहद आधुनिक कला कोश
2. डॉ. मधुर लता भटनागर, ललित कलाओं का सौंदर्य-विधान
3. भारत संदर्भसंपादक, नवदीप सूरी
4. प्राण नाथ मागो, भारत की समकालीन कला एक परिप्रेक्ष्य
5. कला दीर्घा, संपादक, अवधेश मिश्र
6. http://mimirbook.com

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

संतुलित आहार : जीवन का आधार

• आशुतोष भण्डारी

सारांश- संतुलित आहार व्यक्ति के स्वास्थ्य का प्रमुख आधार है जिस पर व्यक्ति की सम्पूर्ण जीवन शैली निर्भर करती है। संतुलित आहार जीवन को एक समुचित आधार देता है जिसके कारण वह अपने जीवन में सफलता प्राप्त करता है अन्यथा अस्वस्थ्य होने के कारण पूरा जीवन असन्तुलित हो जाता है। इसलिए सही आहार का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। संतुलित भोजन, वह भोजन तथा तरल पदार्थ जिसे हम सही मात्रा एंव उचित प्रकार से लेते हैं जो हमें पोषक पदार्थ और शरीर की कोशिकाओं को बनाये रखने के लिए उर्जा देता है तथा शरीर के अंगो की क्रियाशीलता बनाये रखता है और सामान्य वृद्धि और विकास करता है, संतुलित आहार कहा जाता है।

मुख्य शब्द - संतुलित आहार, जीवन, भोजन,कोशिका

श्संतुलित आहार में सभी पोषक तत्वों की उचित मात्रा होती है। संतुलित आहार शरीर की विभिन्न क्रियाओं के लिए उर्जा देता है और शरीर का विभिन्न बीमारियों से बचाव करता है।संतुलित आहार में प्रोटीन, कार्बोहाइट्रेट, वसा, चानिज लवण, विटामिन एंव जल समुचित एंव अनुपात में होते हैं। बच्चों के भोजन की व्यवस्था करते समय संतुलित आहार का ध्यान रखना चाहिए, यदि संतुलित आहार नहीं मिलता है तो बच्चो का उचित विकास नहीं हो पाता है। भोजन उनकी भूख मिटा लेता है लेकिन शरीर की जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर पाता है। अतः संतुलित आहार का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए जिससे शरीर का समुचित वृद्धि और विकास हो सके।

आहार को प्रभावित करने वाले कारक(Factors affecting diet)- किसी भी व्यक्ति का आहार कुछ प्रमुख कारकों पर निर्भर करता हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए आहार अलग-अलग भी हो सकता है।

1. कुछ प्रमुख कारक जो आहार को प्रभावित करते हैं जिनमें मुख्य रूप से प्रथम आयु, लिंग और शरीर का आकार। आहार अलग-अलग आयु वर्ग के लिए अलग और लिंग के आधार पर भी कम या अधिक हो सकता है तथा शरीर के आकार या उसकी क्षमता के आधार पर भी अलग हो सकता है।
2. द्वितीय कार्य की प्रकृति और समय के आधार पर आहार किसी व्यक्ति के कार्य करने के आधार पर और उस कार्य के भार तथा समय के आधार पर भी आहार

• एसोसिएट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, बी.वी.आर.आई., बिचपुरी, आगरा

निर्भर करता है।

3. तृतीय सामाजिक खान-पान तथा खाने की आदतें- आहार किसी भी व्यक्ति की आदतों या रूचि पर भी निर्भर करता है और अलग-अलग स्थानो पर भोजन के प्रकार पर या वहॉ के सांस्कृतिक खान पान पर भी निर्भर करता है।
4. चतुर्थ वातावरण का प्रभाव - अलग-अलग वातावरण के समय और विभिन्न वातावरण वाले स्थानों पर रहने वाले लोगो का आहार भी अलग-अलग हो सकता है।
5. पंचम स्वास्थ्य का स्तर- अलग-अलग व्यक्तियों के स्वास्थ्य के स्तर पर भी आहार निर्भर होता है जो उनकी वर्तमान स्वास्थ्य स्थिति को देखकर दिया जाता है।
6. छठवा मनोवैज्ञानिक सोच के आधार पर - कुछ लोगो को किसी प्रकार का खाना पसन्द होता है या किसी को खाने के स्वाद पर और किसी को अपने लिए अलग पसन्द होता है तथा दूसरे को वही पसंद होता है। इस प्रकार आहार अलग-अलग स्थितियों में या अलग -अलग कारको के कारण एक -दूसरे से अलग हो सकता है। उसी के आधार पर वह अपने कार्य को सम्पादित कर पाते है।

संतुलित भोजन- वह भोजन तथा तरल पदार्थ जिसे हम सही मात्रा एवं उचित प्रकार से लेते हैं जो हमें पोषक पदार्थ और शरीर की कोशिकाओं को बनाये रखने के लिए उर्जा देता है तथा शरीर के अंगो की क्रियाशीलता बनाये रखता है और सामान्य वृद्धि और विकास करता है, संतुलित आहार कहा जाता है। संतुलित आहार में सभी पोषक तत्वों की उचित मात्रा होती है। संतुलित आहार शरीर की विभिन्न क्रियाओं के लिए उर्जा देता हैऔर शरीर का विभिन्न बीमारियों से बचाव करता है।संतुलित आहार में प्रोटीन, कार्बोहाइट्रेट, वसा, खनिज लवण, विटामिन एंव जल समुचित एंव अनुपात में होते हैं। बच्चो के भोजन की व्यवस्था करते समय संतुलित आहार का ध्यान रखना चाहिए, यदि संतुलित आहार नहीं मिलता है तो बच्चों का उचित विकास नहीं हो पाता है। भोजन उनकी भूख मिटा लेता है लेकिन शरीर की जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर पाता है। अतः संतुलित आहार का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए जिससे शरीर का समुचित वृद्धि और विकास हो सके।

आहार को प्रभावित करने वाले कारक(Factors affecting diet)- किसी भी व्यक्ति का आहार कुछ प्रमुख कारकों पर निर्भर करता हैं इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए आहार अलग-अलग भी हो सकता है। कुछ प्रमुख कारक जो आहार को प्रभावित करते हैं निम्नलिखित हैं-

1. **आयु, लिंग और शरीर का आकार-** आहार अलग-अलग आयु वर्ग के लिए अलग और लिंग के आधार पर भी कम या अधिक हो सकता है तथा शरीर के आकार या उसकी क्षमता के आधार पर भी अलग हो सकता है।
2. **कार्य की प्रकृति और समय के आधार पर-** आहार किसी व्यक्ति के कार्य करने के आधार पर और उस कार्य के भार तथा समय के आधार पर भी आहार निर्भर करता है।

3. **सामाजिक खान पान तथा खाने की आदतें-** आहार किसी भी व्यक्ति की आदतों या रूचि पर भी निर्भर करता है और अलग-अलग स्थानो पर भोजन के प्रकार पर या वहाँ के सांस्कृतिक खान पान पर भी निर्भर करता है।
4. **वातावरण का प्रभाव-** अलग-अलग वातावरण के समय और विभिन्न वातावरण वाले स्थानों पर रहने वाले लोगो का आहार भी अलग-अलग हो सकता है।
5. **स्वास्थ्य का स्तर-** अलग-अलग व्यक्तियों के स्वास्थ्य के स्तर पर भी आहार निर्भर होता है जो उनकी वर्तमान स्वास्थ्य स्थिति को देखकर दिया जाता है।
6. **मनोवैज्ञानिक सोच के आधार पर-** कुछ लोगो को किसी प्रकार का खाना पसन्द होता है या किसी को खाने के स्वाद पर और किसी को अपने लिए अलग पसन्द होता है तथा दूसरे को वही पसंद होता है। इस प्रकार आहार अलग-अलग स्थितियों में या अलग -अलग कारको के कारण एक -दूसरे से अलग हो सकता है। उसी के आधार पर वह अपने कार्य को सम्पादित कर पाते है।

संतुलित भोजन के अवयव(Elements of Balanced Diet)-हमारे भोजन में कई प्रकार के पोषक तत्व होते है लेकिन मुख्य रूप से इन पोषक तत्वो को 6 वर्गो में बॉटा गया है जो मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं-

1. कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates)
2. प्रोटीन (Protein)
3. वसा (Fats)
4. विटामिन (Vitamins)
5. खनिज लवण (Minerals)
6. जल (Water)

हमारे शरीर को उर्जा प्राप्त करने के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित अनुपात में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है-

1. कार्बोहाइड्रेट : 57 प्रतिशत
2. वसा : 30 प्रतिशत
3. प्रोटीन : 13 प्रतिशत

यह तीनों पोषक तत्व उचित मात्रा में हमारे भोजन में उपलब्ध होने चाहिए।

1. कार्बोहाइड्रेट(Carbohydrates)- कार्बोहाइड्रेट हमारे शरीर को उर्जा देने का मुख्य स्रोत है। यह हमारे शरीर को कार्य करने के लिए तुरन्त उर्जा देते हैं और लंबे समय तक हमारे शरीर में संचित नही रह सकते हैं।

क. साधारण कार्बोहाइड्रेट(Simple Carbohyderate)-यह तुरन्त उर्जा देने वाले भोजन हैं। शुगर इसमें मुख्य रूप से आती है, यह कैलोरी देते हैं लेकिन इनमें विटामिन, मिनिरल और फाइबर कम मात्रा में होते हैं।

स्रोत-फल, दूध और दूध के पदार्थ, आलू, गाजर, शहद, जैम, केक, पेस्ट्री, आइसक्रीम, टेनिल शुगर, कैन्डी, सिरप, ड्रिंक्स (तरल पदार्थ), गुड़।

ख. जटिल कार्बोहाइड्रेट(Complex Carbohyderate)- स्टार्च मुख्य रूप से जटिल कार्बोहाइड्रेट में आते हैं। इनमें उर्जा की मात्रा शुगर की अपेक्षा अधिक होती है लेकिन यह कार्य के समय धीरे-धीरे प्राप्त होती है।

स्रोत-ब्रेड, अनाज(गेहूँ, बाजरा, चावल), स्टार्चीसिकियॉ और सभी दालें (चना,मूँग, राजमा) आदि।

2. प्रोटीन(Protein)- प्रोटीन से हमारे शरीर की सभी कोशिकाओं को निर्माण होता है। प्रोटीन की संरचना जटिल होती है। मुख्य रूप में दो प्रकार के प्रोटीन होते हैं।

क. गैर जरूरी प्रोटीन(Non essential protein)- हमारे शरीर को प्रोटीन के संश्लेषण के लिए 20 अमीनो एसिड की आवश्यकता होती है लेकिन हमारा शरीर केवल 13 अमीनो एसिड का ही निर्माण कर पाता है, इन्हें ही गैर जरूरी प्रोटीन (Non essential protein) कहा जाता है। जबकि ये जरूरी होते है लेकिन इन्हे अपने भोजन जिसे खाते हैं से प्राप्त नही कर पाते हैं।

ख. जरूरी प्रोटीन(Essential proteins)- मुख्य रूप से 9 अमीनों एसिड हैं, जिन्हे हम केवल भोजन से प्राप्त करते हैं जिन्हें शरीर में नही बनाया जाता हैं, इन्हें जरूरी प्रोटीन (Essential proteins) कहा जाता है।

संपूर्ण प्रोटीन(Complete Protein)- वह भोजन जिसमें अधिक मात्रा में जरूरी अमीनो एसिड जरूरी प्रोटीन (Essential proteins) प्राप्त होते है उसे सम्पूर्ण प्रोटीन कहा जाता है।

स्रोत -अंडे, दूध, मीट, चिकन, बीफ और दूध के पदार्थ।

अपूर्ण प्रोटीन(Incomlete Protein)- वह भोजन जो सभी प्रकार अमीनो एसिड (जरूरी प्रोटीन) को नही दे पाता है उसे अपूर्ण प्रोटीन कहा जाता है।

स्रोत -ग्रेन्स (Grains), फल, सब्जियाँ पौधों से प्राप्त होने वाले प्रोटीन (Plant protein) में भी सभी जरूरी अमीनो एसिड प्राप्त होते है। जैसे सम्पूर्ण पौधे प्रोटीन है- चावल, बीन्स, दूध, गेहूँ सीरियल, मक्का।

कार्य- प्रोटीन हमारे शरीर की सभी कोशिकाओं, अंगो एंव ग्रंथियो का निर्माण व मरम्मत का कार्य करता है। प्रोटीन वृद्धि एंव विकास के लिए आवश्यक है खासतौर पर बच्चो के लिए। प्रोटीन हर्मोन्स, एंजाइम एवं हीमोग्लोबिन बनाने के लिए आवश्यक है।

3. वसा(Fats)- वसा हमारे शरीर को सबसे अधिक उर्जा देने वाला भोजन है। वसा 1 ग्राम कार्बोहाइड्रेट के 1 ग्राम से दोगुनी ऊर्जा प्रदान करता है। वसा हमारे शरीर में संचित होता है। जो उर्जा बैंक के रूप में कार्य करते हैं और जब उर्जा की आवश्यकता होती है तब यह उर्जा देता है। वसा मुख्य रूप से हमारे शरीर में त्वचा के नीचे एवं किडनी तथा लीवर के आस-पास मौजूद रहता है।

स्रोत -वसा के मुख्य स्रोतों को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

क. वनस्पति वसा-बादाम, सरसों का तेल, पाम का तेल, नारियल तेल, मूंगफली तिल, आलिव तेल, सूरजमुखी, सोयाबीन, मक्का आदि।

ख. प्राणिव वसा- अंडा, घी, मक्कखन, मछली, दूध, मांस, क्रीम, पनीर, आइसक्रीम आदि।

वसा के कार्य- शरीर का सुचारू रूप में कार्य करने हेतु वसा बहुत महत्वपूर्ण है। फैटी एसिड शरीर को ऊर्जा के लिए कच्चा माल (भोजन) के रूप में प्रदान करते है। बल्डप्रेशर को नियंत्रित करता है। खून का थक्का बनने में मदद करता है।

4. विटामिन्स (Vitamins)- विटामिन्स हमारे शरीर के सामान्य कार्यो को करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा शरीर में विटामिन की कमी से होने वाले रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिन्हें विटामिन्स अपर्याप्तता बीमारी (Deficiency diseases) कहते हैं। विटामिन्स हमें भोजन से मिलते हैं। विटामिन्स को दो वर्गो में बाँटा गया है-

क. वसा मे घुलनशील विटामिन्स -A, D, E, K

ख. जल में घुलनशीन विटामिन्स -B1, B2, B3, B12, C

क. वसा मे घुलनशील विटामिन्स(Fat soluable vitamins)- विटामिन 'ए' (Vitamin A)- यह विटामिन दूध, मक्खन, अण्डा, मछली का तेल, पुदीना, धमियाँ, पान, गाजर, चौलाई, शक्करकन्द, टमाटर, कददू, अलसी, पालक, पपीता, आम, पत्ता गोभी एंव सभी हरी पत्तेदार सब्जियों में मिलता है। विटामिन ए की कमी से आँखो का रोग रतौंधी (Night blindness) हो जाती है।

विटामिन डी (Vitamin D)- यह विटामिन दूध, मक्खन, पनीर, मछली के तेल, अण्डे की जर्दी, घी, काले तिल, मलाई एंव सूर्य की किरणों से प्राप्त होता है। विटामिन डी की कमी से सूखा रोग (Rickets) हो जाता है।

विटामिन ई (Vitamin A)- विटामिन ई गेहूँ, गाजर, पालक, मूँगफली, दूध, मक्खन, अण्डा, मांस, हरी सब्जियों, मक्का में मिलता है। यह विटामिन खून में आर.बी.सी. बनाने में महत्वपूर्ण होता है।

विटामिन के (Vitamin K)- यह विटामिन मुख्य रूप से हरी सब्जियों, बन्दगोभी, फूलगोभी, सोयाबीन, गाजर, सलाद, टमाटर आदि में पाया जाता है। यह विटामिन रक्त का थक्का (blood clotting) बनाने में मदद करता है।

ख. जल में घुलनशील विटामिन्स (Water soluable vitamins)- विटामिन बी हमारे शरीर के लिए महत्वपूर्ण है। यह दस प्रकार के होते है जिनमें से मुख्य रूप में बी1, बी2, बी12 बहुत लाभदायक हैं । इन सभी विटामिन के मिश्रण को विटामिन बी काम्पलैक्स कहा जाता है।

विटामिन बी1 (थायमीन)- यह विटामिन दूध, मीट, सोयाबीन, छिलकेदार दालें, मटर, बिना पालिस के चावल, हरी सब्जी, खमीर पालक आदि में पाया जाता है। यह विटामिन कार्बोहाइड्रेट को उर्जा में परिवर्तित करने में सहायक होता है। इसकी कमी से बेरी-बेरी रोग हो जाता है।

विटामिन बी2 (रायबोफ्लेविन)- यह विटामिन दूध, पनीर, शमीर, मछली, अण्डे की सफेदी, मांस, हरी सब्जियाँ मील्ट आदि में पाया जाता है। विटामिन बी2 की कमी से त्वचा सम्बन्धी रोग पैदा होते हैं। यह आर.बी.सी. बनाने में महत्वपूर्ण होता है।

विटामिन बी3 (नॉयसिन)- यह विटामिन टमाटर, आलू, मीट, मछली, अनाज आदि में पाया जाता है। इसकी कमी से प्लेग्रा (Pellagra) रोग हो जाता है।

विटामिन बी 12- यह विटामिन दूध, किशमिश, सब्जी, अण्डे, खमीर, बाजरा, गेहूँ, मछली आदि में पाया जाता है। इस विटामिन की कमी से अनीमियाँ रोग हो जाता है।

विटामिन सी (Vitamin C)- यह विटामिन मुख्य रूप से संतरा, नीबू, आँवला, सेब, अंगूर, टमाटर, आलू, खट्टे फल, हरी सब्जियाँ, अंकुरित भोजन आदि में मिलता है। इसकी कमी स्कर्वी रोग (Scurvy) हो जाता है।

5. खनिज लवण (Minerals)- हमारे शरीर के लिए खनिज लवण अत्यन्त आवश्यक है। यह हमारे लिए छोटी मात्रा में जरूरी होते हैं अन्यथा इनकी कमी से रोग पैदा हो सकते हैं। हमारे शरीर के सही वृद्धि और सुचारू रूप से कार्य करने हेतु खनिज लवणों आवश्यक हैं, जो भी भोजन हम खाते हैं उसमें अनेक खनिज लवणों की मात्रा होती है। खनिज लवण अधिकतर हरी सब्जियों और ताजे फलों में पाये जाते हैं। भोजन को अधिक पकाने के बाद खनिज लवणों की मात्रा कम हो जाती है लवणों लवणों शरीर के लिए कुछ प्रमुख खनिज लवण जिनकी आव'यकता होती है निम्नलिखित प्रकार से हैं-

कैल्शियम (Calcium)- कैल्शियम हमारे दाँतो एंव हड्डियों के लिए आवश्यक होता है। यह मुख्य रूप से दूध, पनीर, अण्डा, हरी सब्जियाॅ, मूली, अनार, संतरा, गाजर, नींबू, मछली, ताजे फल, गुड आदि में पाया जाता है।

आयरन (Iron)- यह हमारे खून में हीमोग्लोबिन का निर्माण करता है। यह मुख्य रूप से मांस, अण्डा, पालक, गाजर, आंवला, केला, खजूर, हरी सब्जियाॅ, तिल, सरसों, नीम, गेहूँ, दालें, पुदीना, सोयाबीन, शलगम, अमरूद, आदि में पाया जाता है।

आयोडीन (Iodine)- आयोडीन थायराइड की कार्यप्रणानी को सही से संचालित करने के लिए आवश्यक होता है। इसकी कमी से गले में गैंगा रोग (Goitre) हो जाता है। यह मुख्य रूप से लहसुन, प्याज, पालक, सेब, केला, समुद्र का नमक, समुद्री मछली, समुद्र के पानी तथा समुद्र के आस पास उगने वाली वनस्पतियों में मिलता है।

फास्फोरस (Phosphorus)-फास्फोरस दांतो एंव हड्डियों के वृद्धि एंव विकास के लिए आवश्यक है। यह दूध, दही, पनीर, अण्डा, मछली, मांस, काली मिर्च आदि में पाया जाता है।

पोटेशियम (Potassium)- यह अधिकतर प्रोटीनयुक्त पदार्थो में अधिक होता है। यह वृद्धि एंव कोशिकाओं तथा खून को स्वस्थ रखने में सहायक होता है। यह दाल, हरी सब्जियाॅ, नींबू, आलू बुखारा, नाशपाती एंव सभी प्रकार की पीले रंग की सब्जियों में पाया जाता है।

सोडियम (Sodium)- यह तंत्रिका तंत्र की कार्यप्रणाली को सुचारू रूप से चलाने हेतु आवश्यक होता है। यह मुख्य रूप से दुध, दाल, अण्डा, समुद्री नमक, पत्थर नमक, मांस, नारियल, मूली, गाजर, शलगम, हरी सब्जियों आदि में पाया जाता है।

मैग्नीशियम (Magnesium)- यह त्वचा सम्बन्धी रोग एवं नाडी, स्नायु सम्बन्धी रोगो को दूर करता है यह गेहूॅ, सेव, बकरी के दूध आदि में पाया जाता है।

कॉपर (Copper)- यह खून में हीमोग्लोबिन का निर्माण करता है। यह मुख्य रूप से टमाटर, दाल, गाजर, बंदगोभी, खजूर, पालक, सूखे मेवो आदि में पाया जाता है।

फ्लोराइड (Floride)– यह हमारे दांतो को मजबूत रखता है तथा उनकी पालिस को बनाये रखता है। यह कॉफी, चाय, प्याज, पालक, आदि में पाया जाता है।

जिंक (Zinc)– यह हमारे भोजन के पाचन और सयापचय क्रिया (Metabolism) एंव इंसुलिन के लिए आवश्यक है। यह मुख्य रूप से मीट, मछली, और अण्डे में पाया जाता है।

क्लोराइड (Cloride)– यह मांसपेशियों, तंत्रिकाओं एंव भोजन के पाचन के लिए आवश्यक है। यह मुख्य रूप से दूध, पनीर, नमक, मांस, अंडे में पाया जाता है।

सिलीकोन (Silicon)– यह तंत्रिकाओं लचक एंव आँखो में सफेदपन या चमक के लिये आवश्यक है। यह मुख्य रूप से टमाटर तथा पालक में पाया जाता है।

गन्धक (Sulphur)– यह सभी प्रोटीन पदार्थो में पाया जाता है। इसके कारण हमारे शरीर के तन्तु, नाखून तथा बालों में वृद्धि संभव हो पाती है। यह मुख्य रूप से गाजर, बन्दगोभी, प्याज, दूध में पाया जाता है।

सोडियम क्लोराइड (Sodium chloride)– इसे सामान्य लवण भी कहते हैं। इससे भोजन स्वादिष्ट और पाचक बनता है। इसके कारण शरीर में अम्लता (Acidity) कम बनती है। यह मुख्य रूप से दूध, मांस, मछली, मीट एंव सब्जियों आदि में पाया जाता है।

पानी (Water)– हमारे पानी शरीर का 75 प्रतिशत हिस्सा पानी का है जो हमारी कोशिकाओं में, कोशिकाओं के बीच में तथा खून में मौजूद होता है। पानी हमारे शरीर के लिए आवश्यक है। पानी हमारे शरीर के तापमान को ठीक रखता है। यह हमारे द्वारा खाये भोजन को पचाने में सहायता करता है। पानी हमारे शरीर के अन्दर भोजन, आक्सीजन तथा अपशिष्ट पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का कार्य करता है। शरीर से पसीने एंव मूत्र के द्वारा अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालता है। सब्जियों, फलों, पेय पदार्थो आदि से यह हमारे शरीर में पहुँचता है और प्रतिदिन 2.5 लीटर पानी हमें पीना चाहिए। यदि हमारे पेशाब का रंग पीला रहता है तो इसका अर्थ है,शरीर में पानी की कमी जिसे पूरा करने के लिए पानी पर्याप्त मात्रा में पीना चाहिए। जिससे हमारे शरीर में रसायनिक क्रियाओं एंव रोजमर्रा के कार्य करने के लिए पानी की कमी शरीर मे ना हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. Singh, Dr. Ajmer, Essentials of Physical Education, kalyni Publishers, 2003
2. S. Dheer, M Basu , R. Kamal, Introduction to Health Education. A.P. Publishers, 1989.
3. बधेला हेतसिंह, स्वास्थ्य शिक्षा एवं शारीरिक शिक्षा शिक्षण राजस्थान प्रकाशन, 2004
4. कंवर, डॉ रमश चंद, शरीर रचना क्रियाविज्ञान एवं स्वास्थ्य शिक्षा, अमित ब्रदर्स पब्लिकेशन 2004
5. Atwalo Kamal , Principles of physical education, A.P.Publishers.
6. रंजन,डॉ. राजकुमार , शौकतअली गुलाम मुस्तफा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, राखी प्रकाशन, 2005
7. कंवर, डॉ. आर.सी, आरोग्य शास्त्र एवं स्वास्थ्य शिक्षा, अमित ब्रदर्स पब्लिकेशन, 2004

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

भारतीय शिक्षा का समाज में प्रभाव

•अपर्णा पाण्डेय

सारांश- समाज के सभी सदस्यों को शिक्षित करना सामाजिक दायित्व है। व्यक्ति का विकास और शिक्षा का विकास शून्य में नहीं होता। यदि हम व्यक्ति को सही रूप में विकसित करना चाहते हैं तो हमें यह तय करना होगा कि हमारे विकास का आधार क्या होना चाहिए? और इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में यह कहा जा सकता है कि समाज के उद्देश्य, मूल्य, मानक, मान्यताओं, रीति-रिवाज व परम्पराओं से अच्छा आधार शिक्षा का कोई नहीं हो सकता है। इस कारण हमारे लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा के समाजशास्त्रीय प्रारूप को समझते हुए हम शिक्षा व समाज के घनिष्ठ सम्बन्ध को समझें व उसे स्वीकार करें। यदि हम किसी भी समाज को पल्लवित करना चाहते हैं तो हमें उसके एक-एक सदस्य को शिक्षित करना होगा चूँकि यदि सदस्य रूपी नींव सुदृढ़ हो गई तो समाज रूपी भवन स्वयं ही मजबूत हो जायेगा।

मुख्य शब्द - विकास, शिक्षा, मूल्य, मानक, मान्यता, रीति-रिवाज, परम्परा

शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता की त्रिवेणी में अभिसिंचित मनुष्य ही सम्पूर्ण मानव कहा जा सकता है और ऐसे अभिसिक्त मानव समूह को सुसंस्कृत समृद्ध समाज कहा जा सकता है। इस संदर्भ में महाराज भतृहरि ने तो यहाॅ तक कहा कि ''साहित्य, संगीत, कला विहीनः, साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।'' शिक्षा मानव को अंधकार से उजाले की ओर ले जाती है। शिक्षा से ही नैतिक मूल्यों की स्थपना होती है। शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि ''Education is the development of good moral character'' शिक्षा को व्याख्यायित करते हुए कतिपय विद्वानों अपने-अपने मत कुछ इस प्रकार व्यक्त किये हैं, शिक्षा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'शिक्ष' धातु से हुई है, जिसका अर्थ सीखना और सिखाना है। इस प्रकार शिक्षा का शाब्दिक अर्थ है - सीखने और सिखाने की क्रिया। अतः शिक्षा आजीवन चलने वाली सीखने की एक प्रक्रिया है एवं शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपना सर्वांगीण विकास करता है। जन्म के पश्चात् व्यक्ति परिवार एवं समाज के सम्पर्क में विविध प्रकार की शिक्षा ग्रहण करके अपना शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास करता है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव में निहित उन शक्तियों एवं गुणों का दिग्दर्शन होता है, जो शिक्षा के बिना संभव नहीं होता। शिक्षा की प्रक्रिया एक गतिशील प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सभ्यता एवं संस्कृति

• शोधार्थी, इतिहास, अ.प्र.सिंह विश्वविद्यालय, रीवा

का ज्ञान प्राप्त करता है तथा उनका विकास भी करता है। मानव वस्तुतः सामाजिक अन्तःक्रिया के माध्यम से ही सीखता है, उसकी जन्मजात शक्तियों का विकास समाज तथा सामाजिक पर्यावरण में ही होता है।

शिक्षा के सामाजिक आधार- शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती है। मानव समाज का एक अभिन्न अंग है। समाज से परे उसके अस्तित्व एवं विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। शिक्षा भी एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज में ही चलती रहती है। शिक्षा का स्वरूप व उसकी प्रकृति समाज के स्वरूप व प्रकृति पर निर्भर करता है और इसी कारण यह कहा जाता है कि शिक्षा और समाज को एक-दूसरे से पृथक् करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। शिक्षा और समाज के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन शिक्षा के सामाजिक आधार के अन्तर्गत ही किया जाता है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि शिक्षा का स्वरूप, उद्देश्य व प्रक्रिया, समाज की आवश्यकयताओं, आकांक्षाओं व आदर्शो के अनुकूल बनाने का प्रयास जो विज्ञान करता है, उसे शैक्षिक समाजशास्त्र कहा जाता है। शैक्षिक समाजशास्त्र को समझना प्रत्येक शिक्षा के विद्यार्थी के लिए आवश्यक है।

सामान्य अर्थो में दो या दो से अधिक व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं परन्तु इन व्यक्तियों के मध्य अन्तः क्रिया का होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि इन्हें एक-दूसरे के अस्तित्व का आभास होना चाहिए। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैकाइवर तथा पेज ने अपनी पुस्तक 'समाज' में समाज का अर्थ बताते हुए कहा कि "समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।" इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि समाज मनुष्यों का वह समूह है जो आपस में एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। आर.जी. कालिंगबुड ने समाज को परिभाषित करते हुए कहा है, "समाज एक प्रकार का समुदाय है (अथवा समुदाय का भाग है) जिसके सदस्य अपने जीवन के तौर-तरीकों के प्रति सामाजिक रूप से चैतन्य होते हैं तथा वह समान उद्देश्यों व मूल्यों के आधार पर एक-दूसरे से बॅधे होते है।" अतः शैक्षिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र का वह पक्ष है जो आधारभूत शैक्षिक समस्याओं को हल करता है। शैक्षिक समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो शिक्षा और समाज के सम्बन्धों का अध्ययन करता है। यह शिक्षा के उद्देश्यों, संस्थाओं, प्रशासन व पाठ्यक्रम को उस समाज की आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक शक्तियों द्वारा निर्धारित करता है जिसमें उसे क्रियान्वित किया जाता है चूँकि व्यक्ति की शिक्षा पर व उसके व्यक्तित्व के विकास पर सामाजिक जीवन व सामाजिक सम्बन्धों का प्रभाव पड़ता है।

सामान्य रूप में हम यह कह सकते है कि शैक्षिक समाजशास्त्र का उद्देश्य बालक का समाजीकरण करना होना चाहिए, साथ ही इसके साथ बालक के अन्दर राष्ट्रीय व भावात्मक एकता उत्पन्न की जानी चाहिए जिससे उसे उचित नागरिकता का प्रशिक्षण मिल सके। साथ ही शिक्षा व्यक्ति की योग्यता का विकास इस कारण करे कि वह समाज को अपनी मौलिक देन उसके विकास के क्षेत्र में प्रदान कर सके। अन्त में हम यह कह सकते हैं कि व्यक्ति को आत्मनिर्भरता देना और उसे सामाजिक दृष्टि से कुशल बनाना ही शैक्षिक समाजशास्त्र का उद्देश्य हैं। अतः शैक्षिक समाज शास्त्र अग्रलिखित

बातों का अध्ययन करता है –

1. शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर बाह्य सामाजिक व्यवस्था के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. विस्तृत व्यवस्था के रूप में स्कूल का व्यवस्थित विश्लेषण करना।
3. कक्षा के अन्दर होने वाली सामाजिक अन्तः क्रियाओं को समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों व पद्धतियों के सन्दर्भ में देखना।
4. स्कूल व अन्य आन्तरिक संगठनों का समाज के अन्य साधनों से सम्बन्ध का अध्ययन करना।

शैक्षिक समाजशास्त्र के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए। समाज व उसकी आवश्यकताएँ परिवर्तनशील होती हैं। इस कारण शिक्षा का पाठ्यक्रम भी स्थिर नहीं किया जा सकता। पाठ्यक्रम को इतना लचीला होना चाहिए कि समाज की बदली हुई परिस्थिति के अनुसार उसका उपयोग किया जा सके। पाठ्यक्रम निर्धारण करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना है–

1. पाठ्यक्रम तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए।
2. पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों के अन्दर सामाजिकता की भावना का विकास किया जाना चाहिए व उन्हें समाज के अनुरूप व्यवहार करने हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए।
3. पाठ्यक्रम समाज की समस्याओं का निराकरण करने में सहयोगी हो व समाज का विकास करे।
4. पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों को समाज के मूल्यों, आदर्शो व संस्कृति से परिचित कराया जाये।

शैक्षिक समाजशास्त्र के लिए निम्नलिखित विशेषताओं को शिक्षण विधियों में समाहित करने की बात होनी चाहिए–

1. शिक्षण विधियॉ सैद्धान्तिक कम व व्यवहारिक अधिक होनी चाहिए।
2. विद्यालय में अर्जित ज्ञान को छात्र अपने वास्तविक जीवन से जोड़ सके।
3. शिक्षण विधियों के द्वारा छात्रों को इतना सक्षम बनाया जाये कि वह स्वयं को सामाजिक वातावरण के अनुकूल ढाल सकें।
4. छात्रों की सामाजिक शक्तियों को विकसित करने का प्रयास किया जाये।

इसी कारण शैक्षिक समाजशास्त्रियों की यह अवधारणा है कि शिक्षा में सामूहिक विचार–विनिमय, व्याख्यान माला योजना विधि तथा समाजीकृत अध्ययन विधि पर बल दिया जाना चाहिए। शिक्षा का प्रारूप उस समाज पर निर्भर करता है जिसमें उसे क्रियान्वित किया जाना है। इसी कारण प्रत्येक समाज में शिक्षा का स्वरूप एक समान नहीं होता है। इसी कारण प्रत्येक समाज में बालकों के व्यक्तित्व में भिन्नता होती है चूँकि प्रत्येक समाज की अपनी निजी सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनैतिक

शक्तियॉ होती हैं और यही शक्तियॉ सामाजिक निर्धारक का कार्य करती है। यही कारण है कि हम यह मानकर चलते है कि किसी भी समय में दी जाने वाली शिक्षा समय-समय पर सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप बदलती रहती है, साथ ही हम कभी-कभी यह भी मानकर चलते हैं कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक कारण है परन्तु शिक्षाशास्त्रियों की यह मान्यता है कि शिक्षा में तब तक परिवर्तन नहीं हो सकता, जब तक कि संस्कृति में परिवर्तन नहीं आता है।

सामाजिक अन्त:क्रिया- सामाजिक अन्तःक्रिया से अभिप्राय है व्यक्ति व समूह के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्ध जिसके फलस्वरूप उन व्यक्तियों के व्यवहार में परिवर्तन आता है जो उसमें भागीदार होते हैं। व्यक्ति व समूह के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप ही बालक संस्कृति के साथ आत्मीकरण स्थापित करता है और अपने समूह की संस्कृति व मूल्यों की जानकारी भी प्राप्त करता है। कोई भी सामाजिक अन्तःक्रिया जिसके द्वारा बालक या व्यक्ति के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन आता है, शिक्षा के अन्तर्गत सम्मिलित की जाती है। व्यक्ति समाज में रहता है और समाज के सदस्यों के साथ वह अपने विचारों व भावनाओं की व्यक्त करता है, साथ ही समाज के अन्य सदस्य जब अपने विचार व भावनायें अभिव्यक्त करते हैं तो व्यक्ति उन्हें ग्रहण करता है और यदि आवश्यकता होती है तो वह अपने विचारों व भावनाओं को नवीन दिशा प्रदान करता है, साथ ही वह दूसरों के विचारों व भावनाओं को नवीन दिशा दिखा सकता है और इस प्रक्रिया को ही सामाजिक अन्तःक्रिया समाज के सदस्यों को एक-दूसरे को समझने में सहायता प्रदान करती है। शिक्षा व समाज के सम्बन्धों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। यदि हम भारतीय समाज के विकास पर विहंगम दृष्टि डालें तो हमें यह विदित हो जाता है कि जहॉ भारतीय समाज समय की मॉग के साथ-साथ परिवर्तन की ओर उन्मुख हो रहा है, वहीं उसकी कुछ शाश्वत मूल्य ऐसे हैं जो उसके चिरस्थायी अस्तित्व को बनाये रखने में अपना योगदान देते हैं अर्थात् भारतीय समाज की कुछ विशेषतायें ऐसी हैं जो आदिकाल से चली आ रही हैं और इन्हें हम भारतीय समाज की परम्परागत विशेषताओं की श्रेणी में रखते हैं व कुछ विशेषतायें ऐसी हैं जो समय के साथ उभरने लगती हैं और इन्हें हम आधुनिक भारतीय समाज की विशेषताओं के अन्तर्गत श्रेणीबद्ध करते हैं। इस दृष्टि से हम भारतीय समाज की विशेषताओं को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं -

1. भारतीय समाज की परम्परागत विशेषतायें
2. भारतीय समाज की आधुनिक विशेषतायें

व्यवसायिक समूह- प्रारम्भ में जब जाति के आधार पर समाज का संगठन किया गया था तो प्रत्येक जाति का एक निश्चित व्यवसाय निर्धारित कर दिया गया था यानी विभाजन का आधार जन्म न होकर कर्म था। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर जिस व्यवसाय को करने की सामर्थ्य थी, उसे उसी व्यवसाय में संलग्न किया जाता था। उस समय के समाज में चार प्रमुख व्यवसाय थे-

1. पूजा-पाठ करना-ब्राह्मण,
2. युद्ध क्षेत्र में जाना व देश की रक्षा करना-क्षत्रिय,

3. व्यवसाय करना-वैश्य,
4. सेवा करना-शूद्र।

प्रत्येक व्यवसाय के साथ संगलग्न व्यक्तियों को निश्चित संज्ञा दी गई थी और यही लोग जिस समूह का गठन करते थे, उसे व्यवसायिक समूह कहा जाता था। यह व्यवस्था शैक्षिक दृष्टि से बहुत ही उपयोगी व्यवस्था समझी जाती थी चूँकि प्रत्येक समूह का उद्देश्य यह होता था कि वह अपने सदस्यों को व्यावसायिक दृष्टि से कुशल बनाये। इस रूप में व्यावसायिक समूह अपने सदस्यों को निःशुल्क व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करते थे। परन्तु धीरे-धीरे इस व्यवस्था ने भी भयंकर रूप ग्रहण कर लिया और व्यवसाय चयन करने की स्वतन्त्रता पर इतना कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि व्यक्ति को वही व्यवसाय करना होता था जिस व्यावसायिक जाति में उसने जम्न लिया था। व्यवसाय चयन करने में उसकी रूचि, इच्दा व योग्यताओं का कोई स्थान नहीं था परन्तु समाज के विकास के साथ-साथ आज व्यावसायिक जातियों का वह रूप टूट चुका है और अब किसी भी व्यावसायिक समूह का व्यक्ति अपनी इच्छानुसार व्यवसाय चयन करने में स्वतन्त्र है।

धार्मिक समूह - धर्म जीवन व भावनाओं को नियन्त्रण में रखने का साधन है। धर्म की दृष्टि से भी भारत में अनेकतायें विद्यमान हैं। यह धार्मिक समूह भी समाज के ढाँचे को एक निश्चित दिशा प्रदान करने में अपना सहयोग देते थे। प्रत्येक समूह का यह प्रयास होता था कि वह अपने सदस्यों के अन्दर भ्रातृत्व, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, सदाचार व ईमानदारी की भावना का विकास करे व उनमें 'हम भावना' का विकास करे जिससे आगे चलकर वह इन्हीं भावनाओं का प्रदर्शन देश के लिए कर सके। परन्तु धीरे-धीरे इस व्यवस्था में भी कुछ अवगुण उत्पन्न होने लगे और धर्म में अन्धविश्वासों ने इतना महत्वपूर्ण स्थान ले लिया कि व्यक्ति का चिन्तन व क्रियायें बुद्धि व विवेक से निर्धारित न होकर भावनाओं से निर्धारित होने लगे जिससे धार्मिक व्यवस्था का समाज की उन्नति व विकास में विपरीत प्रभाव पड़ने लगा। व्यक्ति इतना धर्म-केन्द्रित हो गया कि वह धर्म के आगे देश को तुच्छ समझने लगा औनर देश में धर्म की दुहाई देते हुए राष्ट्र विरोधी प्रवृत्तियों को पनपाने लगा। **सामाजिक वर्ग -** वर्ग एक मुक्त समाज है इसका अभिप्राय यह है कि वर्ग की सदस्यता के ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता था। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी वर्ग की सदस्यता ग्रहण कर सकता है। वर्ग को हम प्रायः तीन श्रेणियों में विभाजन करते हैं- उच्च वर्ग, सामान्य वर्ग तथा निम्न वर्ग। तथापि मध्य युग में शासन व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप समाज में भी अनेक परिवर्तन आये जिसके कारण समाज में प्रमुख रूप से दो वर्ग दिखाई देने लगे-शासन वर्ग एवं शासित वर्ग। शासन वर्ग में राजा व राजाश्रित व्यक्ति आत थे जिनका जीवन स्तर उच्च कोटि का होता था।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय सामाजिक व्यवस्था में काफी परिवर्तन आया है परन्तु कुछ परिवर्तन तो ऐसे हैं जो हमें आसानी से दिखाई पड़ रहे है और समाज के सदस्यों की उन्हें पूर्णरूपेण मान्यता नहीं मिल पा रही है और इसी कारण विद्वान लोग यह कहते है कि भारतीय समाज अभी विकास की ओर उन्मुख हो रहा है। अभी वह पूर्णरूपेण विकसित

नहीं हो पाया है जैसे एक ओर तो हम वैज्ञानिक चिन्तन की बात करते हैं व दूसरी ओर हम अभी भी अन्धविश्वासों व परम्पराओं के घेरे में बँधे हुए हैं। यह घेरे सिर्फ अनपढ़ लोगों तक ही सीमित नहीं हैं वरन् पढ़े-लिखे लोग भी स्वयं को इन बन्धनों से मुक्त नहीं कर पाये हैं।

समाज का बालक के शारीरिक विकास पर प्रभाव- किसी भी बालक का शारीरिक विकास दो बातों पर निर्भर करता है-

1. सन्तुलित आहार,
2. खेल एवं व्यायाम के उचित अवसर।

यदि हम वास्तविक परिस्थिति पर दृष्टिपात करें तो हम यह कह सकते हैं कि भारतवर्ष की अधिकांश जनसंख्या गरीबी में जीवनयापन कर रही है जिन्हें दो समय का भोजन भी उपलब्ध नहीं तो हम सन्तुलित आहार की कल्पना भी नहीं कर सकते। जो भोजन उन्हें उपलब्ध भी होता है, वह मिलावटयुक्त है। साथ ही खेल एवं व्यायाम के अवसर भी पर्याप्त रूप में उपलब्ध नहीं हो पाते। स्कूल इतने छोटे हैं कि वहॉ इनकी व्यवस्था नहीं हो पाती, साथ ही हमारे छात्रों का भी खेल के प्रति इतना निराशाजनक दृष्टिकोण है कि वह उनमें भाग लेने का कष्ट नहीं करते।

समाज का बालक के मानसिक विकास पर प्रभाव- भारतीय समाज का प्रयास बालक का मानसिक विकास करना है और इसके लिए संविधान में शैक्षिक अवसरों की समानता तथा निःशुल्क, अनिवार्य एवं सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान किया गया परन्तु वास्तव में देखा जाये तो यह दोनों ही लक्ष्य सिर्फ सैद्धान्ति रूप में ही क्रियान्वित हो पाये। जहॉ तक शैक्षिक अवसरों की समानता का प्रश्न है, भारतवर्ष में कुछ विद्यालय ऐसे हैं जिन पर एक बालक के ऊपर अत्यधिक रूपये खर्च होते हैं। ऐसे विद्यालयों में धनी परिवार के बच्चे ही प्रवेश ले पाते हैं व सामान्य बुद्धि होने पर ही वह अच्छी शिक्षा के अवसर प्राप्त करते हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारी विद्यालय हैं, जहॉ निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था है परन्तु शिक्षा का स्तर नीचा होता है। अच्छी बुद्धि होने पर भी वह निम्न स्तर की शिक्षा ग्रहण करते हैं। इस कारण हम यह कह सकते हैं कि शैक्षिक अवसरों की समानता व्यावहारिक रूप में विद्यमान नहीं है। यदि हम निःशुल्क, अनिवार्य एवं सार्वभौमिक शिक्षा की अवधारणा का मूल्यांकन करें तो भी हम यह पायेंगे कि शिक्षा नाममात्र को निःशुल्क है। इसी कारण अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या एक ज्वलन्त रूप ले रही है।

समाज का बालक के आध्यात्मिक व नैतिक विकास पर प्रभाव- भारतीय समाज एक आध्यात्मिक समाज है ओर जीवन के हर क्षेत्र में यहॉ आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों का बल रहा है परन्तु यदि हम वर्तमान भारतीय समाज की परिस्थितियों का अवलोकन करें तो पायेंगे कि आज नैतिक मूल्य विलीन होते जा रहे है। जिनके प्रमुख कारण है-

1. हमारे ऊपर पश्चिमी संस्कृति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ रहा है जिससे हम आध्यात्मिक कम तथा भौतिकवादी अधिक होते जा रहे है।
2. औद्योगीकरण ने भी मानव को मशीनों की भॉति विकसित किया है जिससे मनुष्य भावनाविहीन होता जा रहा है।

3. तीव्र गति से बढ़ता हुआ नगरीकरण भी मनुष्य को मूल्यविहीन बना रहा है।

इस प्रकार का समाज जहॉ हर आतंक, उप्रदव व भ्रष्टाचार छाया हुआ है बालक को नैतिक दृष्टि से शून्य की ओर उन्मुख कर रहा है। आज का बालक सही/गलत, अच्छे/बुरे तथा उचित/अनुचित के बीच अन्तर कर पाने में असमर्थ है जिससे उसके स्वार्थ की पूर्ति होती है, उसे ही वह सही व उपयुक्त समझता है, चाहे वह नैतिकता की श्रेणी में आता है अथवा नहीं।

समाज का बालक के संवेगात्मक व सौन्दर्यात्मक विकास पर प्रभाव- भारतीय समाज में भावात्मक व सौन्दर्यात्मक विकास करने की कल्पना शिक्षा ने कभी नहीं की। समय-समय पर हमने जिस शिक्षा पर बल दिया, उसका मूलभूत उद्देश्य बालक को आत्म-निर्भर बनाना बताया जिससे वह अपनी जीविकोपार्जन स्वयं कर सके। राष्ट्रीय एकता समिति तथा भावात्मक एकता समिति ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि शिक्षा के द्वारा बालक के अन्दर सकारात्मक संवेगों (यथा-प्रेम, त्याग, सहानुभूति) का विकास किया जाना चाहिए और नकारात्मक संवेगों (यथा-घृणा, ईर्ष्या, द्वेष) का दमन किया जाना चाहिए। परन्तु यदि हम वास्तव में देखे तो आज के मनुष्य में एक-दूसरे का विध्वसंस करने की प्रवृत्ति का दिन-प्रतिदिन विकास होता जा रहा है। जहॉ तक सौन्दर्यात्मक विकास का प्रश्न है, शिक्षा से हम यह अपेक्षा करते हैं कि वह बालक के अन्दर सुन्दरता के प्रति प्रशंसात्मक भाव उत्पन्न करे परन्तु शिक्षा अपना यह कार्य कर सकने में भी असमर्थ रही है।

बालक के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के प्रति शिक्षा का क्या उत्तरदायित्व है तथा समाज का उस पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, यह देखने के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि समाज की वर्तमान परिस्थितियॉ बालक के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर अपना नकारात्मक प्रभाव डाल रही हैं इसका प्रमुख कारण है कि आज के समाज में निम्न नकारात्मक विशेषतायें पायी जा रही हैं जो बालक को प्रभावित करती हैं-

1. पारिवारिक विघटन का प्रभाव,
2. सांस्कृतिक विघटन का प्रभाव,
3. गरीबी एवं बेराजगारी का प्रभाव,
4. अपराध एवं अनुशासनहीनता का प्रभाव,
5. राजनैतिक भ्रष्टाचार का प्रभाव,
6. सामाजिक बुराइयों का प्रभाव।

बालक की शिक्षा जिन प्रमुख साधनों के द्वारा होती है, उनमें परिवार, विद्यालय व समाज का उल्लेखनीय स्थान है। प्रारम्भ में बच्चा परिवार में रहता है व परिवार के सदस्य अनौपचारिक शिक्षा के द्वारा बालक को परिवार के अनुकूल व्यवहार करना सिखाते हैं। जब बालक स्कूल जाना प्रारम्भ कर देता है तो औपचारिक शिक्षा के माध्यम से उसे समाज के अनुकूल व्यवहार करना सिखाया जाता है। परिवार और विद्यालय दोनों ही बालक को समाजीकृत करने का प्रयास करते हैं अर्थात् दोनों ही बालक को समाज के साथ समायोजित करते हुए उसके व्यवहार का परिमार्जन करते हुए समाज के अनुकूल

व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं और इसी प्रक्रिया को समाजीकरण की संज्ञा दी जाती हैं।

जिस भी व्यक्ति का समाजीकरण हो जाता है, वह अपने व्यवहार को समाज के मूल्यों एवं मानकों के अनुकूल ढालता है तथा ऐसे कार्यो को करने का जोखिम कभी भी नहीं उठाता जो समाज विरोधी कार्यो की श्रेणी में आते हैं और इसी कारण यह कहा जाता है कि समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित एवं प्रतिबन्धित करती है। वास्तव में देखा जाये तो समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक समाज के तौर-तरीकों को सीखता है व उन्हें अपने व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनाता है। समाजीकरण की प्रक्रिया में तीन उपप्रक्रियायें सम्मिलित होती हैं। इसका अभिप्राय है बालक सामाजिक समूह द्वारा स्वीकृत व्यवहार करे और हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक सामाकिज समूह की "उचित व्यवहार" के सम्बन्ध में अपनी नियमावली होती है।

स्वीकृत सामाजिक प्रकार्यो को करना- समाज द्वारा स्वीकृत प्रकार्यो के सम्पादित करने से अभिप्राय है व्यक्ति उन सभी कार्यो का सम्पादन करे जो उस विशेष स्थिति के साथ जुड़े हुए हैं जिसे वह समाज के रहकर प्राप्त करता है।"

सामाजिक अभिवृत्ति का विकास- इसका अभिप्राय है व्यक्ति में एकीकरण व सहयोग का भाव होना जिससे कि वह समाज के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित कर सके। समाजीकरण की प्रक्रिया एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति का विकास सामाजिक संस्थाओं के अनुकूल होता है परन्तु अपने आपकों भी इसके लिए तैयार करना होता है। विभिन्न व्यक्तियों के मध्य होने वाली क्रियाओं से व्यक्ति उचित व्यवहार करने के तौर-तरीके सीखता है। प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि वह समाज का स्वीकृत सदस्य बने तथा स्वीकृत सदस्य बनने के लिए यह अनिवार्य है कि सका व्यवहार समाज के अनुकूल हो।

समाजीकरण की प्रक्रिया में व्यक्ति के अन्दर होने वाली अन्त:क्रिया का भी अपना महत्व है चूँकि व्यक्ति जब तक स्वयं समाज के अनुकूल व्यवहार करने के लिए प्रेरित नहीं होगा, अन्य कोई भी व्यक्ति उसे ऐसा करने को बाध्य नहीं कर सकता। इसके अन्तर्गत तीन प्रक्रियाओं का उल्लेख किया जाता है-

1. सात्मीकरण,
2. आत्मीकरण,
3. अनुकरण।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री इस्माइल दुर्खीम ने समाजीकरण के सिद्धान्त को सामूहिक प्रतिनिधित्व पर आधारित बताया है। कुछ विद्वान आत्म का सम्बोध उनके समाजीकरण सिद्धान्त का आधार मानते हैं। उनके अनुसार सामाजिक चेतना के विकास में व्यक्ति के आत्म का बहुत महत्व है। इस का प्रभाव हमारे दैनिक जीवन पर पड़ता है चूँकि इसी के द्वारा व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और व्यक्ति आत्म-चेतना सामाजिक चेतना व जन-चेतना को प्राप्त करता है-

1. आत्मचेतना का अभिप्राय है व्यक्ति स्वयं के बारे में क्या सोचता है।

2. सामाजिक चेतना का तात्पर्य है अन्य व्यक्तियों का क्या सोचना है ?
3. जनचेतना का अभिप्राय है 'स्व' व सामाजिक चेतना का सामूहिक दृष्टिकोण जिसमें सभी व्यक्ति एक सामुदायिक समूह का गठन करते हैं।

बालक बाल्यावस्था में ही अपनी संस्कृति व समाज के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है व वह स्वयं का अपने माँ-बाप या अन्य बड़ों के साथ आत्मसात् करने लगता है तथा उन्हीं के दृष्टिकोण, विचार एवं आस्थायें चेतन या अचेतन रूप से सीखता है। समाजीकरण हेतु कुछ विद्वान अहम् व परम अहम् को आवश्यक मानता है चूँकि अहम् 'मैं' या 'आत्म' के विकास में सहायक होता है व परम अहम् का जैसे-जैसे विकास होता है, बालक समाजीकरण की ओर उन्मुख होता जाता है। विद्वानों ने समाजीकरण की तीन प्रमुख पद्धतियाँ बताई हैं जो इस प्रकार हैं-

1. सामाजिक सीखना- समाज में रहकर बालक का समाजीकृत करने की जिम्मेदारी उन व्यक्तियों पर होती है जिनके सम्पर्क में बालक दिन-प्रतिदिन आता है। इसमें बालक के माँ-बाप, मित्र व अध्यापकों का स्थान प्रमुख है। प्रारम्भ से ही बालक परिवार के रीति-रिवाज व परम्परायें सीखता है और जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, वह समाज के रीति-रिवाज व परम्परायें सीखने लगता है। माँ-बाप और अध्यापक बालक को यह इस कारण सिखाते हैं जिससे बालक का व्यवहार समाज के अनुरूप हो सके।

2. सामाजिक उत्तरदायित्व- बालक के अन्दर उत्तरदायित्व की भावना का विकास आयु के साथ-साथ होता है। जो व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व समझकर उनके अनुकूल स्वयं को ढालता है, उसका सामाजिक दृष्टि से विकास अच्छा होता है। अतः समाजीकरण हेतु यह आवश्यक है कि बालक के अन्दर यह दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाये कि वह अपनी जिम्मेदारियों का वहन कर सके।

3. सामाजिक प्रशिक्षण- सामाजिक दृष्टि से बालक को प्रशिक्षित करने हेतु हम तीन विधियों का प्रयोग करते हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. पुरस्कार एवं दण्ड- बालक को समाज के अनुकूल कार्य करने पर हम उसे दो तरह से पुरस्कार देते हैं। प्रथम, भौतिक सामग्रियाँ प्रदान करके। इसमें हम बालक को रूपया, पैसा या कोई वस्तु देते हैं। द्वितीय, सामाजिक स्वीकृति प्रदान करके। इसमें हम बालक के समाजोपयोग कार्यो के लिए उसकी प्रशंसा करते हैं। यह दोनों ही तरीके समाजीकरण के सकारात्मक साधन हैं जिनमे बालक को यह बताया जाता है कि उसे पुरस्कार इस कारण मिल रहा हैं। चूँकि उसका व्यवहार समाज द्वारा मान्यता प्राप्त व्यवहार की श्रेणी के अन्तर्गत आता है और साथ ही उसे इस बात की भी प्रेरणा दी जाती है कि भविष्य में वह अपने व्यवहार को समाज द्वारा वांछनीय नियमों पर आधारित करे।

समाजीकरण की दूसरी विधि दण्ड विधि है। बालक को दण्ड तब दिया जाता है जबकि उसका व्यवहार समाज के नियमों के प्रतिकूल होता है। दण्ड विधि नकारात्मक प्रेरणा देने का साधन है। व्यक्ति को दण्ड दो प्रकार से दिया जाता है। प्रथम, वैधानिक दण्ड। इस प्रकार का दण्ड तब दिया जाता है जबकि व्यक्ति का व्यवहार वैधानिक दृष्टि से गलत होता है। द्वितीय प्रकार है सामाकि दण्ड यह दण्ड तब दिया जाता है जब व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं व परम्पराओं के विपरीत होता है।

2. उपदेशात्मक शिक्षण- यह वह विधि है जिसके द्वारा समाज की वांछनीय परम्पराओं, मूल्यों एवं रीति-रिवजों का उल्लेख व व्याख्या बालक के समक्ष बड़े लोगों द्वारा की जाती है। समाज के बड़े सदस्य छोटों से कहते है 'तुम क्या करो' अथवा 'तुम कैसे करो'। इसमें बालक को 'क्या ' व 'कैसे' के द्वारा समाज की नियमावली की जानकारी दी जाती है व उसके व्यवहार को समाज के अनुकूल बनाने का प्रयास किया जाता है।

3. अनुकरण विधि- इसमें बालक के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया जाता है और उस आदर्श का अनुपालन करने का उसे निर्देश दिया जाता है। जो भी आदर्श व्यक्ति है, वह बालक से कहता है, "देखो मैं या अन्य इसे कैसे कर रहे हैं।" अनुकरण करने को जब बालक से कहा जाता है तो उसे हम चैतन्य अनुकरण कहते हैं। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बालक समाज के किसी भी व्यक्ति को अनजाने में ही अपना आदर्श मानने लगता है व अनजाने में उसका अनुकरण करने लगता है। इस प्रकार के अनुकरण को अचैतन्य अनुकरण कहते हैं। अचैतन्य अनुकरण के लिए यह आवश्यक है कि बालक जिसे अपना आदर्श बनाये, वह समाज के आदर्शो के अनुकूल होना चाहिए।" समाजीकरण के सम्बन्ध में प्रमुख रूप से दो कारकों का महत्व है जो इस प्रकार हैं-

1. मनोवैज्ञानिक कारक- मनोवैज्ञानिकों की विचारधारा है कि हमारे व्यक्तित्व के तीन प्रमुख स्तर है - इदम्, अहम्, परम अहम्। अर्थात् व्यक्ति का परम अहम् समाजीकरण की प्रक्रिया में सहयोग देता है। इस कारण यह समाजीकरण का प्रमुख कारक है। परम अहम् की विचारधारा व्यक्ति के अन्दर सामाजिक चेतना उत्पन्न करती है और समाजीकरण हेतु सामाजिक चेतना बहुत की आवश्यकत है।

2. सामाजिक कारक- समाजशास्त्रियों का विचार है कि समाजीकरण के प्रमुख दो कारक है- जैविकीय-भौतिक वातावरण, सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण। समाजीकरण या सामाजिक स्थानान्तरण विभिन्न प्रकार के वातावरण में होता है (भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व जैविकीय)।

उपसंहार- शिक्षा एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव अपना सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास करता है। समाज अपनी आवश्यकतओं एवं उद्देश्य के अनुरूप ही शिक्षा के उद्देश्यों एवं कार्यों का निर्धारण करता है। शिक्षा व्यक्ति को समाज के अतीत का ज्ञान करवाती है। वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग देती है तथा भविष्य के प्रति आशावान बनाती है। अतः शिक्षा एक गतिशील सामाजिक प्रक्रिया है जो मानव की आन्तरिक शक्तियों के विकास करने में सहायक होती हैं। विभिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से सामंजस्य एवं अनुकूलन करने में सहयोग देती है। इतना ही नही शिक्षा व्यक्ति को जीवन और नागरिकता के कर्तव्यों तथा दायित्वों को पूर्ण करने के लिए मार्गदर्शन देती है एवं व्यक्ति को ऐसा विवेकवान बनाती है कि वह अपने समाज, देश, विश्व और सम्पूर्ण मानवता के कल्याण एवं हितार्थ चिन्तन, मनन्, संकल्प व कार्य कर सके। शिक्षा ही वह आधार है जो व्यक्ति को जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी बनाती है तथा शिक्षा पशुवत मानव को एक बौद्धिक एवं सांस्कृतिक मानव के रूप में परिणित कर देती है, उसमें सामाजिक गुणों

का विकास करके उसके दृष्टिकोण मानवतावादी एवं वृहत् बना देती है। इस प्रकार निम्नतम से उच्चतम बना देने की कला ही शिक्षा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. एम.ए. गोरे, एजुकेशन एण्ड मोहर्नाइजेशन इन इण्डिया
2. गुप्ता, हरिनन्दन, समाज का स्वरूप, भोपाल 1973, पृ. 18
3. गुप्ता, हरिनन्दन, समाज का स्वरूप, भोपाल 1973, पृ. 22
4. सक्सेना, डॉ. सरोज, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, आगरा 2007, पृ. 239
5. निकान्त, हर्ष कुमार, शिक्षा और समाज, हरिद्वार, 1998 पृ. 103
6. कुमार हरीश, शिक्षा की आवश्यकता, छिन्दवाड़ा, 1983 पृ. 28
7. शेखर, गिरीश, समाजशास्त्र और शिक्षा में परिवर्तन, पन्ना, पृ. 18
8. सक्सेना, सरोज शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय आधार, पृ. 41
9. गुप्ता, अरुण कुमार, समाजशास्त्र का सिद्धान्त, इलाहाबाद 2001 पृ. 113
10. दत्त, श्रीकृष्ण, बंगाल में सामाजिक परिवर्तन, मिदनापुर 1993, पृ. 108
11. गुप्ता, एस.पी., उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

जयपुर घराने में महिला कलाकारों का योगदान

• संगीता

सारांश- मूलतः जयपुर घराना ध्रुपद की डागर वानी का घराना माना जाता है। लेकिन जयपुर घराना ही एक ऐसा घराना है, जिसमें गायक व वादक दोनों ही थे। बहराम खाँ - ध्रुपद शैली, मुबारक अली- ख्याल शैली, रजब अली- वीणा वादन की वाद्य शैली तथा इमरत सेन- सितार वादन की सेनियाँशैली आदि। इस घराने में तीनों कलाओं गायन, वादन, व नृत्य का विकास, संरक्षण व अध्ययन होता आया है। अतः कहा जा सकता है, कि जयपुर घराने का संगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसे हम जयपुर घराने की विशेषता कह सकते हैं। इस घराने के विद्वान कलाकारों के अतिरिक्त ऐसे कई कलाकार हुए, जिन्होंने जयपुर घराने को एक विकसित रूप प्रदान किया। इस घराने के प्रमुख कलाकारों में हैदर खाँ, केसर बाई केरकर, मल्लिकाअर्जुन मंसूर तथा वामनराव सडोलिकर आदि। वर्तमान तथा आधुनिक युग के प्रमुख कलाकारों में मोघूबाई कुर्डीकर, निवृत्ति बुआ सरनाईक, किशोरी अमोनकर, श्रुति सडोलिकर, अश्वनी भिंडे, लक्ष्मीबाई जाधव, आरती अकंलिकर, माणिक भिडे तथा धोंदुताई कुलकर्णी आदि।

मुख्य शब्द - वंशज, गुणीजनखाना, डागर वानी, सुप्रसिद्ध, प्रदर्शनकर्ता, गानतपस्विनी, मार्गदर्शन, तालीम

संगीत में 'घराना' शब्द अत्यन्त प्रचलित है। यह उस समय प्रचार में आया जब मुगलकालीन दौर चल रहा था और संगीत अपनी स्वर्णिम अवस्था में था। ऐसा भी कहा जाता है, कि घरानों की परम्परा संगीत सम्राट तानसेन के समय से प्रारम्भ हुई। उस समय गुरू अपने योग्य शिष्य को सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद एवं रहस्यों से अवगत कराते थे। इस प्रकार संगीत परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी निरन्तर बढ़ती गई। इस माध्यम से संगीत की पैतृक सम्पत्ति सुरक्षित रही और पूर्व में भी सम्प्रदाय तथा बानियों आदि में संगीत शिक्षा घराने के ही समान गुरू शिष्य परम्परा में निर्वहन की जाती थी। अतः हम कह सकते है, कि घराना न होता तो शायद संगीत की पैतृक सम्पत्ति भी सुरक्षित न होती। घरानेदार शिक्षा तथा गायिकी आज भी प्रचलित है। भारतवर्ष में कई घराने विकसित है, ग्वालियर घराना, जयपुर घराना, इन्दौर घराना, आगरा घराना, किराना घराना, दिल्ली घराना, लखनऊ घराना, बनारस घराना आदि। इन्हीं घरानों में से एक है जयपुर घराना जिसका संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

जयपुर के करामत अली तथा लखनऊ के मुबारक अली से जयपुर घराने का

• शोध छात्रा, महात्मा गाँधी बालिका विद्यालय (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद

आरम्भ माना जाता है। मुबारक अली तथा करामत अली ये दोनों महाराजा रामसिंह के दरबार में दरबारी गायक थे। मुबारक अली को लखनऊ घराने के सर्वोच्च कलाकार के रूप में जाना जाता है। ऐसा भी कहा जाता है, कि आज से 150 वर्ष पूर्व इस घराने को बड़े मुहम्मद अली खाँ ने जन्म दिया। लेकिन कुछ गुणीजनों का मानना है, कि मनरंग इस घराने के 'प्रवर्तक' थे तथा इस घराने के 'वंशज' बड़े मुहम्मद अली खाँ थे। मुहम्मद खाँ ने संगीत की शिक्षा अपने ही परिवार के बुजुर्गों से प्राप्त की, जिससे इनके पास बन्दिशों का संग्रह काफी अच्छी मात्रा में एकत्रित था। मुबारक अली मुहम्मद खाँ के सबसे छोटे पुत्र थे। इन्होंने ग्वालियर में रहकर कई वर्षों तक ग्वालियर घराने को दिशा प्रदान की।फिर आगे चलकर जयपुर घराना एक नये घराने में तब्दील हो गया जिसे अल्लादिया खाँ साहब के नाम से पुकारा जाने लगा। जयपुर घराने को जयपुर अतरौली घराना, अतरौली घराना एवं अल्लादिया खाँ आदि नामों से भी जाना जाता है। अल्लादिया खाँ साहब मूलतः अतरौली जो कि अलीगढ़ के निकट स्थित है वहां के निवासी थे। लेकिन इनके पूर्वज फिर भी स्वंय को जयपुर घराने का ही मानते थे। अल्लादिया खाँ साहब ने संगीत की शिक्षा अपने पिता जहांगीर खाँ से प्राप्त की। लेकिन इनकी गायकी पर मुबारक अली खाँ की गायन शैली का विशेष प्रभाव रहा। मुबारक अली कब्बाल बच्चों की ख्याल शैली के गायक थे।

इस घराने में कलाकारों को 'गुणीजनखाना' के नाम से पुकारा जाता था। जो कि जयपुर घराने की एक महत्वपूर्ण परम्परा पर प्रकाश डालती है। सैकड़ों की संख्या में देश के कलाकार जयपुर दरबार के 'गुणीजनखाने' में आते थे और वहां बैठकर घण्टों रियाज किया करते थे। यहां 3 से 4 संगीत महोत्सव प्रत्येक वर्ष किए जाते थे। जयपुर दरबार में संगीत विषय पर पुस्तकों की रचना भी वहां के विद्वान कलाकारों द्वारा की जाती थी। उस्ताद अल्लादिया खां साहब ने 'गुणीजनखाने' की अपनी आत्मकथा में अभूतपूर्व प्रशंसा की है। इन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है, कि गुणीजनखाने में 92 कलाकार थे, जिसमें 4 कथक व नर्तक, 22 सारंगी वादक, 45 गायिकाएं एवं नर्तकियां, 16 पखावजी, 5 रसधारी मंडली। जिसमें 6 करताली तथा साजों को ठीक करने वाले भी थे तथा इस समय कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे गए। स्वर सागर- बुद्धि प्रकाश, राग रत्नाकर- रसराशि रामनारायण, संगीत सागर- गणपति भारती, रागमंजरी- पुण्डरीक विटठ्ल आदि। 'गुणीजनखाने' में कलाकारों की दो श्रेणियाँ नियुक्त थीं। 'उच्च श्रेणी' जिन्हें सिर्फ कला प्रदर्शन के लिए आमंत्रित किया जाता था। सामान्य श्रेणी के कलाकारों को दरबार में प्रतिदिन आना होता था। किसी भी कलाकार की मृत्यु होने पर उसके परिवार वालों को पेंशन दिया जाता था। जब 'गुणीजनखाना' बन्द हुआ तो वहां के कलाकारों को संगीत शालाओं में स्थान लेना पड़ा। जयपुर घराने के अतिरिक्त अन्य रियासतों में भी 'गुणीजनखाने' के समकक्ष संस्थाए थीं। इन संस्थाओं का जन्म स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही हुआ। इस समय कुशल एवं अच्छे कलाकारों को महाराज नकद पुरस्कार दिया करते थे। हरिप्रसाद तथा हनुमान प्रसाद भी इस घराने के एक उच्च कोटि के कलाकार हुए और मोहनदास हनुमान प्रसाद के पुत्र थे। इन्हें ध्रुपद तथा धमार का अच्छा ज्ञान था। खैरागढ विश्वविद्यालय व मध्यप्रदेश में इन्होंने संगीत की शिक्षा प्राप्त की।

मूलत: यह घराना ध्रुपद की डागर वानी का घराना माना जाता है। लेकिन जयपुर घराना ही एक ऐसा घराना है, जिसमें गायक व वादक दोनों ही थे। बहराम खाँ ध्रुपद शैली, मुबारक अली ख्याल शैली, रजब अली वीणा वादन की वाद्य शैली तथा इमरत सेन सितार वादन की सेनियाँशैली आदि। इसे हम जयपुर घराने की विशेषता कह सकते हैं। इस घराने के विद्वान कलाकारों के अतिरिक्त ऐसे कई कलाकार हुए, जिन्होंने इस घराने को एक विकसित रूप प्रदान किया। हम कह सकते है, कि जयपुर घराना एक ऐसे संगीतज्ञों का घराना है, जिस घराने में विभिन्न प्रकार की गायन व वादन शैलियों का विकास हुआ। इस घराने के प्रमुख कलाकारों में हैदर खाँ, केसर बाई केरकर, मल्लिकाअर्जुन मंसूर तथा वामनराव सडोलिकर आदि। वर्तमान तथा आधुनिक युग के प्रमुख कलाकारों में मोघूबाई कुर्डीकर, निवृत्ति बुआ सरनाईक, किशोरी अमोनकर, श्रुति सडोलिकर, अश्वनी भिंडे, लक्ष्मीबाई जाधव, आरती अकंलिकर, माणिक भिडे तथा धोंदुताई कुलकर्णी आदि। जयपुर घराने में महिला कलाकारों का योगदान इस प्रकार है।

केसर बाई केरकर- गोआ के 'केर' नामक गॉव में जन्मी एक विदुशी गायिका केसरबाई केरकर का जन्म सन् 1892 ई. में हुआ। जब यह आठ वर्ष की थीं तभी इन्होंने अब्दुल करीम खाँ से संगीत की शिक्षा प्रारम्भ की। करीम खाँ से एक साल संगीत सीखने के बाद यह कोल्हापुर से गोआ चली गयी और गोआ पहुँच कर इन्होंने पुन: संगीत गुरू की तलाश की, तब इन्हें गायक रामकृष्ण वुझे जी एक गुरू के रूप में मिले जहां इन्होंने लगभग 3 वर्ष तक उनसे संगीत की शिक्षा प्राप्त की। 1908 ई० में यह बम्बई चली गयी, जहां इन्होंने संगीत उस्ताद बरकतउल्ला खां साहब तथा भास्कर बुआ से तालीम ली। लेकिन किसी एक गुरू के पास आपकी संगीत शिक्षा नियमित रूप से ना हो सकी। आप बहुत हताश हो चुकी थीं लेकिन आप बहुत कुछ सीखना भी चाहती थीं। तब बम्बई के सेठ विठ्ठलदास द्वारा आपको 1921 में जयपुर घराने के सुप्रसिद्व गायक उस्ताद अल्लादिया खाँ साहब से सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। केसर बाई केरकर ने बडी लगनता व शालीनता के साथ खाँ साहब से सीखना प्रारम्भ किया। इनकी संगीत शिक्षा 1921 से 1943 तक चली और इन्होंने भारत के विभिन्न शहरों में अपने गायन करने प्रारम्भ कर दिये। आपको 1939 ई० में पद्भू'ाण, 1953 ई० में 'संगीत नाटक अकादमी' तथा 1975 ई० में 'शारंगदेव फैलोशिप' आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। 16 सितम्बर 1977 ई. को इनका निधन हो गया।

लक्ष्मीबाई जाधव- कोल्हापुर के एक मध्यवर्गीय परिवार में सन् 1901 ई० को जन्मी लक्ष्मीबाई जाधव एक प्रसिद्व शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय गायिका रहीं। माता यशोदाबाई तथा पिता परसराम की बेटी लक्ष्मीबाई जाधव के कंठ में बचपन से ही संगीत समाया हुआ था। इन्होंने अल्लादिया खाँ साहब के भाई हैदर खाँ से 7 वर्ष तक जयपुर घराने का गायन सीखा और बहुत कम वर्ष की आयु में ही लक्ष्मीबाई जाधव ने गायन प्रारम्भ कर दिया था। पहला कार्यक्रम 'ज्ञान समाज देवल क्लब' द्वारा आयोजित किया गया था। यहीं से इनके संगीत कार्यक्रमों की शुरूआत हुई और धीरे-धीरे यह संगीत समारोह बड़ौदा राज्य तक पहुँच गई। लक्ष्मीबाई जाधव 20 वर्ष तक 'बड़ौदा दरबार' में दरबारी गायिका रहीं। 1944 में अपनी सेवा समाप्त करके वह कोल्हापुर वापस आ गईं। यहां इन्होंने 'ऑल इण्डिया

रेडियो' पर गाना प्रारम्भ किया तथा अनेक शहरों में नियमित रूप से कार्यक्रम आयोजन किए। इन्हें 'संगीत चन्द्रिका' व 'संगीत ज्योति' उपाधि से सम्मानित किया गया। 5 मार्च 1965 ई. को इनका निधन हो गया।

मोघूबाई कुर्डीकर- 15 जुलाई 1904 ई. को गोआ के 'कुर्दी' नामक ग्राम में जन्मी मोघूबाई कुर्डीकर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की सुप्रसिद्ध गायिका रहीं। बचपन में इन्हें 'मोगा' के नाम से पुकारा जाता था। जब यह 9 वर्ष की थीं तभी इनकी माँ 'जयश्री' चन्द्रेश्वर भूतनाथ संगीत नाटक मंडली' से जुड़ी, जहां वह कई नाटकों में अभिनय व गीत गाया करती थीं। उसी दौरान इनकी भेंट बालकृष्ण पर्वतकर तथा लयभास्कर पर्वतकर से हुई। जिन्होंने मोघूबाई को शास्त्रीय संगीत सिखाना प्रारम्भ किया। जब मोघूबाई कुर्डीकर 10 वर्ष की थीं तभी इनकी माँ 'जयश्री' का निधन हो गया। 1919 ई. में यह एक 'सतरकर संगीत मंडली' में शामिल हुई। जहां इन्हें संगीत में चिंटूबुआ गुरव व नृत्य में रामलाल जी से सीखने का अवसर मिला। 1920 में यह मंडली को छोड़ सांगली चली गईं जहां इन्होंने इनायत राव पाठन से संगीत की शिक्षा ली। इनका विवाह माधवदास भाटिया जी से हुआ। 10 अप्रैल 1932 ई. को मोघूबाई ने बेटी किशोरी को जन्म दिया। लेकिन इनका खुशहाल जीवन अधिक समय तक न चल सका और 1939 ई. को इनके पति माधवदास भाटिया जी का निधन हो गया। जिस समय इनके पति माधवदास भाटिया जी का निधन हुआ उस समय मोघूबाई के तीन स्कूली बच्चे थे। लेकिन फिर भी मोघूबाई ने हार ना मानी और 1940 ई. से भारत के कोने कोने में अपनी संगीत कला का प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। 1943 ई. में इन्हें अल्लादिया खाँ साहब से सीखने का मोका मिला और प्रशिक्षण कार्य अल्लादिया खाँ साहब की मृत्यु तक रहा। यह ऑल इण्डिया रेडियो में भी एक कुशल प्रदर्शनकर्ता रहीं। यह 'ठुमरी तथा नाट्यसंगीत' से दूर रहती थीं ताकि शास्त्रीय संगीत की शुद्वता हमेशा इनके कंठ में बनी रहे। यह उस समय की गायिका थीं जिस समय महिला कलाकारों को ज्यादा सम्मान नहीं दिया जाता था। इन्हें गानतपस्विनी, 1968 में संगीत नाटक अकादमी तथा 1974 में पद्मभूषण आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। अन्त में 10 फरवरी 2001 ई. को 96 वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हो गई।

धोंदुताई कुलकर्णी- एक बाल कलाकार के रूप में पहचान बनाने वाली धोंदुताई कुलकर्णी का जन्म सन् 1927 ई. में महाराष्ट्र के 'कोल्हापुर' नामक स्थान पर हुआ। इनके पिता एक स्कूली शिक्षक थे। जब यह 8 वर्ष की थीं तभी से इन्होंने 'आकाशवाणी' में गाना प्रारम्भ कर दिया था। जयपुर घराने के सुप्रसिद्व दरबारी गायक उस्ताद अल्लादिया खाँ साहब के बेटे 'भुर्जी खाँ' से संगीत सीखना प्रारम्भ किया और इनकी संगीत शिक्षा अल्लादिया खाँ साहब के शिष्य और उनकी पोती लक्ष्मीबाई जाधव के मार्गदर्शन में जारी रही। इन्होंने केसर बाई केरकर जी से भी संगीत सीखा व कई साल इनके संरक्षण में रहीं। 1990 ई. में इन्हें 'संगीत नाटक अकादमी' से सम्मानित किया गया। 1 जून 2014 को 86 साल की उम्र में इनका निधन हो गया।

किशोरी अमोनकर- विदुशी किशोरी अमोनकर का जन्म 10 अप्रैल 1932 ई. को हुआ। जब यह आठ वर्ष की आयु की थीं तभी इनके पिता माधवदास भाटिया जी का निधन हो गया और इनकी माँ मोघूबाई कुर्डीकर ने इनकी देख-रेख की। मोघूबाई

कुर्डीकर जयपुर घराने की अग्रणी गायिका रहीं। इन्होंने जयपुर घराने के वरिष्ठ गायक उस्ताद अल्लादिया खाँ साहब से संगीत की तालीम हासिल की और वही शिक्षा बेटी किशोरी अमोनकर को दी। किशोरी जी ने अपनी माँ से सभी तकनीकी बारिकियों को सीखने के पश्चात एक नई शैली का सृजन कर अपनी नवीन गायन शैली से लोगों को प्रभावित किया। मूलतः किशोरी अमोनकर जी जयपुर अतरौली घराने की अग्रणी गायिका रहीं हैं। उन्होंने विभिन्न विद्वान गायक कलाकारों के गुणों को ग्रहण कर अपनी गायन शैली में समाविष्ट किया। 'अमोनकर' जी ने कई गायन शैलियों में महारत हासिल की। इनके द्वारा गायी गई गायन शैलियाँ यथा- ख्याल, ठुमरी व भजन हैं। इन्हें 'गान सरस्वती' के नाम से सम्बोधित किया गया। इसी के साथ अमोनकर जी को पद्भूषण, पद्मविभूषण, संगीत नाटक अकादमी तथा कालीदास सम्मान आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

माणिक भिडे- सन् 1935 ई. को कोल्हापुर में जन्मी माणिक भिडे बचपन से ही प्रतिभा सम्पन्न रहीं इसलिए आज इन्हें हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की एक सुप्रसिद्व गायिका के रूप में जाना जाता है। संगीत सीखने के लिए इन्हें इनके माता-पिता ने प्रेरित किया और इनका प्रारम्भिक प्रशिक्षण मधुकर सडोलिकर जी के साथ हुआ।1964 में यह किशोरी अमोनकर जी से मिली और कुछ दिनों के बाद ही उनकी शिष्या बन गई। 1964 से 1981 ई. तक इनका प्रशिक्षण कार्य चला। फिर इसके बाद माणिक भिडे जी ने स्वयं प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया। माणिक भिडे जी ने अनेक छात्रों को सिखाया और आज भी इनका प्रशिक्षण कार्य जारी है। वर्तमान समय में इन्हें आकाशवाणी की एक लोकप्रिय कलाकार के रूप में जाना जाता हैं।

श्रुति सडोलिकर- 9 नवम्बर सन् 1951 ई. को मुंबई में जन्मी श्रुति सडोलिकर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की 'ख्याल' गायिका के रूप में जानी जाती है। इनके पिता 'वमनराव सडोलिकर' जयपुर घराने के शास्त्रीय संगीत के एक विख्यात गायक थे। इसलिए आप बचपन से ही संगीत के माहौल में पली-बड़ी। आपने एस.एन.डी.टी. महिला महाविद्यालय से एम.ए. किया। इसके बाद आपने 'हवेली संगीत' पर शोध कार्य किया। इन्हें शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ अन्य गायन शैली यथा- टप्पा, ठुमरी व नाट्य संगीत आदि पर पूर्ण अधिकार रहा है। जिसके लिए इन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित भी किया जा चुका है और 2009 से 2020 तक यह भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय (लखनऊ) में कुलपति के पद पर कार्यरत रहीं और आज भी जयपुर घराने की परम्परा को प्रगति देने का कार्य कर रहीं हैं।

अश्विनी भिडे- आज भी अपनी गायकी से जयपुर घराने को विकसित रूप दे रहीं अश्विनी भिडे जी का जन्म 7 अक्टूबर सन् 1960 ई. को महाराष्ट्र के मुम्बई प्रान्त में हुआ। प्रारम्भिक शास्त्रीय संगीत की शिक्षा 'नारायणराव' जी के सानिध्य में रहकर शुरू की। इनकी माँ 'माणिक भिडे' किशोरी अमोनकर जी की शिष्या रहीं। अश्विनी भिडे ने गांधर्व महाविद्यालय से संगीत विशारद् किया और इसके बाद अपनी माँ से संगीत सीखती रहीं। इन्होंने 2009 ई. तक 'रत्नाकर पाई' जी से भी प्रशिक्षण प्राप्त किया। इनकी प्रमुख विशेषता है, कि यह स्वयं रचित बन्दिशें गाया करती हैं। इनकी पुस्तक 'रागरचनांजलि' भाग-2 में

98 बन्दिशों की रचनाएं शामिल है, जिसका प्रकाशन 2010 में किया गया। इन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया तथा आज भी भारतीय शास्त्रीय संगीत को प्रगति देने का कार्य कर रहीं हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. सिंह जोगिन्द्र (1994), भारतीय संगीत की उत्पत्ति एवं विकास, पृष्ठ संख्या198
2. बहोरे रविन्द्रनाथ (2005), भारतीय संगीत के प्रमुख स्तम्भ, पृष्ठ संख्या68-72
3. चक्रवर्ती कविता (2001), भारतीय संगीत को महान संगीतज्ञों की देन, पृष्ठ संख्या17-19
4. शर्मा जीतराम (2004), आधुनिक व्यावसायिक हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायनः परम्परा व लक्षण, पृष्ठ संख्या107-108
5. कुमार आशोक (2008), संगीत रत्नावली, पृष्ठ संख्या502
6. कुमार चौबे सुशील (2005), संगीत के घरानों की चर्चा, पृष्ठ संख्या199-216
7. परांजपे श्रीधर शरच्चन्द्र (1972), संगीत बोध, पृष्ठ संख्या192-193
8. शर्मा स्वतंत्र (1995), भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृष्ठ संख्या204-210
9. बर्मन एस. कल्पना, अप्रैल-2003, संगीत मासिक पत्रिका, लेख-उत्तर भारतीय संगीत में महिलाओं का योगदान (वृन्दावन शोध संस्थान, मथुरा)
10. गर्ग मुकेश, मई-2017, संगीत मासिक पत्रिका, लेख-एक स्त्री का किशोरी अमोनकर होना (वृन्दावन शोध संस्थान, मथुरा)
11. https://www.perrikar.
12. https://amp.mr.Freejournal.org
13. https://www.Wikipedia
14. https://www.ashwinibhide.in
15. https://mio

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

हिन्दी उपन्यासों में व्यक्त नारी-विमर्श

• दिव्या सिंह राजपुरोहित

सारांश- भारत की सभ्यता और संस्कृति में नारी को देवी माना जाता है। वाल्मीकि रामायण में लिखते हैं, यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवताअर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता का वास होता है।भारत को स्वतंत्र हुए आधी सदी से ज्यादा गुजर गयी, लेकिन स्त्री-दलन के प्रति हमारे उन्नतशील समाज का रवैया आदिकालीन ही है। विवश होकर नारी ने अपने अस्तित्व को मानवीय रूप में अनुभव करने और करवाने के लिए आंदोलन किया, जो स्त्री-विमर्श, नारी-विमर्श के रूप में साहित्य जगत में उत्पन्न हुआ। आधुनिक महिला साहित्यकारों ने विशेष रूप से उपन्यासों के माध्यम से महिला जीवन की समकालीन समस्याओं का विस्तृत ब्यौरा निष्ठापूर्वक दिया है। दाम्पत्य जीवन में दरार और विघटन, उनका मानसिक शोषण, उनको समानता का अधिकार न मिलना, उनको दोयम दर्जे का मानना, उन्हें विकास का पर्याप्त अवसर न देना, उनकी अस्मिता पर उठते प्रश्नचिह्न कामकाजी महिलाओं का आत्म संघर्ष, नैतिकता एवं आधुनिकता का द्वन्द्व आदि बिन्दुओं को महिला साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया है।

मुख्य शब्द - सभ्यता, संस्कृति, उन्नतशील समाज, स्त्री-विमर्श, अस्मिता

भारत की सभ्यता और संस्कृति में नारी को देवी माना जाता है। वाल्मीकि 'रामायण' में लिखते हैं , ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता'' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता का वास होता है। लेकिन भारतीय मनीषी मनु इस धारणा के विपरीत 'मनुस्मृति' में नारी की स्वतंत्रता के लिए लोह-अक्षरों में लिखते हैं कि-

''बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापिं योषिता।
न स्वातन्त्रेयण कर्तव्यं किंचित कार्यं गृहेष्वपि।।
बाल्ये पितुर्वशे निष्ठेत् प्राणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते भजेत् स्त्री स्वतंत्राम्।।''[1]

अर्थात् जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में एक स्त्री को किसी न किसी रूप में पुरुष पर निर्भर रहना ही पड़ता है। वह स्वयं के स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में समाज, देश व साहित्य में गौण ही रहती है।

भारत को स्वतंत्र हुए आधी सदी से ज्यादा गुजर गयी, लेकिन स्त्री-दलन के प्रति हमारे उन्नतशील समाज का रवैया आदिकालीन ही है। विवश होकर नारी ने अपने

• जोधपुर, राजस्थान

अस्तित्व को मानवीय रूप में अनुभव करने और करवाने के लिए आंदोलन किया, जो स्त्री-विमर्श, नारी-विमर्श के रूप में साहित्य जगत में उत्पन्न हुआ।

आदिकाल की थेरी-गाथाओं से प्रारंभ हुई यह स्त्री-लेखन परम्परा भक्तिकाल में मीरा से होते हुए आधुनिक काल की मीरा महादेवी वर्मा तक पहुँची। नारी-चेतना की अलख जगाने का यह साहित्य आदिकाल की विचारधारा का द्योतक है, जिसे आधुनिक काल में विभिन्न महिला साहित्यकारों ने हिन्दी गद्य की विविध विधाओं के माध्यम से समय के बदलते मूल्यों के साथ नारी के बदलते स्वरूप का चित्रण किया।

आधुनिक महिला साहित्यकारों ने विशेष रूप से उपन्यासों के माध्यम से महिला जीवन की समकालीन समस्याओं का विस्तृत ब्यौरा निष्ठापूर्वक दिया है। दाम्पत्य जीवन में दरार और विघटन, उनका मानसिक शोषण, उनको समानता का अधिकार न मिलना, उनको दोयम दर्जे का मानना, उन्हें विकास का पर्याप्त अवसर न देना, उनकी अस्मिता पर उठते प्रश्नचिह्न कामकाजी महिलाओं का आत्म संघर्ष, नैतिकता एवं आधुनिकता का द्वन्द्व आदि बिन्दुओं को महिला साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया है।[2]

रजनी पन्निकर के उपन्यास ''मोम के मोती'' की 'माया' आर्थिक विषमताओं के कारण नौकरी करती है। अदम्य जिजीविषा के कारण ही माया जीवन की विषम परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अंततः एक सफल वैवाहिक जीवन जीती है। ''काली लड़की'' उपन्यास में जन्म से ही बहुत काली लड़की माता-पिता की सहानुभूति एवं प्यार से वंचित रहती है और उसके स्वाभाविक गुणों को भी अनदेखा कर दिया जाता है, परन्तु शैक्षणिक रूप से योग्य बनकर अपनी कुंठाएँ दूर कर वह आत्मविश्वासी बन जाती है और अपने परिवेश के साथ नये सम्बन्ध स्थापित करती है।[3]

कृष्णा सोबती के लघु उपन्यास ''ए लड़की'' में एक ऐसी स्त्री की जिंदगी, उन लोगों की बातों से स्पष्ट हो जाती है, जिन्होंने जीवन को उसकी तमाम जीवंतता और कटुता के साथ खुले आम स्वीकार किया है। असल में, इस उपन्यास की खूबी यह है कि इसमें जीवन की विभिन्न अवस्थाओं पर अटल विश्वास व्यक्त किया गया है। उसके विभिन्न पहलुओं को आस्था के संतुलन के रूप में देखा-परखा गया है।[4]

कृष्णा सोबती कृत ''मित्रोमरजानी'' की दबंग नायिका 'मित्रो' पहली बार पुरुष सत्तात्मक समाज में पुरुषों द्वारा दी गई अपनी सामाजिक छवि को उतार फेंकते हुए मूल्य-मर्यादाओं की पुरानी नींवों, शहतीरों को हिलाती हुई पति से अतृप्त आंचल में मुँह दे पारम्परिक स्त्री की भाँति उसे अपनी नियति का खेल न स्वीकार कर अचानक विद्रोह का स्वर बुलन्द करती है, ''अम्मा अपने पहलवान बेटे को किसी वैद्य-हकीम के पास ले जा। यह लीला उसके वश की नहीं।'' 'मित्रो' ही हिन्दी की अकेली ऐसी नारी है, जो सदियों से नारी पर लादे गये संस्कारों-संबंधों, सुंदर-सुंदर उपमाओं को ललकारती, मुँह चिढ़ाती और उन्हें झुठलाती हुई अपनी मूलभूत जरूरत और जबान के साथ सामने आ खड़ी हुई।

शशि प्रभा शास्त्री के उपन्यास ''सीढ़ियाँ'' की 'मनीषा' एक पढ़ी-लिखी नारी है, डॉक्टर बनकर अपना जीवन सफल करती है किन्तु संस्कारों के द्वन्द्व को झेलती हुई मनीषा अन्ततः संस्कारों से ही दब जाती है। शशिप्रभा के उपन्यास ''उम्र एक गलियारे की'' की 'सुनंदा', नारी की जिन्दगी के विषय में कहती है कि, ''नारी की जिन्दगी समतल

जमीन नहीं है, उसके बीच मरुस्थल-पहाड़-खाइयां बहुत कुछ होता है।"[5]

मंजुल भगत के उपन्यास "अनारो" की नायिका 'अनारो' निम्नवर्गीय नारी है।जो महत्वाकांक्षिणी है। समय और परिस्थितियों के अनुसार वह अपने को झट बदल लेती है। आधुनिक और परम्परा के बीच जूझती अनारो, अपने वर्ग की समस्त विद्रूपताओं एवं महत्त्वाकांक्षाओं के साथ जीवन के तीखे यथार्थ को रेखांकित करती है।

मन्नू भण्डारी के उपन्यास "आपका बंटी" की नायिका 'शकुन' है। आधुनिक विचारधारा के बावजूद तलाक शकुन को वांछनीय नहीं है। वह एक ऐसी नारी है, जो जीवन भर पारम्परिक संस्कारों और बौद्धिकता के बीच झूलती रहती है। तलाक के बाद वह टूट जाती है।

चित्रा मुद्गल ने "एक जमीन अपनी" उपन्यास में पहली बार विज्ञापन जगत में व्याप्त उस दलदल को रेखांकित किया है, जो समाज को शनैः शनैः खोखला कर रहा है। चित्रा मुद्गल का "आवां" 'स्त्री-विमर्श' का पहला महाआख्यान है, जो सिर्फ नायिका प्रधान उपन्यास भर नहीं है, न ही यह साठ के बाद के मुम्बई का कोई शहर केन्द्रित आख्यान है, बल्कि यह है, स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्त्री चेतना में नित-निरंतन आ रहे बदलावों का महावृतान्त।[6]इस रूप में 'आवां' उपन्यास को स्त्री-विमर्श की महागाथा भी कह सकते हैं।[7]

नासिरा शर्मा के चर्चित उपन्यास "ठीकरे की मंगनी" की नायिका 'महरूख' के लिए मर्द न जिन्दगी की धुरी है, न खिड़की। उसकी अपनी अस्मिता है, जिस पर वह आंच नहीं आने देने के लिए जीवन भर संघर्ष करती है।[8]

राजी सेठ का "तत्सम" अंतरंग के संसार में चल रही उथल-पुथल को पकड़ने वाला उपन्यास है। 'वसुधा', स्त्री कृति के केन्द्र में है। विधवा होते हुए भी समाज, परिवार का दृष्टिकोण बदल जाता है। अपनी पति की मृत्यु के बाद वसुधा पुनर्विववाह के लिए तैयार नहीं होती है और कहती है, "यह जिंदगी है या काठ का कोई शहतीर, जब जहाँ से चाहा काट दिया गया। एक टुकड़ा चिता के साथ धधकने के लिये छोड़ दिया गया, दूसरा नई इमारत की पहली चौखट में जड़ देने के लिए रख दिया गया।"[9]

मृदुला गर्ग और अलगा सारावगी के उपन्यास "अनित्य" और "कलिकथा : व्हाया बाइपास" दोनों में ही गाँधीजी और गांधीवाद के राजनीतिक और बहुत थोड़ी-सी सामाजिक पृष्ठभूमि की चर्चा है।

मैत्रेयी पुष्पा रचित 'चाक', 'इदन्नम' एवं 'अल्मा कबूतरी', प्रभा सक्सेना का 'सपनों में बंटा इन्द्रधनुष', उषा प्रियंवदा रचित 'रुकेगी नहीं राधिका', 'पचपन खंभे लाल दीवारें', कृष्णा सोबती रचित 'डार से बिछुड़ी', दीप्ति खण्डेलवाल रचित 'प्रतिध्वनियां', चन्द्रकान्ता रचित 'एलान गली जिन्दा है' आदि उपन्यासों में महिला लेखिकाओं ने समकालीन समस्याओं को अनावृत करते हुए अपने मत को स्पष्ट किया है और अपने साहस और क्रांतिकारी चेतना का परिचय देते हुए स्त्री-विमर्श की परंपरा को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. मनु स्मृति – 5/147–148
2. मृत्युंजयउपाध्याय, ''समकालीन महिला समस्याएँ'', आजकल, 2001 ई.
3. प्रमिला के.पी., ''नारी जीवन की स्मृति, स्थिति एवं गति'', आजकल, मई 2001 ई.
4. कृष्ण सोबती, ''मित्रो मरजानी'' (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010 ई.
5. शशिप्रभा, ''उम्र एक गलियारे की'', वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, 1993 ई.
6. बलराम, स्त्री और दलित विमर्श की जमीन पर आवां की आंच, आजकल, जुलाई 2002 ई.
7. चित्रा मुद्‌गल, आवां (उपन्यास), सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 ई.
8. नासिरा शर्मा, ''ठीकरे की मंगनी''(उपन्यास), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 ई.
9. राजी सेठ, तत्सम (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010 ई.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

हिन्दी बाल साहित्य में हरिकृष्ण देवसरे का योगदान

• पूनम वर्मा
••श्रद्धा चन्द्राकर
•••बलजीत कौर

सारांश- बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण बाल साहित्य के माध्यम से स्थापित किया जा सकता है, साथ ही उन्हें भाग्यवाद से दूर भी रखा जा सकता है। बाल साहित्य का उद्देश्य बाल पाठकों के मनोरंजन के साथ उन्हें आज की सच्चाईयों से अवगत कराना है। बाल साहित्य के लेखक को बाल मनोविज्ञान की पूरी जानकारी होनी चाहिए, क्योंकि बाल मानस के पटल पर गहराई से उतरे बिना बच्चों के लिये कहानियों, कविताओं, उपन्यासों आदि का लेखन कर पाना मुश्किल है। कहानियाँ सुनना बच्चों की अच्छी आदतों में से एक है, जिसके माध्यम से हम बच्चों को शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। बाल साहित्य बच्चों को अनौपचारिक रूप से केवल मनोरंजन ही नहीं करती बल्कि वह बच्चों में सृजनशीलता, सजगता व आत्मविश्वास भी बढ़ाती हैं।

मुख्य शब्द - बाल साहित्य, मनोरंजन, बाल मनोविज्ञान, सृजनशीलता, सजगता, आत्मविश्वास

भारतेन्दु युग से हिन्दी बाल साहित्य का प्रारंभ माना जाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माता भारतेन्दु को ही माना जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी में बाल साहित्य का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना स्वयं खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का बाल पत्रकारिता की सुदीर्घ परंपरा को एक आलेख में समेटना निश्चय ही अंजली में समुद्र भर लेने के समान है। विगत् पचास वर्ष पहले से ही बाल साहित्य की अनेक पत्रिकायें प्रकाशित हो रही है। प्रसिद्ध बाल साहित्यकार प्रकाश मनु लिखते हैं, कि "पहले पत्रिकाओं में कभी कभार बाल साहित्य की चर्चा भी दुर्लभ थी, पर अब निरंतर बदलते बाल साहित्य के मिजाज को समझने के लिये एक के बाद एक निरंतर विशेषांको का सिलसिला शुरू हो गया।"[1]

भारतेन्दु हरिश्चंद्र की विशेष प्रेरणा एवं अभिरूचि से इलाहाबाद से 'बाल दर्पण' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। उसके बाद भारतेन्दु ने 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। इन पत्रिकाओं में नैतिक मूल्यों को केन्द्र में रखते हुए

• शोधार्थी, हिदी विभाग, शासकीय वि.या.ता.स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)
•• प्राचार्य, शासकीय शहीद कौशल यादव महाविद्यालय, गुण्डरदेही, जिला बालोद,(छ.ग.)
•••प्राध्यापक, हिदी विभाग, शासकीय वि.या.ता.स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

उपदेशात्मक बाल साहित्य का प्रकाशन प्रारंभ हुआ।

हिन्दी में बाल साहित्य का प्रारंभिक रूप महाकवि सूरदास के बाल लीला रचनाओं में भी देखने को मिलता है। सूरदास ने अपने बाल लीला गीतों में बाल स्वभाव के जिस मनोवैज्ञानिक रूप को प्रस्तुत किया है, वैसी रचना आज तक किसी रचनाकार के रचना में नजर नहीं आती। विदेशी बाल साहित्य में बीसवी शताब्दी के शुरूआत से ही क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे थे। इस परिवर्तन ने भारतीय लेखकों का भी ध्यान अपनी ओर खींचा।

परंपरागत और प्रयोगात्मक दोनों प्रकार का बाल साहित्य बाल मन की जिज्ञासा को शांत करने के लिये उपयोगी व आवश्यक है। संस्कृत के बाल साहित्य का हिन्दी बाल साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान है। विश्व को अनेक भाषाओं के बाल साहित्य को प्रभावित करने वाली पुस्तक पंचतंत्र है। भारतेन्दु जी ने समन्यवादी दृष्टिकोण अपनाकर एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया जिस पर किसी तरह का बंधन न हो। "प्राचीन से नवीन के इस संक्रमण काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र भारतवासियों की नवोदित आकांक्षाओं और राष्ट्रीयता के प्रतीक थे, वे भारतीय नवोत्थान के एक अग्रदूत थे। मध्ययुगीन पौराणिक वातावरण से जीवन और साहित्य को बाहर निकालकर उन्हें आधुनिक युग प्रदान करने की उन्होंने सतत् चेष्टा की। भाषा, भाव, साहित्य रूप आदि की दृष्टि से उन्होंने गद्य और काव्य दोनों क्षेत्र में हिन्दी भाषा का नेतृत्व किया। साहित्य के नए-नए मार्ग खुले, नाटक, उपन्यास, निबंध, समालोचना, समीक्षा, जीवनी एवं साहित्यिक इतिहास आदि का तथा खड़ी बोली कविता का वपन काल यही है। गद्य भी पुष्ट होकर अपना स्वस्थ स्वरूप स्थिर करने लगा। अनेक नवीन साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त ज्ञान-विज्ञान तथा उपयोगी साहित्य की रचना इसी काल में हुई। हिन्दी साहित्य जो अब तक वास्तविक जीवन से अलग पुराने ठर्रे पर पड़ा हुआ था। बहुत जल्दी विज्ञान, इतिहास, भूगोल, उपन्यास, नाटक, यात्रा, गणित, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि नये-नये गंभीर विषयों की ओर अधिक तीव्र गति से प्रवृत्त हुआ।"[2]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी हिन्दी बाल साहित्य को लेकर लिखते है, "हिन्दी बाल साहित्य का इतिहास खड़ी बोली गद्य के इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है। इस समय प्रमुख समस्या भाषा की थी। हिन्दी और उर्दू में संघर्ष निरंतर चल रहा था। अंग्रेज जानते थे, कि भारत में राज करने के लिए फूट डालो और राज करो की नीति अपनानी है। इस भारत में शासन करने के लिये जन सामान्य की भाषा सीखना एवं उसका प्रचार-प्रसार आव'यक है।"[3]

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी बाल साहित्य में चहुँ दिशाओं में सृजन हुआ है। आज हिन्दी के पास समृद्ध बाल साहित्य, बाल कविता विशेष रूप से उपलब्ध है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि बाल साहित्य की अन्य विधाओं का क्षेत्र में उत्कृष्ट सामग्री उपलब्ध नहीं है। बाल साहित्य का मूल आशय बालक के लिये सृजनात्मक साहित्य से है। बाल साहित्य के क्षेत्र में विष्णु प्रभाकर, राष्ट्रबंधु, जयप्रकाश भारती, हरिकृष्ण देवसरे, क्षमा यादव, यादवेद्र नंद शर्मा, चक्रधर नलिन, उषा यादव, देवेन्द्र कुमार आदि ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उल्लेखनीय प्रगति लाये है।

समाज में अभी ज्यादा समय नहीं हुआ जब बाल साहित्य ही नहीं बल्कि बच्चों का स्वयं का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार्य नहीं था। रूढ़ियों से जकड़े समाज में बच्चों को मारपीट, डाँट-डपटकर आज्ञाकारी बालक बनाना परिवार का पहला कर्त्तव्य माना जाता था। उस सामंती विचारधारा में लिप्त तत्कालीन समाज में बच्चों के लिये साहित्य के नाम पर केवल उपदेशात्मक लोक कथाएँ और धार्मिक नीति कथाएँ ही थी, लेकिन जैसे ही समाज में आधुनिकता बोध का प्रसार हुआ, वैसे ही प्रबुद्धजनों ने बच्चों के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारा और साथ ही आधुनिक मूल्यबोध से संपन्न साहित्य की आव'यकता भी महसूस करने लगे। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे का 'पराग' के नेतृत्व में प्रारंभ हुए इस वैचारिक आहवान को आंदोलन के रूप में प्रमुख योगदान रहा। देवसरे जी ने अपनी जिंदगी के कटु अनुभवों से यह आसानी से समझ गये कि सामंती शक्तियाँ आज भी समाज को अपना गुलाम बनाए रखना चाहती है। देवसरे जी ने 'पराग' के संपादन के दौरान बाल साहित्य में परीकथाओं और राजा-रानी की प्रासंगिकता पर तर्कपूर्ण ढंग से सवाल उठाते हुए बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास पर बल दिया। इन्हें बाल साहित्य के प्रथम गंभीर अहयेता के रूप में भी जाना जाता है। इन्होंने केवल स्तरीय बाल साहित्य रचकर बाल साहित्य के भण्डारे को नहीं भरा, बल्कि प्रतिनिधि बाल साहित्य को एक सूत्र में पिरोकर महती कार्य भी किया। देवसरे जी ने बाल कहानियों को लेकर कितने प्रयोग किये, विज्ञान कथा साहित्य को समृद्ध करने कैसे सक्रिय भूमिका निभाई बच्चों में विज्ञान लेखन को बढ़ावा देने कैसे सकारात्मक माहौल बनाये, बाल साहित्य पत्रकारिता को 'पराग' के माध्यम से कैसे ऊँचाइयों तक पहुँचाये साथ ही बाल साहित्य में जादू-टाने व राजतंत्र वाली रचनाओं के विरूद्ध कैसे प्रभाव'ाली आंदोलन खड़ा किये, यह सब इतिहास के पन्नों में दर्ज है, लेकिन वर्तमान पीढ़ी उस सबसे कम ही वाकिफ है। हरिकृष्ण देवसरे ने हिन्दी बाल साहित्य के भंडार को भरने के साथ हिन्दी व भारतीय भाषाओं की स्तरीय रचनाओं को सामने लाकर बाल साहित्यकारों को समाने लाकर उन्हें आत्म गौरव का बोध कराया है। इन्होंने अपने लेखन की शुरूआत कविताओं से की। वे एक मुख्य गद्यकार के रूप में जाने जाते हैं, क्योंकि इन्होंने उपन्यास, कहानी, एकांकी, जीवन समीक्षा आदि विधाओं में बाल साहित्य की विपुल मात्रा में रचना की है। हिन्दी बाल साहित्य में इनकी कोई मिसाल खोजने से भी नहीं मिलती है। देवसरे जी का बाल साहित्य के लिये किया गया कार्य अतुलनीय है, जिसके लिये इन्हें दर्जनों संस्थाओं द्वारा सम्मानित व पुरस्कृत किया गया है। इन्होंने बच्चों को मायावी फंतासी के दुष्चक्र से निकालने के लिये 'पराग' के माध्यम से रचनाकारों को प्रेरित करते हुए खुद भी वैज्ञानिक चेतना से संपन्न साहित्य की रचना करते हुए साहित्यकारों के सामने अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। देवसरे जी यह स्वीकार करते हैं कि बाल साहित्य बच्चों के भविष्य को निर्माण करने में सहायक होती है, चाचा नेहरू ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है।

बाल साहित्य की सृजनशीलता विज्ञान तकनीक के युग में वैज्ञानिक, व्यवहारिक, मनोरंजन, आधुनिक व भावुक दृष्टिकोण का सम्मिश्रण होना चाहिए, क्योंकि एक अच्छे नागरिक, एक अच्छे मानव बनने के लिए लिये जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वह गुण बाल मनोभूमि में ही अंकुरित किये जाने चाहिए। बालक में

किशोरावस्था का आरंभ तेरह–चौदह से सत्रह–अट्ठारह वर्ष तक माना जाता है। इस अवस्था में किशोरों में विशेष प्रकार का परिवर्तन देखने को मिलता है। किशोर साहित्य इन्हीं भावनाओं को लेकर निर्मित किया जाता है, जिसमें किशोर भाषागत जटिलता व सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को वह आसानी से समझ सकें। हरिकृष्ण देवसरे द्वारा संपादित 'पराग' में अनेक कहानियाँ किशोर वर्ग की है, जबकि शिशु व बाल वर्ग की उनकी कविताएँ है। हिन्दी में बाल साहित्य की ही तरह किशोर साहित्य का भी अभाव महसूस किया जा सकता है।

इक्कीसवीं सदी का बालक हर बात की प्रमाणिकता को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने लगा है। वह उपदेशात्मक लेखन के बजाए संवादात्मकता पर विश्वास करते हैं क्योंकि वे साहित्यिक परम्परा से हटकर आधुनिक सोच और ज्ञान–विज्ञान के उपकरणों से बाल साहित्य का मसौदा चुनते है। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे जी का कहना है कि, "बाल साहित्य के ये नये प्रतिमान बच्चों के स्वभाविक विकास उनकी रूचि और मनोवृत्ति को राजनीति की इस विचारधारा से प्रभावित करना चाहते है, जो देश के शासन का आधार है। क्या बाल साहित्य का यह नया रूप बच्चों को जीवन के सही मूल्य समझने योग्य बन सकेगा।"[4]

देवसरे जी ने ऐसा बाल साहित्य चाहते थे, जिससे बच्चों के मनोरंजन के साथ–साथ देशभक्ति, सत्यता, नैतिकता, सामाजिकता, चरित्र निर्माण व भारतीय चिंतन के साथ बाल्यावस्था से जाति, धर्म व वर्ग भेद को भुलाकर समाज को भावात्मक एकता एवं राष्ट्रीयता के सूत्र में पिरोकर साहित्यकार बाल साहित्य का ऐसा विषयवस्तु का चयन करें, जिससे बालक संकीर्णता से ऊपर उठकर सच्ची मानवता और विश्व कल्याण की भावना से अपना जन जीवन व्यतीत करने का संकल्प ले सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 418
2. हरिश्चंद, भारतेन्दु, भारत दुर्दशा, पृष्ठ 7
3. शुक्ल, रामचंद, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 43
4. देवसरे, हरिकृष्ण, हिन्दी बाल साहित्य एक अध्ययन, नई दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ 11

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

स्वामी कृपाल्वानंदजी के ग्रंथ साहित्य ''आसन और मुद्रा'' में प्राणोपासान का स्वरूप

• कुसूमबा सोढा
•• हिना वी. मोरी

सारांश- आधुनिक युग में, प्राण पर संशोधन, भागवान लकुलीश के द्वारा शुरू हुई दिव्य परंपरा के दो महान संत योगी ब्रह्लीन पू.श्री स्वामी कृपाल्वानंदजी और साम्प्रत कुलगुरू पू.श्री राजर्षि मुनिजी ने योगापासना को ही प्रणोपासना कही है। प्राण संस्कृत शब्द है। उसमें प्र-उपसर्ग और अन् धातु है। अर्थ: प्राण चेतक शक्ति है। जीवन शक्ति है। समग्र सृष्टि में अचेतन जड़ पदार्थ के अलावा जीव को धारण करने वाला शब्द 'प्राणी' है। इस दृष्टि से 'प्राण' का अर्थ जीवन -कला भी हम कह सकते है। 'आत्मा' मे से प्राण उत्पन्न हुआ है। 'ब्रह्म' में से प्राण का सर्जन हुआ है। 'अपमात्मा ब्रह्म' अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है।

मुख्य शब्द - योगापासना , प्राण चेतक शक्ति, जीवन -कला

योगाचार्य स्वामी कृपाल्वानन्दजी के विविध ग्रंथ साहित्यों में, धर्म और विज्ञान की एकता स्थापित करने वाले सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि प्राणोपासना को ही 'ब्रह्मविद्या' कहा जाता था। प्राणेपासना एवं योगोपासना दोनो अलग अंग है। लेकिन मुलत: एक ही उपासना है। इस साधना के साथ कर्मयोग प्रथम सोपान एवं ज्ञानयोग द्वितीय सोपान है। योग दो नही, एक ही है। उसकी अवस्थाए दो है। इसलिए योगाचार्य ने आसन-मृद्रा में प्राणोपासना की बात की है। प्राण के आधार पर ही स्वामीजी ने आसन और मुद्राओं विभिन्न स्वरूप में, विभाजित किया है। प्राण प्रावल्य के आधार पर ही आसन और मुद्रा का आर्विभाव होता है। विविध शास्त्रों में भी प्राण का उल्लेख किया है।

तैतरीय उपनिषद में 'प्राण' को ही 'ब्रह्म' का पर्याय कहा है। इसके भृगृवल्ली अनुवाद-3 में कहा है की, 'प्राणो जलति व्यजनात्।' अर्थात 'प्राण' ही 'ब्रह्म' है।- ऐसा जानना 'प्रश्नोपनिषद ' में कहा है' आत्मने तष: प्राणा जयते-। (3:3) अर्थात् आत्मा से ही प्राण की उत्पति होती है। यही बात बृहदारण्यक उपनिषद में बताई है- '' यथाग्ने क्षुद्रा विस्फलिंगा व्युत्वइन्त्यवमेवास्माप्रत्मन'' सर्वे प्रणा:।। (2:1:2:20) अर्थात् जैसे अग्नि में से चिनगारी निकलती है, वैसे आत्मा से सभी प्राण निकल जाते है।

• शोध निर्देशक
•• रिसर्च स्कोलर शोध छात्रा, लकुलीश योग विश्वविद्यालय, हायर स्टडी ओर रिसर्च एकडमी अहमदाबाद गुजरात

अर्थात् ऐसा समझा जा सकता है कि प्राण ही आत्मा की शक्ति है। 'आत्मतत्व', 'ब्रह्तत्व' और प्राण सब एक ही है। यह कथन पर से समझ मे आता है की सदगुरू के पास शक्ति संचरण दीक्षा प्राप्त करके प्रथम प्राण -स्फुरण ओर बाद में प्राणोत्थान की प्रक्रिया होती है। प्राणोत्थन के साथ ही कुंडलिनी शक्ति जाग्रत और उर्ध्वगामी होती है। प्राणस्फुरन के बाद तुरंत कुंडलिनी जाग्रत नही होती और प्राणेत्थान के द्वारा जाग्रत हुई कुंडलिनी सीधी सइसार चक्र में पहुचती नही है। ये सारी प्रक्रिया के लिए यम -नियम का उचित पालन करना जरूरी है। इसके साथ वर्षा तक दृढ़ नियम - पूर्वक साधना करनी पड़ती है। यह 'प्राण' की साधना का जितना महत्व देते है, उतनी साधना में जल्दी प्रगति होती है। इसलिए दीर्घकाल पर्यान्त उत्साह और ध्यान के साथ साधना करते रहने चाहिए। यही साधना को 'प्राणोपासना' कहा जाता है और इसे योगसाधना भी कहते है। इसलिए शिवस्वरोदय में श्री देवी भगवान शिव को पूछती है की -

देव देव महादेव सर्वसंसारे सागरे।
किं नरामां परमित्र सर्वकार्यार्यसाधकम्।।

अर्थात् हे देवेश शंभे संसार सागर में मनुष्य को सर्व कार्य सिद्धि करनार परम मित्र कौन है। भगवान शिव उत्तर देते हैं।

"प्राण एवं परं मित्र प्राणएवं सय्या।
प्राणतुल्य परोबन्धुर्नास्ति नोस्ति वरागने।।"

श्री भगवान शिव कहते हैं की "है पार्वती, प्राण की मित्र है, श्रेष्ठ सय्या है। प्राणतुल्य श्रेष्ठ बंधु नही और कोई नहि है।" (योगाचार्य कृपाल्वानंद, 2014, 39)

इसलिए प्राण के द्वारा ही योग साधना में आगे बढ़ना चाहिए और प्राण की मित्रता ही सच्ची मित्रता है, जो ईश्वर समकक्ष हमें बनाती है। इसलिए ही हमें नियमित प्राणोपासना करनी चाहिए , जिससे प्राण प्राबलय की प्राप्ति हो सके। स्वामी कृपाल्वानंदजी ने आसन मुद्रा और नाम के ग्रंथ में प्राणोपासना का विस्तृत स्वरूप समझाया है, कि कहा है- आसन मुद्रा और प्राणायाम से केवल रोग की मुक्ति होती है। ऐसा कहना तो योग का भयंकर अपमान है। आसन और मुद्रा से तो भवरोग मिट सकता है। तो ही योग का सत्य मूल्यांकन प्राप्त हो सकता है और कहा है कि 'प्राण' जब प्रबल बनता है तो, आसन के विभिन्न स्वरूप सामने आते है और जब वायु स्थिर बनता है, तब चित्त भी स्थिर हो जाता है। योगी प्राण निरोध के द्वारा स्थिरता प्राप्त करता है। (उपदेश -2 श्लोक -11)

वेद व्यास पंतजली योग सूत्र के व्यास भाष्य में लिखा है की 'समस्तेन्द्रीय वृत्ति' इसका अर्थ ये है दू समस्त इन्द्रियों का संचालन बल वे प्राण है। इसमें आगे लिखा है की सामान्यकरन वृति इन्द्रियों के व्यापार को संतुलित करता है।Balancing all the organism (राजर्षि ,2007,43)

उपरोक्त बात को समझने के लिए कह सकते है कि शारीरिक तंत्रो द्वारा ही, सभी शरीरिक क्रियाए होती है और ये सभी क्रियाओं में प्राण की शक्ति ही कार्य करती है, लेकिन वही प्राणशक्ति को वायु-शक्ति से जाना जा सकता है। विभिन्न तंत्रो में काम करते समय वायु विभिन्न नाम धारण करते है, जैसे कि -

उब्ध प्राण शक्ति – उब्ध दृष्टि से प्राणोपासना
यजु प्राण शक्ति – यजु दृष्टि से प्राणोपासना
साम प्राण शक्ति– साम दृष्टि से प्राणोपासना
क्षत्र प्राण शक्ति– क्षत्र दृष्टि से प्राणोपासना (त्रयोदश ब्राम्हण अध्याय–5)

स्वामी ने शास्त्रोक्त अध्ययन द्वारा समझाया है की 'शास्त्र को अध्ययन से ज्ञान की उपलब्धि तो हो सकती है, लेकिन विज्ञान की उपलब्धि नही हो सकती, विज्ञान की उपलब्धि अर्थे योगापासना करनी पड़ती है।' (प्रेमयात्रा–138)

काषीतकि ब्राह्णायनिषद में– उपासना के प्रकार बताया है।

1. अन्यवती उपासना
2. अंगवती उपासना
3. निदानवती उपासना और
4. सत्यवती उपासना

इसके अलावा स्वामी राजर्षि मुनिजी के मत अनुसार साधक 'कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग मुजब भी उपासना कर सकता है। उपासना वही साधना मार्ग है। इसके द्वारा ही प्राणेपासना (प्राण + उपासना) प्राणेपासना हो सकती है। शास्त्रों में भी उपासना का वर्णन किया है। मानव जीवन में चार अवस्था में उपासना की जाती है।'

1. बाल्यवस्था – भक्त प्रहलादजी की उपासना
2. किशोरावस्था – चौतन्य महाप्रभु की उपासना
3. युवावस्था – शंकराचार्य की उपासना
4. प्रौढावस्था – श्रीरामकृष्ण परमहंस की दैवी उपासना

इस तरह संतो की उपासना के द्वारा भी हम 'ब्रह्' को जान सकते है। यही बात समझााते हुए स्वामीजी ने अपने ग्रंथ आसन और मुद्रा में ग्रंथ की शास्त्रोक्त उपासना का वर्णन किया है। उनके शिष्य स्वामी राजर्षिमुनीजी ने योग उपासना द्वारा दिव्य– शरीर की प्राप्ति के बारे में बताया है। सिद्धयोगी प्रकृति को जीत लेता है। परमात्मा को कोई बंधन नहि होता, वैसे ही सिद्धयोगी को कोई बंधन नही होता। 'योगी ही'– शास्त्रों में कहा है की 'जगतगुरू' का अधिकार केवल योगी ही प्राप्त कर सकता है। मोक्ष के बाद जन्म–मरण से दूर जाता है और प्राप्त जन्म मृत्यु को जीत कर दिव्य – शरीरधारी बनता है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। संत कबीर ने एक भजन मे की है की , मैं ना मरी हूं मै ना मरी हू मुझे मिला जिवावन द्वारा।" अर्थात 'जो हरि मरे तो हुं मरूं लेकिन हरि ना मरे तो मे क्युं मरूं ?' इसका नाम – सिद्धयोगी। मरकर भी जीवित रहना इसका अर्थ तीन शरीर से 'प्राण का तादातम्य दूर जाए । लेकिन शुद्ध– बुद्ध आत्मा के तादात्म्य बना रहे। (राजर्षि ,2007अंक –5 (मे) 10) प्राण की उपासना से यह स्थिति तक योगी पहुॅच सकता है। ऐसा मरण ही योग की अंतिम भूमिका कहलाता है– वही मोक्ष है। योग बीज में उचित कहा है की ,

"नानाविद्यैविचारस्तु न साध्वं जायते मनः।
तस्मातस्यजयः प्रायः प्राणस्य जय तवहि।।"

अर्थात्– विविध प्रकार के विचार से मन को हम जीत सकते, इसके लिए प्राण को जीतना पड़ता है। क्योंकि प्राण का विजय ही मन की विजय है। (योगाचार्य स्वामी

कृपाल्वानंदजी, 2014, 39) ऐसे ही मानव बुद्धि में से निर्माण हुआ विचार मानव को बदले या बदले परंतु ईश- समर्पित उपासना - साधना द्वारा ईश - कृपा से स्फुरन हुआ विचार समग्र मानव को सुधार सकता है ।- यही निर्विवाद घटना है।

"स्वल्यमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात।।"

अर्थात इस मार्ग में आचरण किया हुआ पुरूषार्थ का कभी नाश नही होता है, और कोई विघ्न भी नही आता इस मार्ग के अल्प आचरण से व्यक्ति बड़े भय से मुक्त हो जाता है।'

निष्कर्ष- उपरोक्त विषय का निष्कर्ष नीचे कुछ इस तरह से है-

1. जिस महापुरूष ने प्राण को जान लिया है, वही योगी प्राणोपासना को जान सकता है।
2. प्राण- जय शिव महापुरूष का सानिध्य प्राप्त होना और उनको समर्पित होना वही सामान्य मनुष्य के लिए प्राण की उपासना है।
3. महापुरूष का प्राण-महाप्राण के साथ तादात्म्य एकरूप होता है। ऐसे महापुरूष ही सामान्य जीव को प्राण की महत्ता समझा सकता है और प्राबल्य का रास्ता दिखा सकता है।
4. प्राण- जय द्वारा प्राणेपासना को जिस योगी ने सिद्ध किया है वही इस साधना को समझ सकता है। ऐसे महापुरूष जो भी आज्ञा करे, उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए, वही जीवन का कल्ययण है। प्राणजय और 'प्राण' की ओणख साथ ली है, वो तो एक 'सदगुरू' ही हो सकता है- अस्तु।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. योगाचार्य स्वामी श्री कृपाल्वानंद ,2016ध्याान- विज्ञान , कृपालुमुनि मंडल , मलाव,
2. योगाचार्य स्वामी श्री कृपाल्वानंद ,2001,आसन और मुद्रा (प्रथम खंड) कृपालुमुनि मंडल, मलाव, कुपालु समाधि मंदिर अर्थे प्रकाशित
3. स्वामी राजर्षिमुनि, 2014 अष्टांगयोगदर्शिका भाग- 4, लाईफ मीशन, बरोडा
4. स्वामी आष्माराम, 2020 हठयोगप्रदीपिका, चोखंबां, वाराणसी
5. योगाचार्य स्वामी श्री कृपाल्वानंद, प्रेमयात्रा, 1996 कृपालु मुनिमंडल , परुसंली (प्रभास क्षेत्र)
6. स्वामी राजर्षिमुनि, 2012, योग द्वारा दिव्यदेह लाईफ मिशन, बरोडा
7. कृशणकुपामुर्ति, 2009, श्री चैतन्य महाप्रभु, भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, मुंबई
8. योगाचार्य स्वामीश्री कृपाल्वानंद, 2017 हठयोग प्रदीपिका, कृपालु मुनिमंडल, मलाव
9. अर्थववेद, प्राणसूक्त, कोड 11,सूक्त 8
10. तैतरीय उपनिषद, भृगुवल्ली अनुवाद 3
11. स्वामी राजर्षिमुनि,2007, क्लाासीकल हठयोग लाईफ मिशन बरोडा
12. डॉ. प्रणव पंडया, 2016 अर्न्तगत की यात्रा का ज्ञान - विज्ञान, (विभूतिपाद) शान्ति कुंज गायत्री ट्रस्ट

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं सुराजी गांव योजना

• रंजना नीलिमा कच्छप

सारांश- वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ राज्य के लिए सुराजी गांव योजना संजीवनी बन चुकी है। भारत के ग्रामीण अंचल में आज भी लोग गरीबी, बेरोजगारी जैसी समस्ओं से जूझ रहे हैं। छत्तीसगढ़ राज्य की अधिकांश जनसंख्या आज भी गांवों में निवास करती है तथा उनका मुख्य व्यवसाय कृषि है। लोगों के पास छोटे-छोटे भूखण्ड, सिंचाई सुविधाओं का अभाव, गरीबी, बेरोजगारी, रोजगार की तलाश में पलायन आदि जमीनी स्तर की समस्यायें व्याप्त हैं। सुराजी गांव योजना से ग्रामीण अर्थव्यवस्था की तस्वीर बदलने लगी है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सुराजी गांव योजना संचालन पश्चात ग्रामीणों की आय में वृद्धि हुई है, गरीबी कम हो रही है, ग्रामीणों को रोजगार मिल रहा है जिससे बेरोजगारी में कमी आ रही है जो आर्थिक विकास का सूचक है। नरवा विकास से सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता, गौठान निर्माण से पशुधन संरक्षण एवं संवर्धन में वृद्धि, विभिन्न स्वयंसहायता समूह की महिलायें लाख उत्पादन, अंडा उत्पादन, सब्जियां एवं फल उत्पादन से आय प्राप्त कर आर्थिक रूप से सशक्त हो रही हैं। अतः सुराजी गांव योजना को कारगर ढंग से चलाते हुए गुणवत्तापूर्ण कार्य किये जायें तो ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के साथ-साथ देश का आर्थिक विकास भी संभव होगा। यदि देश का प्रत्येक राज्य छत्तीसगढ़ की महत्वकांक्षी सुराजी गांव योजना को ग्रामीण क्षेत्रों में अपनाये तो ग्रामीण अर्थव्यस्था की तस्वीर ही बदल जायेगी। इस योजना के सुचारू क्रियान्वयन से राज्यों के विकास के साथ-साथ देश का आर्थिक विकास भी संभव होगा।

मुख्य शब्द - संजीवनी, गरीबी, बेरोजगारी, कृषि, पलायन

भारत की प्राचीन अर्थव्यवस्था मूलतः ग्राम प्रधान अर्थव्यवस्था थी। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की आर्थिक गति विधियां शामिल हैं। आज के विज्ञान युग में भी अधिकांशतया ग्रामीण प्रकृति पर आश्रित हैं। हजारों वर्षों से उनकी सम्पति के मुख्य स्त्रोत जंगल, पहाड़, घाटियां एवं नदियां ही रही हैं। जंगलों तथा पहाड़ों से खाद्य संग्रह करना, नदियों तथा तालाबों से मछली पकड़ना तथा कहीं-कहीं घाटियों व अन्यत्र पहाड़ी ढालों पर कृषि करना ही उनकी आजीविका के प्रमुख साधन रहे हैं।

• **सहायक प्राध्यापक अर्थशास्त्र, शासकीय नवीन कन्या महाविद्यालय, बैकुण्ठपुर जिला कोरिया (छ.ग.)**

आज भी भारत को गॉवों का देश कहा जाता है तथा 2011 की जनगणना के अनुसार 68 प्रतिशत जनसंख्या गॉवों में निवास करती है। छ.ग. राज्य की कुल जनसंख्या 32,199,722 है, जिसमें ग्रमीण जनसंख्या 1,96,03,658 है। भारत के साथ-साथ यदि छ.ग. की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का अध्ययन करें तो ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। जिसमें ग्रामीण बेरोजगारी, छिपी बेरोजगार अकुशल श्रमिकों की संख्या पायी जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को मौसमी बेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगारी का शिकार होना पड़ता है। फसल की बुआई, रोपाई, कटाई के समय तो इन्हें रोजगार मिल जाता है। शेष समय वे बेरोजगार रहते हैं। स्वयं रोजगार के लिए पूंजी और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है वह इनके पास नहीं होता है। इसलिए आज भी ग्रामीणों के सामने बेरोजगारी की गंभीर समस्या है। बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्या से जूझते ग्रामीण रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने लगते हैं। थोड़े पढ़े लिखे लोग नौकरी की तलाश में रहते हैं एवं श्रम करना नहीं चाहते। कृषि मानसून पर निर्भर करती है कारण सिंचाई सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में घरों के आस-पास छोटी-छोटी बाड़ियां होती हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में गरीबी एवं बेरोजगारी दूर करने के लिए कई योजनायें चलायी गयी तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुधारने हेतु प्रयास किये गये उनमें से छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा चलायी गयी योजना सुराजी गांव योजना है, इसके संबंध में समाचार पत्रों, टी.व्ही. न्यूज चैनलों से जानकारी प्राप्त हो रही है। किसानों तथा ग्रामीणों को सुराजी गांव योजना का लाभ मिल रहा है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था की समस्यायें

- बेरोजगारी
- गरीबी
- अन्यत्र पलायन
- सिंचाई सुविधाओं का अभाव
- शिक्षा का कमी
- ग्रामीण अंधविश्वास एवं रूढिवादिता

उपरोक्त विशेषताएँ छ.ग. के ग्रामीण अंचल में भी पायी जाती है। कृषि में पिछड़ेपन एवं अन्य समस्याओं को ध्यान में रखते हुए छत्तीसगढ़ सरकार ने मनरेगा योजना की सफलता के बाद सुराजी गॉव योजना या (नरवा, गरवा, घुरवा एवं बाड़ी) विकास योजना की शुरूआत की।

सुराजी गॉंव योजना- छततीसगढ़ राज्य सरकार ने राज्य के किसानों को आत्म निर्भर बनाने तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुधारने के उद्देश्य से सुराजी गांव योजना की शुरूआत की। इस योजना के माध्यम से गांव में रहने वाले ग्रामीणों की आर्थिक दशा में सुधार होगा साथ ही जलवायु में होने वाले परिवर्तन को भी संतुलित किया जा सकेगा।

- सुराजी गांव योजना के माध्यम से आवारा पशु जो सड़कों या अन्यत्र घूमते रहते हैं जिसके कारण विभिन्न समस्यायें उत्पन्न होती हैं, जिसका ध्यान रखते हुए गौठान का निर्माण कराया गया है जहां चारागाह, पानी तथा शेड की व्यवस्था की

गयी है। 1. इससे पशु इधर उधर घूमते नजर नहीं आयेंगे। 2. गौठान में उनके गोबर से कम्पोस्ट खाद बनाया जायेगा। 3. पशु दुर्धटना में मारे नहीं जायेंगे। 4. दुधारू पशुओं से गोबर एवं दूध प्राप्त कर विक्रय किया जायेगा।

- सुराजी गांव योजना के माध्यम से किसानों को ध्यान में रखकर नरवा गरवा घुरवा और बाड़ी विकास के कार्य किये गये हैं जिससे कई किसान छ.ग. के विभिन्न क्षेत्रों में लाभान्वित हो रहे हैं तथा उनकी आर्थिक बेहतरी के लिए वरदान साबित हो रहा है।

नरवा- इसके तहत आवश्यकतानुसार नालों तथा नहरों में चेक डेम का निर्माण किया जा रहा है । ताकि बारिश का पानी का संरक्षण हो सके एवं वाटर रिचार्ज से गिरते भू-स्तर पर रोक तग सके।

गरवा- इसके तहत गाँवों में जो भी पशुधन है उन्हें एक ऐसा डे-केयर सेंटर उपलब्ध करवाना हो, जिसमें वे आसानी से रह सके और उन्हें चारा, पानी उपलब्ध हो सके। इसके लिए आदर्श गौठान का निर्माण किया जा रहा है।

घुरवा- एक प्रकार का गढड़ा जिसमें पशुओं के गोबर एवं मलमूत्र को एकत्रित कर गोबर गैस एवं खाद बनाने की प्रक्रिया जारी है।

बाड़ी- यह हर ग्रामीण के घर से लगा एक बगीचा जिसका उपयोग फल-फूल एवं सब्जी उत्पादन में उपयोग किया जा सके।

अध्ययन का उद्देश्य -

1. सुराजी गांव योजना का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
2. सुराजी गांव योजना का ग्रामीणों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।

अध्ययन पद्धति- यह शोध पत्र द्वितीयक स्त्रोतों जैसे न्यूज, समाचार पत्रों एवं कुछ गौठानों के निरीक्षण पर आधारित है।

अध्ययन का परिणाम- ग्राम सुराजी योजना से ग्रामीण अर्थव्यवस्था की बदलती तस्वीर एक अध्ययन

- गौठानों की बहुआयामी गतिविधियों से स्वावलंबी हो रहा है छत्तीसगढ़- सुराजी गॉव योजना के क्रियान्वयन का असर आज ग्रामीण क्षेत्रों में गौठानों में दिखाई दे रहा है। इस योजना के माध्यम से पशुओं का समुचित ढंग से संवर्धन तो किया है साथ ही विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के संचालन में लोगों को रोजगार मुहैया कराया है।
- धमतरी जिला मुख्यालय से 25 किलोमीटर दूर ग्राम पचपेड़ी में नरवा, गरवा, घुरवा, बाड़ी परियोजना के तहत आठ एकड़ क्षेत्र की परती भूमि में 5.60 लाख रूपये की लागत से चारागाह विकसित किया गया है। जिसमें विभिन्न सब्जियों का उत्पादन किया जा रहा है।
- राज्य में दो साल में 2 लाख से अधिक बाड़ियाँ विकसित- बाड़ी विकास कार्यक्रम से सब्जी एवं फल उत्पादन को मिल रहा बढ़ावा। राज्य के 146 विकासखण्डों की 5531 ग्राम पंचायतों का विकास एवं किसानों के यहाँ कुल

200013 बाड़ियों का विकास किया गया है। उद्यानिकी विभाग द्वारा बाड़ियों के विकास के लिए लाभान्वित ग्रामीणों एवं किसानों को उन्नत किस्म में सब्जी बीज एवं पौधे, फलदार पेड़ बाड़ियों में रोपण के लिए उपलब्ध कराये जा रहे है। साथ ही गौठानों में भी सब्जी एवं फल के उत्पादन के लिए 990 सामुदायिक बाड़ियाँ स्थापित की गयी है।

- धमतरी जिले के अर्जुनी- मरवारा मुख्य मार्ग पर ग्राम परेवाडीह का गौठान है, जिमसें गायत्री स्वसहायता समूह की 15 महिलाओं के द्वारा विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जा रहा है। महिला समूह ने ऋण लेकर 2.50 एकड़ भूमि पर विभिन्न प्रकार की सब्जियों का कार्य शुरू किया। महिलाओं की आय में वृद्धि हो रही है। महिलायें आत्मनिर्भर बन रही है।
- बलरामपुर गौठान जाबर में कुल 41 पशुपालकों से 844.87 क्विंटल गोबर क्रय किया गया जिससे स्वयं सहायता समूह द्वारा 369.27 क्विंटल वर्मी कम्पोस्ट खाद तैयार किया गया इससे 3 लाख 61 हजार रूपये की आमदनी प्राप्त हुई।
- कोरिया जिल में महात्मा गाँधी नरेगा की सहायता से अब तक 1852 से ज्यादा कार्य 45 नालों के विकास के लिए 174 डी.पी.आर. के आधार पर जलस्त्रोतों का उन्नयन कार्य कराया जा रहा है। स्थानीय किसानों के अनुसार आसपास के जलस्त्रोतों में तीन फीट जल स्तर में वृद्वि हुई है। कोरिया जिले में नरवा विकास के उद्देश्य से उपचारित किया जाता है।
- कोंडागांव : अंडा उत्पादन यूनिट से महिलाओं को मिला रोजगार (सुराजी गांव योजना)-मुख्यमंत्री ने कहा कि पहले आंगनबाड़ी एवं मध्यान्ह भोजन में अंडा नहीं दिए जाने पर बच्चे कुपोषित हुआ करते थे। अब लगभग 43 प्रतिशत बच्चे कुपोषण से बाहर आए है। यह कोंडागांव जिले के लिए एक बड़ी उपलब्धि है। कोंडागांव संभवतः देश का पहला ऐसा आकांक्षी जिला होगा, जो कुपोषण से बाहर आने आने में सफल होगा।

छत्तीसगढ़ सरकार ने सुराजी गांव योजना के तहत गांव में निर्मित गौठान महिलाओं के लिए आजिविका का ठौर बनने के साथ ही सामाजिक सरोकार को भी गढ़ावा देने लगे है। गौठानों से जुड़ी महिला स्व-सहायता समूह की महिलाएं अपनी लगन और मेहनत से वर्मी एवं सपर कम्पोस्ट खाद के साथ-साथ सब्जी की सामूहिक खेती, मुर्गीपालन, मशरूम उत्पादन, मछलीपालन सहित अन्य गतिविधियों को अपना कर आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनने के साथ ही सुपोषण अभियान में बढ़-चढ़कर अपनी सहभागिता निभा रही है।

स्वावलंबी बनने का नया रास्ता मिल रहा है। वर्मी कंपोस्ट उत्पादन, सब्जी-भाजी उत्पादन, चारागाह विकास, लाख खेती, मुर्गी पालन, बकरी पालन जैसे आर्थिक गतिविधियों से उनकी आमदनी में इजाफा हो रहा है। और घर चलाने में भी मदद मिल रही है।

गंगा-जमुना महिला स्व-सहायता समूह के सदस्य खिलेश्वरी साहू ने बताया

कि उनकी समूह की महिलाओं द्वारा नवागांव भावगीर सहित आसपास के गांव मर्दापोटी, ईरादाह, घोटिया, आमाझोला, ईच्छापुर गांवों में 8 एकड़ में लाख पालन का कार्य किया जा रहा है, जिसे उन्होंनें 07 लाख रूपये में बेचा है।

मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल ने कहा कि गोधन न्याय योजना से राज्य में पशुधन के संरक्षण एवं संवर्धन के साथ ही दुग्ध उत्पादन व्यावसाय को एक नया संबल मिला है। उन्होंने कहा कि पशुपालकों, ग्रामीणों एंव किसानों से उनकी नियमित रूप से चर्चा होते रहती है, लोग इस योजना के लाभ को लेकर बेहद उत्साहित है। दुग्ध का व्यवसाय करने वाले लोग बताते है। कि गोधन न्याय योजना के जरिए गोबर की खरीदी होने से उनकी आमदनी बढ़ गई है। कई दुग्ध उत्पादक ग्रामीण किसान गोबर बेचने से मिली अतिरिक्त आय से अपने डेयरी व्यवसाय को बढ़ानें के लिए दुधारू गाय खरीदने, शेड का निर्माण कराने के साथ ही मोटर-सायकिल खरीदने के साथ ही अन्य आवश्यक जरूरतों को पूरा करने लगे है।

मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल ने कहा कि गोधन न्याय योजना सिर्फ गोबर क्रय करने की योजना नहीं है, इसके कई फायदे है। उन्होंने कहा कि गौपालन जो हमारी सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा रहा है, उसको इस योजना से बढ़ावा मिलने लगा है। गौवंश के संरक्षण एवं संवर्धन को लेकर लोग जागरूक हुए है। गोबर से वर्मी कम्पोस्ट, सुपर कम्पोस्ट के उत्पादन के साथ-साथ अन्य सामग्रियों का निर्माण से हमारी ग्रामीण बहनों को रोजगार मिला है, उन्हें इससे अतिरिक्त आमदनी होने लगी है। राज्य में खुले में पशु चराई पर रोक तथा फसलों की सुरक्षा सुनिश्चित हुई है। पशुधन के लिए गौठानों में निःशुल्क चारे-पानी के साथ-साथ उनके देखभाल की बेहतर व्यवस्था हुई है। गोबर से वृहद पैमाने पर वर्मी कम्पोस्ट एवं सुपर कम्पोस्ट का निर्माण होने से राज्य में जैविक खेती को बढ़ावा मिलने लगा है। इससे खेती की लागत में कमी और भूमि की उर्वरा शक्ति बेहतर होगी।

निष्कर्ष एवं अध्ययन के परिणाम- उपरोक्त अध्ययन से पता चलता है कि ग्राम सुराजी योजना से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित परिवर्तन आये हैं-

- ग्रामीणों एवं किसानों के आय व जीवन स्तर में सुधार हो रहा है।
- महिलाओं के स'ाक्तिकरण में सहायक।
- रोजगार गांव में ही मिलने से प्रवास में कमी।
- ग्रामीण गरीबी व बेरोजगारी में कमी आयी है।
- उत्पादक संपदाओं के निर्माण व संरक्षण के प्रति लोग जागरूक हो रहे हैं।
- गोबर विक्रय से लाभ एवं जैविक खाद का उपयोग
- पर्यावरण संवर्धन में सहायक
- प'ाुधन संरक्षण एवं संवर्द्धन में वृद्धि हुई है।
- दुग्ध व्यवसाय से आय की प्राप्ति।
- अंडा उत्पादन से आय की प्राप्ति।

- लाख उत्पादन से आय की प्राप्ति।
- नरवा विकास से सिंचाई सुविधाओं में सुधार।

अतः हम कह सकते हैं कि सुराजी गांव योजना ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए संजीवनी बूटी का कार्य कर रही है। इसके अंतर्गत कार्य करने वाले स्वयं सहायता समूह एवं ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार हो रहा है, उन्हें आय की प्राप्ति हो रही है। तथा वृक्षारोपण से पर्यावरण संवर्धन हो रहा है। आवारा पशुओं को संरक्षण प्राप्त हो रहा है एवं गोबर विक्रय कर ग्रामीण जैविक खाद का उपयोग कर रहे हैं। बाड़ी योजना के अंतर्गत पौष्टिक सब्जियां एवं फल की प्राप्ति हो रही है।

1. सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता से किसान विविध फसलों का उत्पादन कर आय प्राप्त कर सकते है तथा आय की प्राप्ति कर सकते है।
2. गोबर क्रय कर वर्मी कम्पोस्ट खाद का निर्माण जिससे जैविक खाद का उपयोग एवं भूमि को उर्वरा शक्ति को नष्ट होने से बचाया जा सकता है।
3. विभिन्न स्वयं सहायता समूह की महिलाये सब्जी एवं अन्य उत्पादों का निर्माण कर रही है, जिससे वे आत्मनिर्भर बन रही है।
4. वृक्षारोपण से पर्यावरण संवर्धन एवं संरक्षण को बढ़ावा मिला है।
5. मुर्गी पालन, बकरी पालन, मछली पालन जैसे आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा मिल रहा है।
6. ग्रामीण उद्योगों के लिए कच्चे माल की उपलब्धता।
7. बाड़ी का उपयोग कर फल, फूल एवं सब्जियों का उत्पादन कर कुपोषणता में सुधार हो रहा है तथा आय के नये स्त्रोत का सृजन हो रहा है।
8. ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुदृढ़ एवं सशक्त हो रही है।

सुझाव-

1. शासन की जो योजनायें चल रही हैं उसके प्रति लोगों को जागरूक करना होगा। जिससे लोग ज्यादा से ज्यादा लाभान्वित हो सकें।
2. रोजगार मूलक कार्यों में लोगों को मजदूरी समय पर मिलना चाहिए ताकि उन्हें मजदूरी के लिए भटकना न पड़े।
3. सभी मौसम में कुछ न कुछ काम होना चाहिए।
4. जरूरतमंद लोगों को काम दिया जाना चाहिए।
5. सुराजी गांव योजना के तहत जो भी कार्य किये जा रहे हैं उनमें गुणवत्ता होनी चाहिए जिससे उसका लाभ सभी लोग उठा सकें और आम जनता को भी उसका फायदा मिल सके।
6. बेरोजगारी दूर करने के लिए लघु व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना होगा। इसे सुराजी गांव योजना में 'ाामिल किया जा सकता है।
7. कृषि कार्य के प्रति लोगों को जागरूक कर जैविक खाद की उपयोगिता के प्रति किसानों को जागरूक करने की आवश्यकता है। ताकि कृषि उत्पादकता में वृध्दि हो सके।

8. नरवा निर्माण कार्य यदि किया जाये तो यह ध्यान रखना चाहिए कि ज्यादा से ज्यादा लोगों को सिंचाई जैसी सुविधायें मिल सके।
9. योजना का लाभ ग्रामीण किसानों के मिलना चाहिए।
10. उत्पादित माल के लिए बाजार उपलब्ध होना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. सुराजी गांव योजना छततीसगढ़, 20 नवम्बर 2020. (https://www.dphindiyojana.in /suraji-gaon-scheme-chhattisgarh-kya-hai)
2. यादव, विनय(अगस्त 28,2021) http://www.36khabar.com/रायपुर-गौठानों की-बहुआयामी/
3. यादव, विनय (जून 11, 2021) http://www.36khabar.com/राज्य में-दो-साल-में/
4. यादव, विनय (जून 20, 2021) http://www.36khabar.com/रायपुर-अंडा-उत्पादन/
5. मई 08,2021 http://www.36khabar.com/कोरिया-गंगा-महिला-स्व-सहा/
6. यादव,विनय (जुलाई 01, 2021) http://www.36khabar.com/रायपुर-गंगा-जमुना-समूह-की/

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 5.125 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 35, Hindi Edition, Year-18, July-December 2021

भारतीय संस्कृति व आधुनिक समाज

• सुनीता द्विवेदी

सारांश- भारतीय संस्कृति मानव समाज की अमूल्य निधि है। किसी भी देश की संस्कृति अपने को धर्म, दर्शन, कविता, साहित्य, भषा और कला आदि के रूप में अभिव्यक्त करती है। भारत की संस्कृति ने अपने को जिस रूप में अभिव्यक्त किया है उसकी मुख्य विशेषता अध्यात्म की भावना है। अध्यात्म-आत्मा, परमात्मा, अन्तर्बाह्य को लेकर किये गये चिन्तन-मन्थन का परिणाम है।

मुख्य शब्द - संस्कृति, समाज, ज्ञानार्जन, नैतिक आचरण

भौतिक विकास के क्षेत्र में भारत में 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में काफी लम्बी दौड़ या कहें कि एक लम्बी छलाँग लगायी है जिसे कि पाश्चात्यों की नकल पर अन्धी दोड़ भी कहा जा सकता है। वो फिर चाहे ज्ञान, दर्शन ज्ञानार्जन में हो, चाहे नैतिक आचरण में हो, चाहे शिक्षा में हों या प्रथा-परम्परा में हो अथवा कला में ही क्यों न हो। इन सभी क्षेत्रों में अध्याधिक परिवर्तन दिखाई पड़ता है। यूँ तो परिवर्तन सृष्टि का नियम हैं किन्तु सभ्यता में संस्कृति की ओर जाते मार्गों में होने वाले आज के ये परिवर्तन मनुष्य को सच्चाई से, प्रेम से, भावों से, संवेदनशीलता से, दया, त्याग से, कर्त्तव्यपरायणता से बहुत दूर लेकर चले गये हैं। ऐसा नहीं है कि आज का युवा बुद्धिमान नहीं है। बुद्धिमान है, किन्तु यह युवा वर्ग बुद्धि का प्रयोग मात्र भौतिक सुख-सम्पदाओं को बढ़ाने में ही करता है। जगत मिथ्या है, ये देह नश्वर है इस ज्ञान के अभाव के कारण वह आत्मा के उत्थान में, विधायक भावनाओं के पल्लवन में मन-बुद्धि योग से कोई भी सकारात्मक कार्य नहीं करता है। यही कारण है कि आज मनुष्य का चैन, सुख-शान्ति, आनन्दभाव सब कुछ खो चुका है, वो प्रति पल बेचैन है, अभाव में है, तनाव में है, ईर्ष्या और कुटिल चाल से उसकी नींद खोज चुकी है। परिणामतः भाँति-भाँति की बीमारियों ने, दु:खों ने, चिन्ताओं ने, भोगलिप्सा ने उसको घेर रखा है। जिस कारण समाज में सनातन संस्कृति के चिन्तक, संवाहक दुलर्भ हो रहे हैं। निश्चित रूप से इस ओर बदलाव की आवश्यकता है।

भारतीय संस्कृति मानव समाज की अमूल्य निधि है। मानव समाज द्वारा अपने विकास काल से अब तक जो समस्त आचार-व्यवहार ग्रहण किया गया है, उसकी ही समष्टि है।[1] यह अनादि काल से शाश्वत प्रावहमान धारा के समान अनवरत प्रवर्तित रही है। भारतीय ही नहीं सम्पूर्ण विश्व का इतिहास इससे आबद्ध रहा है। किसी भी देश की संस्कृति अपने को धर्म, दर्शन, कविता, साहित्य भाषा और कला आदि के रूप में

• एसोसिएट प्रोफेसर, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

अभिव्यक्त करती है। भारत की संस्कृति ने अपने को जिस रूप में अभिव्यक्त किया है, उसकी मुख्य विशेषता अध्यात्म की भावना है।[2]

अध्यात्म-आत्मा, परमात्मा, अन्तर्वाह्य को लेकर किये गये चिन्तन-मन्थन का परिणाम है। उपनि'ादों में सर्वत्र कहा गया है कि जो इस आत्मा को जानते हैं वो अमर हो जाते हैं। सच्चाई तो यह है कि हम स्वयं अपना जगत रचते हैं। बहुत्त्व में एकत्त्व को देखने का सरल मार्ग यह है कि तुम अपने चित्त रूपी दर्पण को निर्मल कर सको, तब तुम्हे सदा यथार्थ का, सत्य का अनुभव होगा। धर्म, दर्शन को लेकर जन-सामान्य में एक भ्रान्त धारणा है कि धर्म, दर्शन, वेदान्त में इस भौतिक जगत को, इसके सुख को छोड़कर बाहर जाने का उपदेश है। नितान्त गलत धरणा है। ये उक्त की जिज्ञासा में और साधना के परिणाम में मनुष्य सदा से आत्म ज्ञान के आनन्द में विभोर होकर रहता है। हमारा विश्वास है कि मानवता की विधायक भावनायें प्रेम, दया, ममता, करूणा, भ्रातृत्त्व के साथ आगे बढ़ते हुये ई'र्या, घृणा को छोड़ते हुये जीवन आनन्द के अनन्त में अवश्य ही पहुँच जाना है। ईश्वर की प्रत्यक्ष उपलब्धि की यह बड़ी उपयोगिता है। जीवन मूल्यों को लेकर ही समस्त धार्मिक चेतना, ज्ञान काण्ड, सम्पूर्ण कर्मकाण्ड आदि की प्रवृत्ति हुई है। जहाँ वेद मोक्ष को मानव जीवन का परम् लक्ष्य मानते हैं। वहीं उसके प्रत्यर्थ को ज्ञान, कर्म भक्ति मार्ग के प्रवर्तन का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। वेदों में जीवन-दर्शन की व्यवहारिकता का सदुपदेश वर्णन है। जो मानव को मानव-जीवन जीने के लिये प्रेरित करता है। अत: मनीषियों में वेद ज्ञान को मानव-कल्याण का एकमात्र उपाय मानकर धर्म एवं ज्ञान की अपरिहार्यता स्वीकार की थी। यही हमारा जीवन दर्शन था और हमारी संस्कृति, हमारे जीवन दर्शन की संवाहिका है। ये ज्ञन में, व्यवहार में, कर्म में स्थानान्तरित होते हुये आगे बढ़ती रहती है।

संस्कृति का आशय उन विशिष्ट क्रिया-कलापों एवं सनातन उपलब्धियों से है जो मानव समाज द्वारा युगों से अपनाये जा रहे हैं। भारतीय संस्कृति वेदमूलक संस्कृति है। वैदिक मूल्यों में ऐसी धार्मिक चेतना के दर्शन होते हैं, जो मानव मात्र के लिये उपादेय है।[3]

प्राचीनकाल में वर्ण-व्यवस्था की मनोवैज्ञानिकता, माता-पिता, गुरु का सम्मान, कर्मपरायणता आदि विषय, मानव को उच्छृंखलता की ओर जाने से रोकते हैं। नारी-उद्धार और नारी-सम्मान की भावना भी वेदों में साकार रूप से सामने आती है। ब्राह्ण ग्रन्थों में जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण को सबल बनाने में पर्याप्त भूमिका का निर्वाह किया गया है। जिससे मानव मात्र उपकृत हुआ है। मानव कल्याण के उद्दे''य से ही ब्राह्मणकाल में भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत वर्ण-व्यवस्था को प्रकृति या स्वभाव से जोड़कर सामाजिक सन्तो'ा का युक्ति संगत कार्य प्रशस्त किया गया था। तदनन्तर उपनिषदों में भी मानव-कल्याण की सच्ची प्रस्तुति है। डॉ. राधाकृष्णन कहते हैं कि उपनिषदों में जहाँ इस जगत के सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण हेतु एक आध्यात्मिक जिज्ञासा विद्यमान हैं वही मुक्ति की उत्कृष्ट लालसा भी है। इस दर्शन व इस भाव के निरन्तर बढ़ते जा रहे अभावों का ही परिणाम है आज के समाज में अनन्त घनीभूत पापों और विध्वंसकारी कृत्यों का दुगुनी तीव्रता से बढ़ते जाना। मानव मन को प्रकटित ये उपनिषदों के विचार जो आत्मोन्नयन के मार्ग प्रशस्त करते हैं। ये कहीं लुप्त नहीं हो गये है। आवश्यकता मात्र तीव्र इच्छा शक्ति की है।

पुराणों में भी भारतीय संस्कृति के मानव हितकारी दृष्टिकोण का स्पष्ट स्वरूप देखने को मिलता है। पुराणों में भक्ति मार्ग को प्रतिपादित कर मनुष्य के लिये मुक्ति मार्ग का सरलीकरण किया गया है। लोक सम्मत, मानवाभियत आस्तिकता, सत्याचरण, शुचिता, दया, हिंसा, संयम, त्याग, तपस्या, सहिष्णुता, श्रद्धा, विश्वास, निस्पृहता इत्यादि बातों को पौराणिक आख्यान कहते हैं। इससे ऐसा स्पष्ट होता है कि इन मानवीय गुणों की, विधायक भावनाओं की सीख प्रदान करना ही पुराणों के सृजन का मूलभूत लक्ष्य रहा है। भारत के विचारक सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य पर बड़ा ज़ोर देते रहे हैं। ये वे बाते हैं जिन पर वैदिक, बौद्ध, जैन, पौराणिक सभी विचारक किन्ही बिन्दुओं पर एक मत थे। आदि शंकराचार्य ने कहा है "व्यवहारिक दृष्टि से सभी कुछ सत्य है।"

भारतीय विचारकों का विश्वास रहा है कि सच्ची संस्कृति वह है जो परलोक के साथ-साथ इहलोक का भी कल्याण सम्पादित करती है। यही कारण है कि भारत की कला कविता, संगीत, विज्ञान, सभी में अध्यात्म भाव दिखाई पड़ता है।[4] जो इनमें मानवीय गुणों की सौन्दर्य वृद्धि करता है। आज वास्तविकता यह है कि मानव कल्याण हेतु जिन तत्त्वों की उपस्थापना की गयी थी आज उनके ह्रास के कारण ही विश्व में शान्ति का विघटन हुआ है। भारतीय संस्कृति के सार्वभौमिक सत्य को स्वीकार कर यदि आज भी सही ढंग से पालन करने व करवाने का संकल्प लिया जाये तो व्यक्ति, समुदाय, समाज व राष्ट्र के मानव मात्र के, जीव मात्र के कल्याण में कोई बाधा नहीं रह सकती है।

मानव का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कृति संस्कृति नहीं है, परन्तु जिन कार्यों से किसी देश-विदेश के समस्त समाज पर कोई अमिट छाप पड़े वह स्थायी प्रभाव की संस्कृति है। संस्कृति वह आधारशिला है जिसके आश्रय से जाति समाज व देश का विश्वास भव्य प्रासाद निर्मित होता है। जो जाति, देश, समाज की समष्टि की सेवा है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि व्यक्ति सेवा इसके अन्तर्गत ही है। भारतीय संस्कृति में सेवा एक आदर्श है। वर्तमान समय में चहुँओर दुःख का बाहुल्य है। अतः साधारण जन भी सेवा की आवश्यकता का अनुभव करने लग जाते हैं।[5]

हम जब संस्कृति के उद्‌भव और विकास पर एक दृष्टि डालते हैं तो इसी के समानान्तर एक शब्द आता है सभ्यता। इस पर भी दृष्टि अवश्य जाती है। मानव के सभ्य होने में व्यवहार, ज्ञान, नैतिक आचरण, कला, शिक्षा, विश्वास, प्रथा और परम्परा आदि ऐसे तत्त्व हैं जिनमें समय-समय पर भारी फेर-बदल होते रहते हैं। अब हम आज के सन्दर्भ में आदि बात करें तो सभ्यता को भौतिक विकास का लगभग पर्याय ही मान लिया गया है।

भौतिक विकास के क्षेत्र में भारत में 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में काफी लम्बी दौड़ या कहें कि एक लम्बी छलाँग लगायी है जिसे कि पाश्चात्यों की नकल पर अन्धी दौड़ भी कहा जा सकता है। वो फिर चाहे ज्ञान, दर्शन ज्ञानार्जन में हो, चाहे नैतिक आचरण में हो, चाहे शिक्षा में हों या प्रथा-परम्परा में हो अथवा कला में ही क्यों न हो। इन सभी क्षेत्रों में अध्याधिक परिवर्तन दिखाई पड़ता है। यूँ तो परिवर्तन सृष्टि का नियम हैं किन्तु सभ्यता में संस्कृति की ओर जाते मार्गों में होने वाले आज के ये परिवर्तन मनुष्य को सच्चाई से, प्रेम से, भावों से, संवेदनशीलता से, दया, त्याग से, कर्त्तव्यपरायणता से बहुत दूर लेकर

चले गये हैं। ऐसा नहीं है कि आज का युवा बुद्धिमान नहीं है। बुद्धिमान है, किन्तु यह युवा वर्ग बुद्धि का प्रयोग मात्र भौतिक सुख-सम्पदाओं को बढ़ाने में ही करता है। जगत मिथ्या है, ये देह नश्वर है इस ज्ञान के अभाव के कारण वह आत्मा के उत्थान में, विधायक भावनाओं के पल्लवन में मन-बुद्धि योग से कोई भी सकारात्मक कार्य नहीं करता है। यही कारण है कि आज मनुष्य का चैन, सुख-शान्ति, आनन्दभाव सब कुछ खो चुका है, वो प्रति पल बेचैन है, अभाव में है, तनाव में है, ईर्ष्या और कुटिल चाल से उसकी नींद खोज चुकी है। परिणामतः भाँति-भाँति की बीमारियों ने, दुःखों ने, चिन्ताओं ने, भोगलिप्सा ने उसको घेर रखा है। जिस कारण समाज में सनातन संस्कृति के चिन्तक, संवाहक दुलर्भ हो रहे हैं। निश्चित रूप से इस ओर बदलाव की आवश्यकता है।

भारतीय सभ्यता के आदर्शों एवं भारतीय संस्कृति की भावनाओं का महत्त्व शाश्वत है। उनका मूल आधारभूत तत्त्व सांमजस्य रहा है। सांमजस्य के कारण ही विविधता में एकता का सूत्र भारतीय संस्कृति की आत्मा बन गया है। इनसे ही भारत राष्ट्र की जीवन्त चेतना अभिव्यक्त होती है।

उल्लेखनीय है कि भारतीय संस्कृति जीवन को दर्शन से जोड़ती है। जो जीवन दर्शन आस्था और श्रद्धा पर अवलम्बित है। जिसमें भक्तिमार्ग से होते हुए मुक्ति को परम् लक्ष्य बनता है। दूसरी ओर ''पर-सेवा, पर-उपकार में हम जग-जीवन सफल बना जायें'' की भावना से सब कुछ पर के लिये होता है, अपने लिये कुछ भी नहीं।गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है -

''परहित सरिस धरम नहि भाई।
पर पीड़ा सम नहि अघ माई।।''[6]

इसे ही परम् धर्म माना जाता है।

''तेन व्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यास्विद्धनम्।''[7]

इस सूत्र में भारतीय जीवन दर्शन के चिरन्तन आदर्श हैं। उच्चतर चेतना की ओर आरोहरण ही इस जीवन का परम् ध्येय है। इति।।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. प्रो. रूप नारायण त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति, पृ.-3
2. प्रो. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति का विकास, पृ.-13
3. प्रो. रूप नारायण त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति, पृ.-278
4. प्रो. सत्य केतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति का विकास, पृ.-16
5. पं. गोपीनाथ कविराज, भारतीय संस्कृति और सभ्यता, पृ.-3
6. रामचरित मानस, दोहा 40+1
7. ईषोपनिशद के प्रथम मन्त्र का द्वितीय भाग।

RNI No MP BIL 01034 / 12 / 1 / 2005 - TC
REGISTRAR OF NEWS PAPERS IN INDIA, GOVT. OF INDIA

Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered Under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802, Year-1997
www.researchjournal.in

ISSN 0973-3914

Editor : Prof. Braj Gopal, Printed and Published by Dr. Gayatri Shukla on behalf of Gayatri Publications,Rewa - 486001 (M.P.) and Printed at Lineage Offset Rewa - 486001 (M.P.)